गिरिराज किशोर के कथा - साहित्य का विश्लेषणात्मक अध्ययन

AN ANALYTICAL STUDY OF THE FICTIONS OF GIRIRAJ KISHORE

Thesis submitted to
Cochin University of Science and Technology
for the award of the degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

शान्ती नायर
SHANTI NAIR

Supervising Guide
Prof. (Dr.) A. ARAVINDAKSHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN-682 022

1996

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE & TECHNOLOGY
DEPARTMENT OF HINDI

Dr. A. ARAVINDAKSHAN
PROFESSOR

Telephone : 55-5954
Kochi - 682 022
Kerala.

15.03.1996

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis entitled "GIRIRAJ KISHORE KE KATHA - SAHITHYA KA VISHLESHNATHMAK ADHYAYAN" is a bonafide record of work carried out by Ms. SHANTI NAIR, under my supervision for the Degree of Ph.D and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university.

Dr. A. ARAVINDAKSHAN

DECLARATION

I hereby declear that the thesis entitled "GIRIRAJ KISHORE KE KATHA - SAHITHYA KA VISHLESHNATHMAK ADHYAYAN" has not previously formed the basis of the award of any degree, diploma, associateship, fellowship or other similar title or recognition.

15.3.96

SHANTI NAIR

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
Kochi - 682 022

15.03.1996

पुरोवाक्

जीवन के यथार्थ से संबद्ध होकर उसके प्रश्नों, समस्याओं की वाहिका के रूप में अपनी साहित्यिक अस्मिता संभवत: कहानी व उपन्यास विधाओं ने प्रत्येक युग में प्रतिस्थापित करने की कोशिश की है । समकालीन कथा पर विचार करते समय उसे अपनी पूर्ववर्ती परंपरा से पृथक करके देखने या उस लंबी परंपरा को नज़र अन्दाज़ करनेवाली दृष्टि उचित नहीं लगती हैं । क्योंकि विधाएँ अपनी पूर्ववर्ती परंपरा का निषेध करती हुई भी उसको रिक्थ रूप में अपनाती चलती हैं । इस कारण समकालीन कथा भी एक सहज परिणति के रूप में सामने आती हैं ।

समकालीन जीवन परिस्थितियाँ इतनी जटिल हो गयी है कि बाहत: उसका रूप भले ही कुछ हद तक सामान्य प्रतीत होता हो किन्तु अंतरंगता में वह विकराल हो जाता है । समकालीन जीवन की इस जटिलता को समकालीन कथा वहन करती है । समकालीन कथाकार की संसक्ति के केन्द्र में आज का मनुष्य है, उसकी आकांक्षाएँ हैं, बिखराव है और उसके जीवन के ऊपर मण्डरानेवाली अनगिनत परिस्थितियों के बादल हैं ।

समकालीन कथा के क्षेत्र में अनेक हस्ताक्षर उभर कर आये । समकालीन रचनाकारों की इस दीर्घ पंक्ति में एक ऐसे रचनाकार जिन्होंने अपने आपको आन्दोलनों के शोर से अलग रखा और अलग रहते हुए भी अपने लेखन में स्तरीयता बनाए रखते हुए निरन्तर लेखन का कार्य किया और रचनाओं के

माध्यम से सार्थकता की खोज की वे हैं - गिरिराज किशोर ।

हिन्दी कथा साहित्य के साठोत्तरी युग में एक प्रासंगिक कथाकार के रूप में गिरिराज किशोर का आगमन होता है । अपने कुछ बहुचर्चित उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने अपनी उपन्यासकार -भूमिका को जहाँ प्रामाणिक सिद्ध किया है वहीं अपनी कहानियों के माध्यम से गिरिराज किशोर ने समकालीन जीवन के विभिन्न पहलुओं को उभारा है । कहानी एवं उपन्यास के क्षेत्र में गिरिराज किशोर की प्रासंगिकता के कई कारण हैं । हिन्दी कथा-साहित्य के समकालीन दौर की यह विशेषता देखी गयी है कि वह हमारे आस-पडोस की आबोहवा से, यहाँ के हवा, पानी से पूरी तरह मिला हुआ है । गिरिराज किशोर ने इस विशेष प्रवृत्ति को अपनी रचना के मूल में अनुभव किया है । इस कारण से उनकी अधिकतर रचनाएँ हमारे आस पडोस की अनुगूँज के समा हमारी मिट्टी की अस्मिता से सनी हैं । सहजता ही गिरिराज किशोर की कहानियों की मौलिकता है । इस सहजता का रचनात्मक संदर्भ यह है कि उसमें ऊँची-ऊँची बातों की उडानें नहीं है । नुस्खों की बैसाखी पर खडे होने की मजबूरी भी नहीं है । अपनी कहानियों को सीधी और सहज बनाने के लिए उन्होंने हमारी कथा परंपरा को पुनर्जीवित किया है । अर्थात् वे उस जीवन्त परंपरा को आत्मसात करते हैं, सरल संकेतों के माध्यम से समकालीन जीवन की सच्चाईयों एवं गहराईयों में जाने का एक रचनात्मक वातावरण वे सृजित करते हैं

रचनात्मक साहित्य का क्षेत्र हो या आलोचना का क्षेत्र, गिरिराज किशोर एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में ही उभरे हैं । किन्तु सर्वाधिक

चर्चा गिरिराज किशोर के संदर्भ में कथा-शिल्पी के रूप में ही रही है । संभवत: इसका कारण यह भी है कि उनका कथा-साहित्य समकालीन जीवन संदर्भों को पूर्ण रूपेण आत्मसात करने में सक्षम रहा है । किन्तु इन तमाम स्वीकृतियों एवं चर्चाओं के बावजूद, पत्र-पत्रिकाओं में आये हुए या कुछ संपादित ग्रंथों के लेखों के अलावा गिरिराज किशोर के रचनात्मक साहित्य पर कोई रचनात्मक ग्रंथ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ । इसी बिन्दु पर विचार करते समय प्रस्तुत विषय पर लेखन की आवश्यकता मुझे महसूस हुई । इस कारण गिरिराज किशोर के कथा साहित्य एवं उनके समकालीन संदर्भ का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने का प्रयास इस शोध ग्रंथ में मैं ने किया है । संभवत: गिरिराज किशोर के कथा-साहित्य पर आधारित यह पहला ग्रंथ है ।

पहले अध्याय के अंतरगत आन्दोलनों से दूर रहकर लिखनेवाले कथाकार के रूप में गिरिराज किशोर का परिचय दिया गया है । जिसमें उनके ऐसे जीवनानुभवों पर भी प्रकाश डाला गया है जो उनके लेखन की पृष्टभूमि में रहे हैं । उनके रचना संसार तथा उनके द्वारा संपृक्त क्षेत्रों में भी विहंगम दृष्टि डाली गयी है । राजनैतिक और सामाजिक परिवेश जो उन्हें प्रभावित करते रहे है उन पर विचार करते हुए गिरिराज किशोर के लेखन और उनकी विचार धारा पर भी प्रकाश डाला गया है । इस अध्याय के अंतर्गत गिरिराज किशोर की भाषा, कला और साहित्य संबंधी मान्यताओं पर भी प्रकाश डाला गया है ।

दूसरे अध्याय के अन्तरगत समकालीन कथा साहित्य के व्यापक परिदृश्य पर प्रकाश प्रक्षेप किया गया है । विधाओं के सरोकारों की चर्चा में जिस "समकालीनता" का सवाल सर्वप्रथम उठता है उस पर विस्तार से विचार करते हुए बताया गया है कि समकालीनता, एक ही कालखण्ड में जीना या रचना करना नहीं है । तदुपरांत समकालीनता के वास्तविक अर्थ की व्याख्या करते हुए इस अध्याय के अंतर्गत समकालीन कथा साहित्य के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डाला गया है । समकालीनता की अवधारणा को स्पष्ट करने के पश्चात् इस अध्याय में समकालीन कथा में चित्रित आज के मनुष्य के जीवन के पहलुओं को उभारा गया है जिस में 'व्यवस्था और आज का आदमी, राजनीतिक विसंगतियों के बिखरे चित्र, मध्यवर्गीय मानसिकता के विभिन्न आयाम एवं महानगरीय जीवन बोध की समकालीनता, ग्रामीण जीवन स्थितियाँ, स्त्री-पुरुष संबंधों, पीढ़ियों की टकराहट, संबंधों के आर्थिक दायरे आदि बिन्दुओं पर मुख्य रूप से प्रकाश डाला गया है ।

तीसरे अध्याय में गिरिराज किशोर की उन कथा-रचनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है जो कि सामाजिक संदर्भों से जुड़ी हैं । समकालीन समाज के सूक्ष्म एवं आन्तरिक संदर्भ को गिरिराज किशोर ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है । इनमें मूल्यों के संक्रमण, संबंधों के दायरे, मध्यवर्ग की मानसिकता, निम्न वर्ग की स्थितियाँ, शैक्षणिक क्षेत्र की असंगतियाँ, दलित चेतना का आयाम आदि पर प्रकाश डाला गया है । अपने आसपास के माहौल को अंतरंगता से पहचानने वाली गिरिराज किशोर की दृष्टि यहाँ उजागर होती है । जीवन की अंतरंगता में गुज़रनेवाला माहौल गिरिराज किशोर

के कथा साहित्य में है । यहाँ पर हम देखते हैं कि तेज़ी से बढ़ते समाज के रोये रेशे को उसकी असलीयत में पकड़ना गिरिराज किशोर की दृष्टि रही है । इसी दृष्टि का उद्घाटन इस अध्याय में है ।

चौथे अध्याय के अंतर्गत गिरिराज किशोर के राजनैतिक संदर्भों की रचनाएँ आई हैं जिसमें राजनैतिक सत्ता एवं पूँजीवाद के गठबन्धन, राजनैतिक दुष्चक्र, राजनैतिक तन्त्र के दिखावे एवं व्यवस्था के भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करनेवाली गिरिराज किशोर की दृष्टि उद्घाटित हुई है । गिरिराज किशोर की रचनाओं का प्रमुख क्षेत्र राजनीति ही है । राजनीति के चित्रण में जिस सूक्ष्मता और प्रामाणिकता का परिचय उन्होंने अपनी रचनाओं में दिया है उसी का विश्लेषण इस अध्याय के तहत किया गया है ।

पाँचवाँ और अन्तिम अध्याय गिरिराज किशोर की रचनाओं के शिल्प विधान पर आधारित है । यद्यपि शिल्प पर अलग से विचार करना वाँछनीय नहीं है किन्तु शिल्प को रचना के एक अविभाज्य घटक के रूप में देखने पर इस पर दृष्टिपात भी रचनाओं के विश्लेषण के दौरान होनेवाली अनिवार्यता हो जाती है । गिरिराज किशोर शिल्प को ढूँढनेवाले रचनाकार नहीं हैं किन्तु उनकी रचनाओं में शिल्प का एक स्वतः स्फूर्त पक्ष विवृत होता दीख पड़ता है । इसी शिल्प के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण यह अध्याय प्रस्तुत करता है ।

उपसंहार के अंतर्गत इन सभी का समग्र रूप से मूल्यांकन किया गया है ।

यह लघु प्रयास आज ग्रंथ का आकार ग्रहण कर रहा है । इस कार्य के संपन्न होने के पीछे जो सबसे बड़ी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन है, वह गुरुदेव श्रद्धेयवर डा. ए. अरविन्दाक्षन जी, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, कोचिन विश्वविद्यालय का मार्गदर्शन है । यहाँ मुझसे जो कुछ भी बन पड़ा है वह उनकी अनुकंपा का ही फल है । उनके प्रति मेरी कृतज्ञता, गूँगे का गुड़ हो गयी है और उनके उपकारों के ऋण से मुक्ति न मेरे संभव है न काम्य ।। किन्तु विश्वास और आश्वस्ति है कि वे मेरी भावनाओं से परिचित हैं । नमामि ।।

धन्यवाद सहित आभारी हूँ परमादरणीय श्री गिरिराज किशोर जी के प्रति जिन्होंने अपनी तमाम व्यस्तताओं के बीच भी मुझे साक्षात्कार के लिए अवसर प्रदान किया । यथाशीघ्र प्रश्नावलियों एवं पत्रों के उत्तर दे कर निरन्तर वे मेरी सहायता करते रहे ।

कृतज्ञता अर्पित करती हूँ आदरणीय गुरुवर डा. पी. वी. विजयनजी संकायाध्यक्ष, मानविकी संकाय, कोचिन विश्व विद्यालय, के प्रति जिनका स्नेहाशीष इस दौरान मुझ पर हमेशा बना रहा और उत्साहवर्धन करता रहा ।

धन्यवाद देती हूँ पुस्तकालयाध्यक्षा श्रीमती कुंञ्जिकाऊटि तम्पुरान जी एवं सहायक श्री एन्टणी जी को जिन्होंने मेरी मदद की ।

धन्यवाद और आभार आदरणीय गुरुजनों एवं प्रिय मित्रों के प्रति जो मेरे इस लघु प्रयास के प्रति शुभाकांक्षी रहे ।

स्मरण कर रही हूँ अपने परिवार के सदस्यों को जो लगातार मेरी सहायता करते रहे एवं इस प्रयास के ग्रंथाकार ग्रहण करने की कामना एवं प्रतीक्षा करते रहे ।

मेरे इस लघु प्रयास में खूबियाँ तो सन्दिग्ध है परन्तु खामियाँ निश्चित है उन खामियों के लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ ।

Shanti 15.3.96
शान्ती नार

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय,

कोचिन - 22.

15 मार्च 1996.

विषय सूची

विषय	पृष्ठ संख्या
पुरोवाक्	I - VII
पहला अध्याय	1 - 38
कथा-शिल्पी गिरिराज किशोर	
- जीवन परिवेश का प्रभाव	
- साहित्य और कला संबंधी मान्यताएँ	
- रचना और आलोचना	
- रचना और भाषा	
- रचना और विचार धारा	
- आन्दोलनों से मुक्ति	
- प्रभावग्रहण	
- रचना परिदृश्य	
- राजनैतिक परिदृश्य	
दूसरा अध्याय	39 - 99
समकालीन कथा-साहित्य का व्यापक परिदृश्य	
- समकालीन कथा	
- व्यवस्था और आज का आदमी	
- राजनीतिक विसंगतियों के बिखरे चित्र	
- मध्यवर्गीय मानसिकता के विभिन्न आयाम	
- महानगरीय जीवन बोध की समकालीनता	

पृष्ठ संख्या

- ग्रामीण जीवन-स्थितियाँ
- स्त्री-पुरुष संबंधों का दायरा
- पीढ़ियों की टकराहट और समकालीन कथा
- संबंध का आर्थिक दायरा

तीसरा अध्याय 100 -- 153

समकालीन सामाजिक स्थितियों की अंतरंगता और

गिरिराज किशोर का कथा साहित्य

- दलित चेतना का आयाम
- मध्यवर्गीय जीवन स्थितियाँ
- निम्नवर्गीय जीवन स्थितियाँ
- अर्थ के दायरे और मानवीय संबंध
- वैज्ञानिक क्षेत्र की असंगतियाँ

चौथा अध्याय 154 -- 215

गिरिराज किशोर के कथा-साहित्य का राजनैतिक परिप्रेक्ष्य

- राजनैतिक सत्ता और पूँजीवाद का गठ बन्धन
- बदलती राजनैतिक स्थितियाँ और टूटती सामन्ती ढाँचा : लोग
- सामन्तवाद और परिवर्तनशील शक्तियों का द्वन्द्व
- राजनैतिक स्थितियों एवं सामन्तवाद के बदलते चेहरे
- कहानियों की राजनैतिक दिशाएँ
- राजनैतिक दुष्चक्र

पृष्ठ संख्या

- अमानवीयता के प्रसंग
- दिखावटीपन का तन्त्र
- राजनीति का दूरवर्ती नियंत्रण
- व्यवस्था और राजनीति

पाँचवाँ अध्याय 216 - 259

गिरिराज किशोर के कथा-साहित्य का शिल्प-विधान

- शिल्प की नयी अवधारणा
- पात्र केन्द्रीकरण का समकालीन संदर्भ
- स्थितियों के साथ पात्रों की अन्विति
- किस्सागोई शैली
- प्रतीकात्मक कथा-शिल्प
- फैन्टसी शिल्प
- भाषिक संवेदना

उपसंहार 260 - 268

संदर्भ ग्रंथ सूची 269 - 279

पहला अध्याय

कथाशिल्पी - गिरिराज किशोर

उत्तर शती के साहित्य की विकास यात्रा में, अपने लेखन की स्तरीयता को बनाये रखते हुए, रचनाकर्म के साक्ष्य को सही मायनों में प्रस्तुत करनेवाले सुपरिचित रचनाकार है गिरिराज किशोर ।

सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में आन्दोलनों की जो भरमार रही है उसकी कोई रचनात्मक उपलब्धि रही या नहीं यह अलग बात है । परन्तु यहाँ एक बात देखने को मिलती है कि इनके दौरान सृजनात्मक विधाएँ विशेषत: कहानी, उपन्यास, कविता आदि अधिक या आंशिक रूप से कुछ चालू मुहावरों एवं नुमाइशों में उलझ जाती हैं । अपनी सृजनात्मक सम्भावनाओं का अर्थपूर्ण विस्तार करने का अवसर वे प्राप्त नहीं कर सकीं । इस समय कुछ लेखकों ने अवश्य अपने आप को इन आन्दोलनों से अछूता ही रहने दिया । अपने लेखन कार्य को आगे बढाने के लिए किसी आन्दोलन विशेष के अन्तर्गत अपना नाम पंजीकृत करने की आवश्यकता उन्होंने महसूस नहीं की । गिरिराज किशोर वस्तुत: इन्हीं सशक्त लेखकों में से हैं ।

यद्यपि कथाशिल्पी के रूप में ये अधिक चर्चित रहे हैं, परन्तु अन्य विधाओं में भी इसका योगदान कम नहीं है । उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना आदि सभी क्षेत्रों में गिरिराज किशोर ने अपनी लेखनी चलायी है । यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि नीम के फूल {1964}, चार मोतीबे आब {1964} पेपरवेट {1967} रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ {1968}, शहर दर शहर {1976}, हम प्यार कर ले {1980}जगतारनी तथा अन्य

कहानियाँ §1981§, गाना बड़े गुलाम अलीखाँ का §1986§, वल्द रोजी §1988§, यह देह किसकी है §1990§, आन्द्रे की प्रेमिका तथा अन्य कहानियाँ §1994§ आदि कहानी संकलनों के दौरान या लोग §1966§, चिड़ियाघर §1968§, यात्राएँ §1973§, जुगलबन्दी §1984§, दो §1974§, इन्द्र सुनें §1978§, दावेदार §1978§, तीसरी सत्ता §1982§, यथा प्रस्तावित §1982§, परिशिष्ट §1984§, असलाह §1987§, अन्तर्ध्वंस §1990§, ढाईघर §1991§, आदि उपन्यासों के तहत या प्रजा ही रहने दो से लेकर जुर्म आयद तक के अपने नाटकों में कहीं भी गिरिराज किशोर के सन्दर्भ में अपने आपको दोहराने की स्थितियाँ नहीं आयीं ।

गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में जहाँ एक ओर सामन्ती ढाँचे के चरमराने और टूटने की पीड़ा भरे पात्र हैं वहीं बेरोज़गारी को लेकर आम कहे जानेवाले आदमी की यातनाओं के आधारभूत कारणों की खोज भी उन्होंने की है । राजनीति की अनजानी अनपहचानी स्थितियों एवं उनके बीच पनपती विसंगतियों के चित्रण में वे अकेले किन्तु दक्ष हैं । कभी सीधे तो कभी फैन्टसी के माध्यम से उन्होंने इस पर लेखनी चलायी है । यथास्थितिवाद के वे बिलकुल खिलाफ नज़र आते हैं व सामाजिक बदलाव की आकांक्षा भी उनमें फलवती है । लेकिन सामाजिक बदलाव की शक्तियों के सकारात्मक और संघर्ष की प्रक्रिया पर गिरिराज किशोर केन्द्रित नहीं होते । इस वर्ग के सीधे और प्रत्यक्ष चित्रण से हट कर वे उस वर्ग का चित्रण करते हैं जो आदमी की यातना का उत्तरदायी है ।

जीवन परिवेश का प्रभाव

गिरिराज किशोर स्वयं एक जमीन्दार परिवार से रहे हैं और एक तरफ यह प्रश्न है कि ऐसे पारिवारिक वातावरण और मुज़फ़्फ़र नगर की हवा, जिसे उन्होंने स्वयं गैर साहित्यिक कहा हैं में ऐसा एक लेखक किस तरह उभर कर आया ? या गिरिराज किशोर के समक्ष ऐसी क्या बाध्यता थी जिसने उन्हें लेखक बनाया ? इस पर वे खुद ही हैरान होते हैं । पिता तथा पितामाह तो फारसी और अंग्रेज़ी छोड किसी भाषा की जानकारी रखते नहीं थे । हाँ पितामाह के हिन्दी प्रेमी भाई की बदौलत उन्होंने हिन्दी अवश्य सीखी ।

गिरिराज किशोर के लेखन कार्य के साथ उनके बचपन के अकेलेपन का संबंध है । माँ जो संगीत-गायन में अधिक रुचि रखती थी बचपन में ही चल बसीं थी । मातृ विहीन बालक में जो अन्य नारियों के प्रति बाल सुलभ आकर्षण था, संभवत: उसी ने उन्हें बंगला उपन्यासों की ओर आकर्षित किया । उस ज़माने के अन्य विद्यार्थियों से अलग गिरिराज किशोर ने उपन्यास वाचन शुरू कर दिया था और इसी दौरान उनपर प्रेमचन्द तथा शरतचन्द्र का प्रभाव भी पडा । इन्हीं से प्रभावित होकर गिरिराज किशोर ने लेखन कार्य आरंभ किया । सन् 1959 में पहली कहानी आगरा के साहित्यिक अखबार में छपी । हिन्दुस्तान-दैनिक के "साप्ताहिक परिशिष्ट" और मध्यप्रदेश में भी इनकी रचनाओं का प्रकाशन हुआ और इसके बाद जब इनकी रचनाएँ "कादम्बिनी" और "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में प्रकाशित होने लगीं तो संभवत: विधिवत लेखन आरंभ हो गया था ।

गिरिराज किशोर के लेखन में मौजूद परिस्थितियों पर यदि विहंगम दृष्टि डाली जाये तो हम देखते हैं कि उन्होंने सोशलवर्क में एम. ए. किया और फैक्ट्री में लेबर अफसर हो गये । वहाँ पर न निभ पाने के कारण उन्होंने नौकरी छोड दी । फिर वे इलाहाबाद में एम्प्लॉयमेन्ट अफसर रहे । प्रतिकूल परिस्थितियों में वहाँ से इस्तीफा दे दिया । इसके बाद तकरीबन ढाई वर्ष तक उन्हें फ्रीलांसिंग करनी पडी फिर इलाहाबाद में ही प्रोबेशन अफसर हो गये । वह नौकरी भी छूट गयी तो कानपुर में असिसटेन्ट रजिस्टार हो गये फिर डिप्टी रजिस्ट्रार हुए । फिर रजिस्ट्रार के पद पर ये आई. आई. टी में आ गये । वहाँ भी निर्देशक द्वारा निलम्बित किये गये ।[1] परन्तु अपने आपसे बचकर भागना उन्हें स्वीकार्य नहीं था । इन तमाम घटनाओं से इतना अवश्य हुआ कि विभिन्न सोपानों पर चढ़ते उतरते गिरिराज किशोर अनुभवों के धनी हो गये और संभवतः इस दौरान हुए तजुर्बों ने गिरिराज किशोर के लेखन के लिए सर्वाधिक उर्वर भूमि तैयार कर दी । वे स्वयं इस बात को मानते हैं कि स्थितियों से असन्तुष्ट न होना या लेखक की मानसिकता और स्थितियों में तालमेल न बैठना ही तो सृजनात्मक लेखन के लिए सर्वाधिक उर्वरा भूमि है । कोई भी लेखक तभी लेखक है जब वह अपने चारों ओर की स्थितियों से तालमेल नहीं बिठाता । जैसे ही वह सन्तुष्ट हो गया उसका लेखन भी समाप्त हो गया । दर असल असन्तोष, संघर्ष और परिस्थिति को बदलने की ललक ही उसे लेखक बनाती है ।[2]

---

1. साक्षात्कार , अपने आपसपास, पृ. 32.
2. गिरिराज किशोर, लिखने का तर्क - न लिखने का तर्क, पृ. 91.

गिरिराज किशोर केलिए लेखन मात्र संघर्ष नहीं रहा । वहाँ लेखन का संघर्ष तथा जीवन का संघर्ष दोनों ही सुसम्बद्ध रहे । जिस सच्चाई को उन्होंने जीवन में अनुभव किया वही उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त हुई है ।

गिरिराज किशोर की कहानियों का प्रमुख क्षेत्र राजनीति ही है । वे स्वयम् राजनीति में उतर कर कभी नहीं आये लेकिन अपने जीवन के आरंभिक दिनों से उनके ताल्लुकात ज़रूर रहे थे । एक तरह से उनका बचपन और युवावस्था राजनीतिज्ञों के बीच ही गुज़री थी । समकालीन रचनाकारों में अन्य भी है जिन्होंने राजनीति को अपना विषय बनाया है । लेकिन राजनैतिक संदर्भों में वह सूक्ष्मता और प्रामाणिकता जो हमें गिरिराज किशोर की रचनाओं में मिलती है, अन्यत्र शायद ही प्राप्त हो । केवल कुछ इशारे भर कर देने से कोई भी रचना राजनैतिक नहीं बन जाती, केवल संकेतों से काम नहीं चलता । जीवन की अदूरदर्शिताओं को प्रादेशिक या देश के स्तर पर दिखाना होता है और इसी को गिरिराज किशोर ने बाखूबी कर दिखाया है । इनकी रचनाएँ राजनैतिक बोध को मानवीय स्थितियों के साक्षात्कार के रूप में अभिव्यक्त करती हैं । "पेपरवेट", नया चश्मा, वी.आई.पी. जैसी कहानियाँ, लोग, यथाप्रस्तावित जैसे उपन्यास इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं ।

लेखक का मानस मूलतः एक ऐसी मिट्टी है जहाँ अनुभव के बीजों को प्रस्फुटन और बढ़ौतरी की दृष्टि से सही लेखकीय दृष्टि, यथार्थ

की पहचान कल्पना की उडान, अभिव्यक्ति और अभिव्यक्ति तथा प्रकाश की मुक्तता के रूप में उचित परिणाम उपलब्ध हो जाते हैं अन्तत: उसी का विकास रचना के रूप में होता है ।

विभिन्न पदों पर कार्यरत रहने के कारण गिरिराज किशोर का उन सभी वातावरणों से भी सीधा साक्षात्कार हुआ है जो प्रशासन या अफसरशाही से संबंधित है । कार्यालय तथा व्यवस्था में जो समकालीन यथार्थ रहा है उसे उन्होंने स्वयम् जाना और महसूस किया है । इस बात में तो शक की गुंजाइश ही नहीं कि वे विसंगतियाँ, विवशताएँ और अन्तर विरोध उनकी रचनाओं में प्रतिफलित हुए हैं । कार्यालयी जीवन को "खरबूजे", "क्लर्क", "दो" जैसी रचनाएँ बाखूबी व्यक्त करती हैं ।

मुजफ्फर नगर जो कि गिरिराज किशोर की जन्मस्थान है, वहाँ के वातावरण को यद्यपि गिरिराज किशोर ने गैर साहित्यिक घोषित किया है ।[1] फिर भी ऐसी बात कदापि नहीं कि मुजफ्फर नगर के सामाजिक वातावरण और उनके अपने परिवार के माहौल का उनके लेखन पर कोई प्रभाव न पडा हो । सामन्तवाद का वह पुराना रूप उन्होंने स्वयम् अपने परिवार में देखा था और उस सामन्ती ढाँचे के चरमराने की पीडा से भरे पात्रों को भी । आगे चल कर स्वराज के आ जाने पर

---

1. रचनाकार और जख्म-ए-जिगर, गिरिराज किशोर, पृ. 39
'लिखने का तर्क'

सामन्तवाद के बदले हुए रूप को भी । "लोग" तथा "ढाई घर" जैसे उपन्यासों की विषय वस्तु सार्थकता के पीछे लेखक के इस निजी अनुभवों का संस्पर्श ही विद्यमान है । गिरिराज किशोर की रचनाओं के पात्र, विशेषकर उन रचनाओं के जो मध्यवर्ग या निम्नवर्ग की समस्याओं को या उनके यथार्थ को उजागर करती हैं इसी परिस्थिति से आये हुए प्रतीत होते हैं । गिरिराज किशोर स्वयम् कहते हैं कि मुजफ्फर नगर जैसे लेखकीय संस्कार विहीन वातावरण में चील-कौवे बनकर लेखक अहम को संजोने का दुस्साहस अपने आप में चाहे हास्यास्पद रहा हो परन्तु उत्साहवर्धक था । उस समय हर छोटी-मोटी खरोंच, घटना, परिदृश्य रचना होने की संभावना से भरपूर महसूस होते थे ।[1] यहीं पर हम ने देखा के संवेदना और विशद अनुभव के अंश मुजफ्फर नगर के माहौल से अछूते नहीं है और उन्हें लेखक ने मानवीयता के स्तर पर लाकर सामाजिकता से जोडने का प्रयास भी किया है । निम्न वर्ग के लोगों के संबंध में गिरिराज किशोर का कहना है कि "वे लोग इनसान की जरूरतों को अन्य किसी से बढकर कद्र करते हैं ।"[2] उनके उपन्यास "दो" की नायिका एक पति को छोड दूसरे के घर चली जाती है । यों तो भारतीय समाज में यह एक अपराध की भाँति ही समझा जाता है । लेकिन हकीकत यह है कि भारतीय समाज के निम्नवर्ग में यह आम बात है । इस विषय में एक साक्षात्कार में गिरिराज किशोर स्वयं कहते हैं कि "मेरे यहाँ की कई औरतों ने ऐसा किया है ।"[3] लेखक रचना के लिए "जख्मे जिगर" की बात करते हैं । और यह कहना कदापि पूर्ण सत्य न होगा कि इसे प्रदान

---

1. संवाद सेतु, गिरिराज किशोर, पृ. 99.
2. गिरिराज किशोर से साक्षात्कार, अपने आस पास, पृ. 32.
3. वही, पृ. 33.

करने में मुज्जफर नगर की परिस्थितियों ने अपना कोई भी योग नहीं दिया । गिरिराज किशोर के कथा-साहित्य में अधिकांश पात्र जीवन के यथार्थ से ही लिये गये हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि यथार्थ चरित्रों को जब लेखक लिखने बैठे तो संवेदना के स्तर पर वह पुन: जीने का प्रयास करते हैं । यहाँ पर संवेदना अनुभव के साथ जुड़कर चरित्रों को जिस प्रकार सामयिक और अर्थपूर्ण बनाती है इसे देखते हुए पाठक निश्चित रूप से कह सकता है कि कल्पना वायवी नहीं है ।

अपने रचना कर्म की सार्थकता गिरिराज किशोर जीवन दर्शन और वास्तविकता को जोड़कर उसे आत्मसात करने में मानते हैं । आज के युग में अपने जीवन दर्शन के हिसाब से अपनी शर्तों पर जीवन जीने और रचना करने की क्षमता शायद ही कोई निर्मित कर सकता है । गिरिराज किशोर के अनुसार लेखक यदि अवसर जीवी या सुविधाजीवी हो जाता है तो उसका कारण लेखक की अपनी बाध्यताएँ हैं । इस प्रकार के माहौल में आकर ही लेखकीय प्रतिबद्धता और उससे जुड़े हुए मूल्य उपेक्षित हो जाते हैं ।[1]

इतने जिम्मेदार पदों पर रहते हुए भी गिरिराज किशोर के लेखन या रचनाकार्य में कभी व्यवधान नहीं आया है । गिरिराज किशोर का लेखन कार्य सफल है और उनकी रचनाओं में स्तरीयता भी बरकरार है ।

---

1. गिरिराज किशोर, लिखने का तर्क, पृ. 92.

आज भी वे सृजनरत है वे महसूस करते हैं कि उनका लेखन अभी तक किसी मंजिल पर नहीं पहुँचा । आज भी वे मानते हैं कि अपने रचनात्मक जीवन में वे संघर्ष कर रहे हैं क्योंकि रचनाकार हो जाना पर्याप्त नहीं है । संवेदना को विस्तृत करना मुख्य उद्देश्य है ।

साहित्य और कला संबंधी मान्यताएँ

गिरिराज किशोर की लेखन और साहित्य संबंधी मान्यताएँ उनकी स्वयं निर्मित ही हैं । कला और साहित्य के संबंध में उनके अपने विचार हैं । जिनका प्रतिफलन एक ओर तो हमें उनकी रचनाओं में मिलता है, दूसरी ओर समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख और आलोचनात्मक पुस्तकें "संवाद सेतु", "लिखने का तर्क", तथा "कथ अकथ" भी इस संबंध में प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं । विभिन्न संदर्भों में उनसे हुए साक्षात्कारों में भी उन्होंने अपने विचारों को स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है ।

गिरिराज किशोर के अनुसार साहित्य ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ अनुभव कार्य करता है । केवल असामान्य स्थितियाँ ही इस संदर्भ में हस्तक्षेप कर सकती है विशेषकर ऐसी स्थितियाँ जो ऐसे लोगों द्वारा उत्पन्न की जाती है जो साहित्य को समझ पाने में असमर्थ होते हैं। वे कहते हैं कि "अनुभव का विस्तार और प्रामाणिकता ही रचना का स्वरूप तय करती है जितनी बड़ी संवेदना होगी उतनी ही बड़ी रचना होगी ।"[1]

---

1. दस्तावेज़, जनवरी-मार्च, 1994, पृ. 18.

कम लेखन को श्रेष्ठ लेखन की अनिवार्य शर्त के रूप में गिरिराज किशोर कदापि नहीं स्वीकार करते हैं । उनके अनुसार "कला और साहित्य के क्षेत्र में परिवार नियोजन नहीं चलता ।"[1] अच्छी और दीर्घ जीवी रचना के लिए सतत लेखन की आवश्यकता गिरिराज किशोर महसूस करते हैं । दशकों तक बिना लिखे "प्रेक्टिसिंग" राइटर बने रहना भाग्य की बात हो सकती है कर्म की नहीं । प्रेमचन्द जिनके लेखन से गिरिराज किशोर बहुत अधिक प्रभावित रहे हैं । उनके लेखन से भी इस कथन की सारहीनता ही सिद्ध होती है कि ज़्यादा लेखन सृजन न होकर उत्पादन है । प्रेमचन्द के लेखन का स्तर एक सा ही रहा है । उनकी कुछ रचनाएँ उन्हीं में से विशिष्ट हो गयी हैं । इसी कारण गिरिराज किशोर मानते हैं कि "लेखन का मतलब लिखना उपन्यास और अनुशासन है । भारतेन्दु से लेकर नागार्जुन तक, अज्ञेय तक हिन्दी लेखन में ये दोनों बातें अनिवार्यतः रही हैं ।"[2]

सतत लेखन के साथ गिरिराज किशोर लेखन की स्तरीयता में भी विश्वास करते हैं । यहाँ पर एक शर्त और उठ खड़ी होती है कि निरन्तर लेखन में लेखक को दो प्रकार के लेखन कार्य करने होते हैं । एक तो तात्कालिक लेखन का दूसरा सर्जनात्मक लेखन का । इन दोनों लेखन प्रक्रियाओं में काफी अन्तर भी होता है । इसके संबंध में गिरिराज किशोर ने अपने मत प्रकट किये हैं -"तात्कालिक लेखन में बहुत से बिन्दु स्पष्ट रहते हैं लेकिन सर्जनात्मक लेखन अतीत से लेकर भविष्य तक जड़ फैलाता है । इसलिए

1.

2. बेहतर लेखन या निरन्तर लेखन, गिरिराज किशोर, जनसत्ता, 12 अप्रैल 1987.

उसका विस्तार बाह्य उतना नहीं होता जितना आन्तरिक होता है। अपने रचनात्मक लेखन का जो स्वरूप होना चाहिए उसका निर्धारण लेखक स्वयं करता है। गिरिराज किशोर के अनुसार "रचनात्मक लेखन एक ऐसी वस्तु है जो चैन से नहीं रहने देती। पारे की तरह फूटती है। लेखक के लिये लेखन गौण तभी होता है जब वह लेखन से अधिक महत्व किसी दूसरी चीज़ को देता है। या फिर लेखन के विरुद्ध किसी प्रकार की ग्रन्थि पाल लेता है।"[2] लेखक अनुभवों के घनीभूत होने की स्थिति में स्वयं को लिखने की क्रिया से बचा नहीं सकता। इसी कारण गिरिराज किशोर यह पूछते हैं कि "लेखन को अगर साधना न मानकर कोई ऐसी चीज़ समझा जायें जो एक भौतिक प्रक्रिया मात्र हो तो भी लेखक उसके दबाव से कैसे बच सकता है।

गिरिराज किशोर मानते हैं कि साहित्य ही नहीं बल्कि दर्शन, विज्ञान और विचार की दुनियाँ का भी मानव और पारिवारिक इकाई के साथ गहरा रिश्ता होता है। भले ही यह संबंध हमें प्रत्यक्ष रूप में न दीख पड़ें। परन्तु ये सब भी मनुष्य के मानसिक, भौतिक और आध्यात्मिक विकास के लिये ही होते हैं। किन्तु इनमें से भी साहित्य ही ऐसा क्षेत्र है जहाँ पर मनुष्य और परिवार को स्वतंत्र और सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में लिया जाता है। बिना मनुष्य और परिवार के साथ अन्तरंगता स्थापित किये साहित्य चलता नहीं है। परिवार और

---

1. गिरिराज किशोर से राकेश सक्सेना की बातचीत (6 अगस्त 1989 को)
2. बेहतर लेखन या निरन्तर लेखन - गिरिराज किशोर
3. वही

परिवारों के आधार पर गठित समाज साहित्यिक आस्था और संवेदना का सबसे बडा आधार होता है । इसी कारण गिरिराज किशोर इस बात को पूर्ण रूप से स्वीकारते है कि "मनुष्य परिवार और परिवारों से जुडी संवेदनाएँ जितनी गहन होती जाती है रचना की उत्कृष्टता उतनी ही प्रमुख होती जाती है ।"[1]

गिरिराज किशोर के मतानुसार रचनात्मक लेखन की बुनियाद संवेदना की गहनता है । लेखन में जो संवेदना का स्वरूप होता है वही रचना की कसौटी बनता है । वे मानते हैं कि संवेदना की विराटता ही लेखक या उसकी कृति को कालजयी बनाती है । टालस्टाय, दोस्तायेवस्की, गोर्की का साहित्य इस बात का प्रमाण है कि उनका आत्मानुचिंतन और रचनात्मकता एक हो गये हैं । उनके द्वारा अनुभूत सत्य उनके अपने युग के सत्य से भी अधिक महत्वपूर्ण है । हिन्दी उपन्यासकारों में प्रेमचन्द, अज्ञेय, यशपाल और निराला के उपन्यासों की संवेदना पाठक और आलोचक दोनों को हो अपने धारा प्रवाह में बहा ले जाने में समर्थ है । उनके अनुसार -"संवेदना सूरदास की पारस पत्थरी है" गुण-औगुण विसरा कर कंचन करती है । संवेदना ही है जो अनुभव को भी सोधती है और पात्रों को भी, मोती, मानुस चुन के संदर्भ में जिस पानी के महत्व की परिकल्पना की गयी है, लेखक के संदर्भ में वही संवेदना है ।"[2]

---

1. साहित्य और समाज परिवर्तन की प्रक्रिया, संपादक अज्ञेय, सामाजिक परिवर्तन और टॉलस्टाय, गिरिराज किशोर
2. समकालीन भारतीय साहित्य, हिन्दी उपन्यास : संवेदना और मूल्यांकन का प्रश्न, गिरिराज किशोर, {वर्ष 5, अंक-18, अक्तूबर-दिसंबर 1987, पृ. 125.

रचनाकार अपने संवेदना को विराट मानवीय संवेदना से तभी जोड सकता है जब वह अपने अहम् के साथ सबके अहम् को पहचान सकने की सामर्थ्य और धैर्य रखता है । यही लेखकीय अनुभव का स्वरूप होता है । अनुभव का बरदाश्त से बाहर हो जाना रचनाकार की अभिव्यक्ति का बिन्दु है । अभिव्यक्ति रचना प्रक्रिया का प्रतिफल और अंग दोनों ही है । रचनाकार का यह संघर्ष नितान्त व्यक्तिगत है । फिर भी लेखक उसे आत्मानुचिन्तन के रूप में व्यक्त करने के लिए बाध्य है यही रचनाकार की समझ और सारस्वतता का प्रमाण है - रचनाकार के अपने अन्दर या बाहर जो कुछ भी संवेदना के बृहद स्तर पर घटित होता है और तादात्म्यता की जिस सीमा तक रचनाकार उस अनुभव के साथ अपनी रचनात्मकता का रिश्ता जोडता है वही उसके रचना सामर्थ्य और अनुभव की विश्वसनीयता की पहचान होता है ।[1]

गिरिराज किशोर की मान्यता है कि रचनात्मक संवेदन का प्रयोग इन्सान को बेहतर बनाने के लिए होना चाहिए न कि मात्र मनोरंजन के लिए । लेखक भी अन्य व्यक्तियों के समान समाज का एक हिस्सा है । और समाज के प्रति उसकी भी अपनी जिम्मेदारियाँ हैं । इसी लिये जहाँ उसका समकालीनता से सम्बद्ध होना आवश्यक ठहरता है वहीं उससे अपने आप को दूर रखना भी आवश्यक होता है । यह बात विरोधाभास पूर्ण तो ज़रूर लग सकती है, परन्तु गिरिराज किशोर इस

---

1. गिरिराज किशोर, संवाद सेतु : "रचनाकार और जख्मे जिगर",

संबंध में अपने विचारों को स्पष्ट करते हैं -"वह {लेखक} समकालीन परिस्थितियों का किसी ध्येय या साधन के रूप में उपयोग नहीं करता बल्कि सामग्री की तरह उपयोग करता है ।"[1] यहाँ उनका अभिमत बिलकुल स्पष्ट है कि परिस्थितियों को आत्मसात करने की आवश्यकता है परन्तु वे अभिव्यक्ति के स्तर पर आकर वक्तव्य या विवरण के रूप में लक्षित न होनी चाहिए । वे मानते हैं कि "बड़ी संवेदनावाला रचनाकार अनुभव को टुकड़ों में बाँट कर नहीं देखता । जो कुछ भी घटित होता है वह उसे उसकी पूर्णता में ही देखता है । हर बड़ी संवेदना वाला रचनाकार जिस "स्ट्रोक" से अपनी रचना को पूर्णता प्रदान करता है वही स्ट्रोक समकालीन ज़िन्दगी से जुड़ी संवेदना की तस्वीर को भी पूरा करता चलता है ।[2]

आधुनिकता को परंपरा के विरोध के रूप में गिरिराज किशोर कभी भी नहीं स्वीकार करते हैं । जो कुछ पुराना चलता आ रहा है उसकी प्रासंगिकता और सार्थकता को नकारने और नये मात्र को सत्य मानने की यह समझ भी गिरिराज किशोर के अनुसार हमारे अपने समाज की देन नहीं है । उनके अनुसार तो यह कुछ लेखकों के प्रति आरोपित विचार है जो कि इस रूप में सामने आया । वे मानते हैं कि अनुभव कभी भी अनुकरण नहीं होता और अनुकरण कभी भी अनुभव नहीं बन पाता । सही सही रचना रचनाकार की संचेतना से उपजती है और ऐसी रचना

---

1. गिरिराज किशोर, प्रेमचन्द काव्यार्थ, पृ. 94.
2. सृजन और संप्रेषण, संपादक अज्ञेय, पृ. 110, कथा साहित्य : स्वभाव समाज और संबंध, गिरिराज किशोर.

जितनी बार पढ़ी जाती है उतनी ही वह ज़िन्दगी को हमारे पास लौटा लाती है ।" जब जब रचनाकार रचना को ज़िन्दगी का माध्यम बनाने के चक्कर में पड़ा तब तब रचना और रचनाकार के बीच का रिश्ता कमज़ोर हुआ ।"[1] आधुनिकता के दर्शन को तो गिरिराज किशोर स्वीकार करते हैं परन्तु वे यह भी मानते हैं कि आधुनिकता की अपनी प्रक्रिया है । "ज़िन्दगी, अनुभव, सामाजिक परिप्रेक्ष्य, जातीय चिन्तन, परंपरा को लेकर जब पुनर्विचार पर पुनर्विचार होता है तब कहीं जाकर आधुनिकता का सही रूप सामने आता है ।"[2] इसी कारण वे मानते हैं कि आधुनिकता एक सार्थक परिवर्तन की पृष्ठभूमि है । इससे तात्पर्य परिवर्तन की सीमाओं और उसके सही विकल्प को समझने की तमीज़ से है । गिरिराज किशोर के अनुसार इसमें एक लम्बा समय लग जाता है । वे कहते हैं कि जब मूल्य समाजोपयोगी नहीं रह जाते तब उनके बारे में साहित्यिक और रचनात्मकता के स्तर पर सामूहिक विचार होता है या फिर उन्हीं मूल्यों या परंपराओं को जाँचने परखने के लिए कुछ समय दे दिया जाता है यह प्रवृत्ति साहित्य में बहुत समय तक नहीं चलती ।

साहित्य को गिरिराज किशोर परिवर्तन या क्रान्ति का उपकरण नहीं मानते । किसी विशेष उद्देश्य से सृजित साहित्य को वे क्रान्ति का साहित्य अवश्य कहते हैं । वे मानते हैं कि "साहित्य को यदि समकालीन दृष्टि यथार्थवादी माना जाये तो अनुचित नहीं होगा । उस समय की

---

1. सृजन और संप्रेषण, संपादक अज्ञेय, पृ. 111, कथासाहित्य : स्वभाव, समाज और संबंध, गिरिराज किशोर
2. वही

परिस्थिति आनेवाले भविष्य की ओर भले ही संकेत करती हो पर ऐसी कोई भी रचना नहीं जो परिवर्तन लाने की दृष्टि से लिखी गयी हो और उससे परिवर्तन आया हो। रचना की प्रामाणिकता अनुभव के साक्ष्य से सिद्ध होती है।"[1] इसीलिए वह जीवन और समाज का दर्पण होती है तथा जीवन जीने का ढंग है।

साहित्य की विचार मूलकता को तो गिरिराज किशोर स्वीकारते हैं पर साथ ही यह भी मानते हैं कि साहित्य में जो विचार होते हैं उनका असर अचानक ही हो जाये यह बात असंभव है - सामाजिक क्रान्तियाँ राजनैतिक धार्मिक परिवर्तन सदा विचार के माध्यम से होते हैं। साहित्य विचार-मूलक है परन्तु साहित्य के माध्यम से दिया जाने वाला विचार बहुत आहिस्ता-आहिस्ता असर करता है।"[2] गिरिराज किशोर के अनुसार साहित्य तत्कालीन समाज को जितना प्रभावित करता है उससे कहीं अधिक रूप से वह भविष्य में बननेवाले समाज पर असर छोडता है। "रचनात्मक साहित्य के माध्यम से किसी परिवर्तन की भूमिका तो तैयार होती है परन्तु वह उसका माध्यम या हथियार नहीं हो सकता। यह जो भूमिका तैयार होती है वह समाज को उतना प्रभावित नहीं करती जितना बननेवाले समाज का आधार तैयार करती है। समझ का माध्यम तो साहित्य होता है परन्तु परिवर्तन का माध्यम साहित्य नहीं होता।"[3] इसके साथ ही यह

---

1. साहित्य और समाज की परिवर्तन की प्रक्रिया, संपादक अज्ञेय, सामाजिक परिवर्तन और टालस्टाय, गिरिराज किशोर, पृ.
2. वही, पृ. 143.
3. वही, पृ. 144.

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि किसी किसी साहित्यिक रचना के बहुत से पक्ष होते हैं । और इन सभी पक्षों को पूर्ण रूप से व्याख्यायित करने में समकालीन समझ नाकामयाब रह जाती है । एक बड़े अन्तराल के बाद वे रचनाएँ पकड़ में आती है ऐसी रचनाओं के रचनाकार अपने अनुभवों का प्रक्षेपण इस प्रकार कर देते हैं कि वे अपने समय के आगे चले जाते हैं और ऐसा साहित्य भविष्य की भूमिका भी तैयार करता है । साथ ही आनेवाले समय के लिये समझ का वाहक भी होता है ।

रचना और आलोचना

गिरिराज किशोर मानते हैं कि रचना की कसौटी वास्तव में रचनाकार की सन्तुष्टि है । परंपरागत रूप से अनेक निकष है जो बनते और बिगडते रहते हैं । परन्तु उनमें से कोई भी पूर्ण नहीं होता । जब लेखक लेखन को एक साधना के रूप में लेता है और उसका मन लेखन में जम जाता है तो उस समय उसे जो आत्म संतुष्टि मिलती है वही गिरिराज किशोर के अनुसार रचना के लिए भी संतृप्ति की अवस्था है । जहाँ तक आलोचना का प्रश्न है गिरिराज किशोर उसके पाठक और रचना के बीच का सेतु होने की आवश्यकता महसूस करते है । ताकि रचना और पाठक के बीच एक संवाद की स्थिति उत्पन्न हो सके ।

रचना और आलोचना के बीच के सम्बन्धों पर गिरिराज किशोर अपना अभिमत प्रकट करते हुए कहते हैं -"रचनाकार रचना को रचते

समय चाहे जितनी मोह माया संवारे या अपेक्षाएँ संजोये रचना के प्रकाशन के बाद वह रचना के प्रति संरक्षण वाला रुख नहीं अपना सकता क्योंकि प्रकाशन के बाद रचना को अपने रचनाकार के बल पर नहीं अपनी प्राथमिकताओं और पाठक के साथ बननेवाली तादात्म्यता पर निर्भर रहना चाहिए ।"[1] गिरिराज किशोर मानते हैं कि रचनाकार अगर अपने को रचना के सन्दर्भ में होनेवाले समीक्षा कर्म से एक सीमा तक तटस्थ नहीं रखता तो वह अपने रचना कर्म से विमुख होता है और अपनी रचना के स्वाभाविक रूप से सामाजिक संदर्भों के साथ विकसित होने का अवसर नहीं देता है वे मानते हैं कि रचनाकार के लिए यह आवश्यक है कि वह समझे कि उसकी रचना सामर्थ्य सीमा कहाँ है । एक सीमित काल तक ही रचनाकार सक्रिय रह सकता है । अगर रचनाकार को इसकी समझ हो तो फिर कटु से कटु, पूर्वाग्रही से पूर्वाग्रही आलोचना भी उसे आहत नहीं कर सकती है ।

गिरिराज किशोर के अनुसार समीक्षा का अर्थ न तो रचना को ध्वस्त करना है न ही उसे आवश्यकता से अधिक ऊँचा कर उसका स्वरूप ही बदल देना है । वे कहते हैं -"आलोचना का कर्म है साहित्य की सकारात्मक पहचान और उसकी कमियों का आत्मविश्लेषण । अच्छे आलोचक का यही दायित्व है कि वह संभावनाशील रचनाकार के बारे में सकारात्मक रुख अपनाएँ और पाठकों को उसे समझने में सहायता दें । मैं अगर आलोचना लिखूँगा तो ऐसी आलोचना लिखूँगा जो पाठक लेखक और रचना के बीच एक समझदारी और आत्मीयता का सम्बन्ध बनाये रखे ।"[2] वास्तविक एवं

---

1. आठवें दशक की हिन्दी आलोचना, संपादक विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
2. दस्तावेज़, जनवरी-मार्च , पृ. 18.

रचनात्मक आलोचना का काम रचनाकार के भविष्य लेखन का मार्ग प्रशस्त करना होता है । गिरिराज किशोर इस संबंध में एक लेख में कहते भी है - "जिस रचना की समीक्षा होती है उस पर समीक्षा का भला या बुरा चाहे जैसा भी प्रभाव क्यों न पडता हो वह इतना महत्वपूर्ण नहीं होता जितना कि इस प्रकार की समीक्षा द्वारा रचनाकार के भविष्य की रचनात्मकता को कुण्ठित करनेवाला प्रयत्न होता है । ठीक वैसा ही जैसे असमय प्रजनन इन्द्रियों को नष्ट करने का प्रयत्न होता है ।"[1]

जो समीक्षाएँ रचनाकर्म को आगे बढाने के लिए लिखी जाती है उनकी नज़र भविष्य के समाज और उससे उपजने वाले साहित्य पर होती है । समीक्षकों में रचनात्मक दृष्टि का होना भी आवश्यक है । गिरिराज किशोर का अभिमत है कि "समीक्षक का दायित्व अराजकता और असन्तुलन को दूर करना और रचनात्मक मूल्यों को स्थापित करना है । ऐसी समीक्षाएँ रचनात्मक वातावरण बनाने में सहायक होती है ।"[2] साथ ही वे यह भी मानते हैं कि "आलोचक अपने आप को सर्वगुण सम्पन्न मानकर मूर्तिकार की तरह प्रस्थापित नहीं कर सकता ऐसा करने पर वह आलोचना और साहित्य दोनों के ही प्रवाह में अवरोध बन जाता है ।"[3] सृजनात्मक साहित्य के संदर्भ में रचनात्मक सहिष्णुता ही एक तरह से रचनाकार की रचनात्मक तटस्थता का आधार है । गिरिराज किशोर के अनुसार यदि समीक्षा का कार्य भी इसी भावना से किया जाये तो वह भी रचनाकर्म ही होग

---

1. आठवें दशक की हिन्दी आलोचना, पृ. 108.
2. वही, पृ. 109.
3. दस्तावेज़, जनवरी-मार्च, पृ. 18.

रचना और भाषा

गिरिराज किशोर के लेखन और लेखकीय विचारधारा के अन्तर्गत भाषा एक ऐसा पक्ष है जिसे किसी भी हालत में नज़रन्दाज़ नहीं किया जा सकता । गिरिराज किशोर की भाषा संवेदना की विवृति की दृष्टि से काफी संप्रेषणीय है । इस संदर्भ में वे भारतीय भाषा की अस्मिता प्रभुओं की भाषा [अंग्रेज़ी] के सामन्तवाद और उनकी अधीनता स्वीकार करने के प्रश्न पर भी गंभीरता से विचार करते हैं । उनके अनुसार हमारी सभ्यता संस्कृति और तत्संबंधी रुचि का प्रतीक है हिन्दी । इस देश की अठानवे प्रतिशत लोगों की मौलिक संवेदना की वह नस है । जो भाषा के स्तर पर उन्हें अद्भुत रचनात्मकता प्रदान करती है ।[1] उनके द्वारा प्रस्तुत भाषा में जो विविधता है वह विविधता उनके अनुभव की गहराई और संवेदन के संप्रेषण के बीच होनेवाले संघर्ष से जन्म लेती है । रचना प्रक्रिया के दौरान शब्द और अभिव्यक्ति में जो संघर्ष होता है वही इसकी प्रेरणा और प्रतिफल है ।

इसी के साथ भाषा के मूर्त और अमूर्त रूपों पर भी गिरिराज किशोर अपने विचार प्रकट करते हैं । उनके अनुसार अभिव्यक्ति की अनवरत प्रक्रिया को रचनाकार भाषा के मूर्त और अमूर्त स्तरों के मध्य सटीक अभिव्यंजना के लिये प्रयत्नरत रहता है ।

---

1. संवेदना और गर्म नाल की भाषा, गिरिराज किशोर, जनसत्ता, 1987.

गिरिराज किशोर स्वीकारते हैं कि भाषा का प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है । उनके अनुसार जब लेखक लिखना शुरू करता है तब बहुत सपाट भाषा लिखता है या फिर कृत्रिम भाषा लिखता है जैसे उसके ऊपर प्रभाव होते है वैसी भाषा वह लिखता है । लेकिन भाषा की अपनी प्रक्रिया है । "रचनाकार बहुत धीरे-धीरे अपनी भाषा से साक्षात्कार करता है । धीरे-धीरे वह अनुभव के साथ जुडती है और फिर उसी से निकलती है । धीरे धीरे जैसे साधक साधना करता है रचनाकार भाषा के नये-नये आयाम खोजता है ।"[1] गिरिराज किशोर बोलचाल, ज़िन्दगी के मुहावरे तथा आसपास के जीवन के प्रति लेखक की पकड आदि को ऐसी चीज़ों के रूप में स्वीकार करते है जो भाषा को रूपाकार देते हैं । ये सभी बातें बाहरी भाषा की रचना करती हैं । इन सभी स्तरों को पार करके रचनाकार भाषा को संवेदन-शीलता से जोडता है । इसके लिए वह अनुभव के अनुरूप ज़िन्दगी से जूझता भी है । और तब कहीं जाकर उसका अन्तिम स्तर भाषा की सिद्धि का होता है और इस प्रयास में काफी समय लग जाता है । इसी कारण गिरिराज किशोर स्पष्ट रूप से कहते हैं - "लेखक और लेखन के बीच होनेवाला सतत संघर्ष, लेखक को अपनी मृत्यु का सामना करनेवाला संघर्ष है । तो जब तक रचनाकार भाषा के स्तर को नहीं पकडता मैं कहूँगा, जितनी भी उसकी भाषा है सब कृत्रिम है । भाषा अपने आपको ही खोजने की एक आन्तरिक और निजी प्रक्रिया है । जबतक वह खोजता रहता है भाषा दूब की नाल की तरह अन्दर अन्दर बढती रहती है । जब वह खोज बन्द कर देता है तो लगता है वह सूखी पतवार है जो कभी दाइदानल में बदल सकती है और लेखक के संपूर्ण रचना जगत को नष्ट कर सकती है ।"[2]

---

1. गिरिराज किशोर की डा. सुमन राजे से बातचीत ।
2. वही

साहित्य में अपशब्दों के प्रयोग को गिरिराज किशोर वर्जित नहीं मानते हैं उनके अनुसार अपशब्द गाली-गलौच का प्रयोग अक्सर पात्र की मानसिकता, सामाजिक स्तर तथा स्वभाव के यथार्थ का निरूपण, उसके चरित्र निरूपण मनोविश्लेषण आदि में सहायक होते हैं । परन्तु इनसे यदि अश्लीलता की उत्पत्ति होती है तो निश्चित ही आपत्तिजनक है । यह पाठक की रुचि विकृति को ही उभारती है । गिरिराज किशोर का कहना है कि अपशब्द पात्रों के वर्गीय चरित्र को उभारने में सहायक होते हैं और निम्न वर्ग में तो उनकी आत्मरक्षा का माध्यम है ।[1]

रचना और विचारधारा

गिरिराज किशोर ने विभिन्न विचारधाराओं से लेखक के जुड़ने पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं । कोई भी विचारधारा लेखन में कितनी उपादेय हो सकती है इस संबंध में गिरिराज किशोर का मत है कि विचारधारा यदि लेखन में रच बस गयी है और वह लेखन की प्रामाणिकता को विच्छिन्न नहीं होने देती तो वह रचनात्मकता का हिस्सा है । यदि विचारधारा ऊपर से इसलिये थोपी जाती है क्योंकि हम वैचारिक रूप से उसके साथ जुड़े हैं पर वह हमारी संवेदना का हिस्सा नहीं है तो उसका रचना पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है विचार धाराएँ अन्तरधाराओं की भाँति प्रवाहित हों तो बात अलग है ।[2]

---

1. लिखने का तर्क, गिरिराज किशोर
2. अक्षरा, जनवरी-जून, 1993, पृ. 23.

राजनैतिक दृष्टिकोण की आवश्यकता तो गिरिराज किशोर हर व्यक्ति में आवश्यक समझते हैं । किन्तु इस बात से वे साफ इनकार करते है कि लेखक होने के लिए घोषित प्रतिबद्धता की आवश्यकता है । वे कहते हैं कि "लेखन का इतना विस्तृत परिदृश्य है कि आप अपने आपको सीमित करके नहीं रख सकते । अगर आप अपने को सीमित करेंगे तो उस श्रेष्ठ साहित्य की कोई संभावना नहीं रहेगी जिसके लिए आप संघर्ष कर रहे हैं ।........ जब तक आप अपने अनुभव को मुक्त रूप से नहीं प्रकट करते तब तक उसकी अभिव्यक्ति बहुत कठिन है ।"[1] गिरिराज किशोर कहते हैं कि अपने आपको सब तरह के अनुभवों से काट कर सिर्फ एक तरह के अनुभव के साथ लिखना कदापि श्रेष्ठता की पहचान नहीं है । सवाल तो यह है कि मानव समाज और उस व्यक्ति से जो संघर्ष कर रहा है लेखक अपने आप को कहाँ तक जोडता है । वे मानते हैं कि लेखक अपने रूप को बनाये रखे साथ ही उस रूप को भी जिसे प्रतिबद्ध कहा जाता है तो उस समय अवश्य लेखक को ईमानदार कहा जा सकता है ।

आन्दोलन से मुक्ति

एक प्रासंगिक कहानीकार के रूप में साठोत्तरी युग में गिरिराज किशोर का आगमन हुआ । उस समय नई कहानी का ज़ोर था परन्तु गिरिराज किशोर की पीढ़ी ने नये अन्दाज़ और शिल्प के साथ कहानी लेखन आरंभ किया । दर असल किसी आन्दोलन में शामिल होकर

---

1. कथारंग, सुरेन्द्र तिवारी, पृ. 261, गिरिराज किशोर से साक्षात्कार ।

अपनी रचना के कथ्य एवं शिल्प तथा भाषा को सीमित करना वे नहीं चाहते थे । उन्होंने हमेशा यही माना कि जो लोग किसी विधा में रुचि रखते हैं उन्हें उसी विधा का होकर रह जाना पड़ता है । नई कहानी के दौर में कुछ अच्छी कहानियाँ अवश्य उभर कर आई है परन्तु गिरिराज किशोर मानते हैं कि इस कहानी आन्दोलन का उद्देश्य कहानी का विकास नहीं वरन् आत्म-प्रचार रहा है ।

अपने कुछ बहुचर्चित उपन्यासों के माध्यम से गिरिराज किशोर ने अपनी उपन्यासकार भूमिका भी प्रासंगिक सिद्ध की है । उपन्यास को वे यथार्थ का आत्मपरक साक्षात्कार मानते हैं । साथ ही वे स्वीकार करते हैं कि "हर विधा की अपनी स्वायत्तता होती है किसी विधा में काम करने वाला रचनाकार उसकी स्वायत्तता में भागीदार होता है । लेखक की यह भागीदारी व्यक्ति की न होकर अनुभव की होती है । जितने बड़े अनुभव के साथ जो लेखक किसी विधा में प्रवेश करता है उतनी ही बड़ी स्वायत्तता वह उस विधा के लिए उपलब्ध कराता है ।"[1]

<u>प्रभावाग्रहण</u>

गिरिराज किशोर को आरंभ काल में प्रभावित करनेवाले लेखकों में शरदचन्द्र तथा प्रेमचन्द्र का नाम आता है । अन्यत्र उन्होंने

---

1. भद्रलोक से उपन्यास का रिश्ता, गिरिराज किशोर, संवाद सेतु, पृ. 18.

खुशवाहाकान्त के उपन्यास लालरेखा का जिक्र भी किया है जिसने उन्हें प्रभावित किया । कालान्तर रचनात्मकता के जगने के साथ उनकी पाठकीय समझ का विकास भी हुआ । तब वे प्रसाद से प्रभावित हुए । अज्ञेय की "शेखर : एक जीवनी" ने उन्हें बहुत अधिक प्रभावित किया । इसकी भावभूमि में उन्होंने स्वयम् लिखा भी । जहाँ तक कथा साहित्य का संबंध है नरेश मेहता, कृष्णा सोबती, अमरकान्त, शैलेश मटियानी, राजेन्द्र यादव, हरिशंकर परसाई, मुक्तिबोध आदि लेखकों से भी गिरिराज किशोर प्रभावित हुए हैं । यशपाल के झूठा सच और कृष्णा सोबती के जिन्दगीनामा जैसी रचनाओं ने उन पर काफी असर डाला है । गिरिराज किशोर ने यह बात स्वयं कबूल की है कि प्रेमचन्द के कुछ उपन्यासों एवं कहानियों ने उन्हें ज़िन्दगी की दूसरी प्रकार की समझ के करीब लाकर खडा कर दिया ।

गिरिराज किशोर को प्रेमचन्द परंपरा का लेखक माना जाता है । वे मानते हैं कि लेखक जिस परंपरा को स्वीकारता है उसे यह देखना होता है कि वह उसे कहाँ तक ले जाता है । वरना तो परंपरा की बात करना बेईमानी है । इसी कारण नये कहानीकारों ने जो प्रेमचन्द परंपरा से अपने को काटने की बात कही वह गिरिराज किशोर को सराहनीय नहीं लगती । क्योंकि उनके अनुसार यदि कोई लेखक अपने आपको परंपरा से काटता है तो वहाँ पर यह देखना होता है कि वह परंपरा से हट कर कितनी रचनाएँ देने में समर्थ हुआ । उनके अनुसार साहित्य के मूल्यांकन में काफी समय लगा है । केवल कुछ वर्षों के अन्तराल साहित्य की धारा या प्रवृत्ति या मानसिकता में तब्दीली आ जानेवाली बात स्वीकार्य

नहीं जान पड़ती है । गिरिराज किशोर के अनुसार हिन्दी साहित्य में कुछ भी नया नहीं लिखा गया जिसके बल पर किसी नयी परंपरा की बात की जाये ।"[1] एक तरह का लेखन और एक ही तरह की मानसिकता में लोग जी रहे हैं उसी तरह की पकड़ है । अगर लेखक की पकड़ सही है तो चाहे वह किसी आन्दोलन में शामिल नहीं भी हो तो उसका महत्व रहता है ।

प्रेमचन्द की बात यदि उठाई जाये तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उस वातावरण और समकालीनता के बदलने तक रचना में उसका प्रभाव चलता रहेगा । हो सकता है कि प्रेमचन्द के पात्रों का नज़रिया जो था वह आज तब्दील हो गया हो पर उस माहौल में समाज के उस रूख में वातावरण और समकालीनता शायद ही कोई अन्तर आया होगा ।

वस्तुत: लोकतंत्र और व्यक्ति स्वातंत्र्य के इस युग में सामन्तवाद के जो महज एक पढ़ने की चीज़ माननेवाली बात है वह तो सिर्फ किताबी बात हुई । वास्तविकता यह है कि "सामन्ती मानसिकता मिटी नहीं बल्कि हममें और गहरे पैठ गयी है । हाँ उसने कुछ शकल और अन्दाज़ ज़रूर बदल दिये हैं । खासकर नव धनाढ्य उच्च मध्यम वर्ग के तौर तरीकों में ये प्रवृत्तियाँ साफ झलकती हैं । कम तो निम्न वर्ग और निम्न मध्य की भी नहीं परन्तु आर्थिक विवशता के चलते ये चोंचले कर नहीं पाते ।"[2]

---

1. साक्षात्कार, कथारंग
2. सामन्तवाद से सना समाज, अरूण बोथरा, नवभारत टाइम्स, 20 जून 1992

दरअसल जिस महाजनी सभ्यता के विरुद्ध प्रेमचन्द ने लिखा, ताज्जुब नहीं होना चाहिए यदि कहा जाये कि वह सभ्यता आज भी कायम है । बल्कि और अधिक वैज्ञानिक ढंग से उपभोक्ता संस्कृति के रूप में विकसित है । प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों में जो पात्र मौजूद थे आज उनके नये संस्करण मौजूद हैं । कहने का तात्पर्य यह हुआ कि उसी संस्कृति का निरन्तर विस्तार हो रहा है । प्रेमचन्द ने अपने समाज को महाजनी समाज कहा । उसमें दीख पड़ने वाले पात्र या सामाजिक स्वरूप का चित्र घृणित और अमानवीय है । परन्तु उस भावभूमि में अधिक अन्तर नहीं आया । महाजनी सभ्यता ने जो सन्त्रास दिया वह बरकरार है । व्यावसायिकता के विकास बाज़ार गिरि के उत्थान के बावजूद बन्धवापन की परंपरा घरों से राष्ट्रों तक व्याप्त है । प्रेमचन्द हो या जैनेन्द्र या अज्ञेय सब एक ही प्रभावों की उपज हैं । केवल प्रतिक्रिया और अभिव्यक्ति में अन्तर है ।

गिरिराज किशोर की रचनाओं में भी इसके प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है । परन्तु ये रचनाएँ प्रतिछाया मात्र बन कर नहीं रह गयी है । बदलते माहौल में बदलते मानव की संवेदना को बारीकी से पकड़ने का प्रयास गिरिराज किशोर ने किया है । जीवन को उन्होंने खुलकर ठेठ भाषा में अभिव्यक्त किया है । "लोग", "जुगलबन्दी", "ढाई घर" जैसे उपन्यास इसके प्रामाणिक दस्तावेज़ है ।

सचेतन समकालीन व्यक्ति का कालबोध, देशबोध, व्यक्ति और समूहबोध संग्रथित {इन्टीग्रेटेड} होता है । वह काल के किसी बिन्दु को

निरपेक्ष और अलग नहीं मानता, वर्तमान में भूत और भविष्य की स्थिति को समझता है । भूत में वर्तमान को और भविष्य में भूत और वर्तमान के प्रवाह को । अतः एक समकालीनता का इस काल की निरन्तरता या प्रवाह परिणतियों की संभावनाओं का ज्ञान है ।[1] सामाजिक बदलाव एवं राजनैतिक बदलाव की अन्तरंग चेष्टाओं, कुण्ठाओं और विद्रूपताओं का अति सूक्ष्म विश्लेषण गिरिराज किशोर की रचनाओं में है । बहुत बारीकी से यह रहस्य धीरे-धीरे वे प्रकट करते हैं कि समाजवादी यातनाओं से बाहर निकलकर लोकवादी समाज रचना में दाखिल होने पर भी उनसे छुटकारा आज तक नहीं मिल सका जिनको लेकर आज़ादी की जंग लड़ी गयी ।

समकालीन कथा साहित्य का सामाजिक प्रसंग अत्यधिक सूक्ष्म है । हम जिस कठिन समय से होकर गुज़र रहे हैं उसका बाह्य तक दीख पड़नेवाला रूप उसका वास्तविक रूप नहीं है । इसमें असंख्य आयाचित अस्पृहणीय स्थितियों का समावेश है । अमानवीयता इसका अंतरंग स्वभाव हो गया है । इस कारण इस समय की रचनाएँ सपाट लग सकती है परन्तु हो नहीं सकती । सरल ढंग से चयन किया जा सकता है सम्प्रेषण नहीं । समय के इस आघात को गिरिराज किशोर ने अनुभव किया इसी कारण उनके कथा साहित्य में समयगत संदर्भ अर्थात सामाजिक परिदृश्य बहुत ही सशक्त है ।

हिन्दी में सामाजिक कहे जानेवाले साहित्य की बृहद परंपरा ही है जिसका सूत्रपात प्रेमचन्द ने किया । इनमें गिरिराज किशोर

---

1. समकालीन साहित्य और सिद्धांत, वि.ना.उपाध्याय, पृ. 14.

के कथा साहित्य की सामाजिकता को यदि परखा जाये तो वे समाज मूलक है भी और नहीं भी हैं । इसका कारण यह है कि प्रेमचन्द परंपरा में आने पर भी गिरिराज किशोर सामाजिकता के सतही पक्षों पर विचरण नहीं करते और न ही मात्र एक समस्या मूलक रचनाकार के रूप में सामने आते हैं । वास्तव में "समकालीन व्यक्ति किस देश में है और वह किस ज्ञात अज्ञात सूत्रों से जुड़ा हुआ है यह एक जटिल अध्ययन की माँग करता है ।"[1]

जहाँ अपनी रचनाओं में गिरिराज किशोर सामाजिकता को तरजीह देते है वहीं उनपर अज्ञेय जैसे रचनाकार जो कि व्यक्तिवादी कहलाते हैं, का प्रभाव भी है । अज्ञेय की स्मृति में समर्पित अपने ग्रंथ "लिखने का तर्क" में स्वयं गिरिराज किशोर ने यह बात कही है कि -"नदी के द्वीप" [अज्ञेय] ने सोचने के लिए तो कोई विशेष सामग्री नहीं दी । पर साहित्यिक रोचकता के बारे में समझ अवश्य प्रदान की । साथ ही स्थिति विशेष में चरित्रों के व्यक्तित्वों में देखने की अन्तरदृष्टि भी मिली थी । उस अन्तरदृष्टि से लाभ यह हुआ था कि अपने लेखन के संदर्भ में इस प्रकार के चरित्रों के बारे में अधिक समझदारी महसूस होने लगी ।"[2] वे मानते हैं कि यद्यपि उनके लेखन की भावभूमि में अज्ञेय के से पात्र कम है । परन्तु इसके बावजूद कहीं न कहीं जीवन के प्रति बहुमुखी समझदारी का एहसास, भावनात्मक और रचनात्मक स्तर पर अज्ञेय की रचनाओं से प्राप्त हुआ है ।

---

1. समकालीन सिद्धांत और साहित्य, विश्वंभरनाथ उपाध्याय , पृ. 18.
2. लिखने का तर्क, गिरिराज किशोर

अज्ञेय के साहित्यिक दृष्टिकोण में परंपरा का खण्डन (यद्यपि वह पूर्वाग्रह युक्त नहीं) अभ्यन्तर तनाव, निर्वैयक्तिकता आदि पर ज़ोर है । वे साहित्य को क्षिति पूर्ति का साधन नहीं मानते हैं । प्रेमचन्द का झुकाव सर्वथा सामाजिकता की ओर था । और यहाँ पर प्रेमचन्द परंपरा से जुड़े लेखक गिरिराज किशोर का अज्ञेय से प्रभावित होना अटपटी या विरोधाभास पूर्ण बात लग सकती है । परन्तु यहाँ पर वास्तव में सवाल परंपरा या किसी एक दृष्टिकोण के प्रति मोहान्धता का नहीं है । दरअसल सामाजिकता से युक्त दृष्टि प्रेमचन्द परंपरा में गिरिराज किशोर को भले ही शामिल करती हो परन्तु लेखक को अपने लेखन के प्रति जो प्रतिबद्धता है वहाँ पर गिरिराज किशोर अज्ञेय से प्रभावित दीख पडते हैं । अज्ञेय ने कलात्मक अनुभूति और उनके प्रति तटस्थता की जो बात की है उसका प्रभाव गिरिराज किशोर पर भी दीख पडता है ।

कल्पनाशील भाषा और प्रतीकात्मक शिल्प को तटस्थता के साथ वहन करने के कारण गिरिराज किशोर ने अज्ञेय की कहानियों की प्रशंसा भी की है । उन्होंने इस बात को भी स्वीकार किया है कि "शेखर एक जीवनी" की संवेदना और भाषा ने रचना कर्म के स्तर पर उन्हें बहुत ही प्रभावित किया है ।

रचना परिदृश्य

वैसे तो समकालीन हिन्दी साहित्य में तो वह विशेषता दीख पडती है कि वह हमारे आसपास की आबोहवा से पूरी तरह मिल

हुआ है । गिरिराज किशोर ने इस मूल प्रवृत्ति को अपनी रचना के मूल में अनुभव किया है । उनकी रचनाएँ हमारे आस पडोस की अनुगूँजी ही प्रतीत होती हैं । अगर कोई रचनाकार सामाजिकता के माध्यम से अपनी मिट्टी की तलाश करना चाहता है तो उसे चाहिए कि सामाजिकता का अन्तरंग पक्ष कितना व्यापक है और कितना विपुल, इस बात को समझे ।

हमारे समाज की बहुत सी वास्तविकताओं को देशी विदेशी उपनिवेशवादी संस्कृतियों ने ग्रस लिया है । उन शक्तियों के चंगुल में फँसी दम तोडनेवाली वास्तविकताएँ गिरिराज किशोर की विषय वस्तु है । केवल उन्हीं क्षणों को पकडना समकालीनता नहीं है जो कि आकर्षक तीव्र और अभूतपूर्व लगे । छठे दशक तक पहुँचते-पहुँचते मनुष्यों ने स्वयम् को जिस मोहभंग की स्थिति में पाया वे सारी स्थितियाँ साहित्य में भी पायी जाती हैं । खासियत यहाँ इस बात में है कि इन मानवस्थितियों में लेखक पात्रों के साथ ठीक उसी प्रकार मौजूद होता है जैसे कि पात्र स्वयम् अपने साथ होते हैं । यहाँ पर हम पाते हैं कि गिरिराज किशोर स्वयं एक आत्म विश्लेषण की प्रक्रिया से गुज़र रहे हैं । यह आत्मविश्लेषण लेखक का न होकर पात्र का होता है जिसके साथ वे उसी पात्र के ही समान उपस्थित है । और यहीं पर वे एक सशक्त समकालीन कथाकार के रूप में सामने आने लगते हैं ।

पूर्व निर्मित धारणाएँ एवं रूढ संस्कार गिरिराज किशोर के लेखन में बडे पुअस्सर तरीके से टूटते हैं । मूल्यों के प्रति मोह नहीं वरन् एक तटस्थता ही बरती गयी है ।

गिरिराज किशोर ने संबंधों को अपनी रचनाओं में बहुत महत्व दिया गया है । "ढाई घर" शीर्षक अपने उपन्यास की भूमिका में वे कहते भी है -"मुझे समाज और मनुष्य, मनुष्य और मनुष्य, व्यक्ति और प्रतिष्ठान के बदलते रिश्ते हमेशा आकर्षित करते रहे हैं । कहानी हो या नाटक या उपन्यास में इन बदलते रिश्तों को निरन्तर सामने लाने की कोशिश करता रहा हूँ ।"[1] "ढाई घर", "दो", "तीसरी सत्ता" जैसे उपन्यास, "रिश्ता," "हम प्यार कर ले," "प्रेमपत्र," "वल्दरोजी" जैसी कहानियाँ इसके सशक्त उदाहरण हैं ।

संबंधों पर लेखनी चलानेवाले गिरिराज किशोर में हम देखते हैं कि एक टिप्पणीकार की निसंगता के बावजूद एक सूक्ष्म इन्वाल्वमेन्ट भी है । उच्च मध्यवर्ग, निम्न मध्यवर्ग, निम्न वर्ग की मानसिकता को भी गिरिराज किशोर ने बाखूबी दर्शाया है । शारीरिक संबंधों का चित्रण यदि कही गिरिराज किशोर ने किया है तो वह चित्रण भी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में ही हुआ है । मानव के जीवन में पेट की भूख के बाद ही शरीर की भूख को स्थान दिया गया है । "हम प्यार कर लें", "ज़िन्दगी के पीछे," जैसी कहानियाँ इसकी ज्वलन्त मिसाल है । उनकी प्रसिद्ध कहानी "रिश्ता" को मनकी भी सेक्स का प्रयोग एक सिक्के के रूप में ही करती है ।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंध होने के कारण गिरिराज किशोर के कथा-साहित्य में यह परिवेश पूरी समग्रता के साथ अभिव्यक्त हुआ है

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 69.

विज्ञान अपनी समस्त उपलब्धियों के बावजूद मनुष्य के रागात्मक तत्व को सोखता चला जा रहा है । विज्ञान के क्षेत्र में भी अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए तरह तरह के षड्यंत्र, मनुष्य का महज एक यन्त्र के रूप में परिवर्तित होते जाना, मनुष्यता का या मानवीय संवेदना का क्षय इन सभी को गिरिराज किशोर ने बड़े तीखेपन के साथ उभारा है । "अन्तर्द्वंद्व", "यन्त्र-मानव", "अन्वेषण", "सौदागर" जैसी रचनाएँ इसी के उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

स्वचेतना के साथ साथ सचेतना और संवेदनशीलता को हम एक समकालीन रचनाकार के लिए अनिवार्य शर्त ही कह सकते हैं । जड़ व्यक्ति अपने समय के व्यक्ति और प्रवृत्तियों की परवाह नहीं करता । वह एक गतिहीन मूर्छा में जीता रहता है । गिरिराज किशोर मानते हैं कि "स्थितियों से असन्तुष्ट होना लेखन के लिए सर्वाधिक उर्वरा भूमि है ।"[1] वर्तमान व्यवस्था के प्रतिद्वंद्व को भी गिरिराज किशोर ने अपेक्षाकृत प्रखर स्वर में व्यक्त किया है । जहाँ तक वे स्वयम् व्यवस्था में रहे उनके साथ स्वयं ऐसी स्थितियाँ तक आई हैं कि उन्होंने स्तीफा तक दे दिया है । संभवतः इसके दौरान हुए तजुर्बों ने गिरिराज किशोर के लेखन को सर्वाधिक उर्वरा भूमि तैयार की । लेखन और जीवन की सुसम्बद्धता के कारण व्यवस्था के दाव पेंच को पहचान कर उसके भीतर के दोहरे संघर्ष को उन्होंने सशक्त ढंग से उभारा है । "हिंसा", "चिमनी", "वह हँसा क्यों नहीं", "चिड़ियाघर", "मवेशी", "अलग अलग कद के दो आदमी" आदि रचनाएँ व्यवस्था की पोल खोलती नज़र आती हैं ।

---

1. लिखने का तर्क, गिरिराज किशोर

सामाजिकता की समाजमूलकता और समस्यामूलकता से समकालीन यथार्थ तक का यह फासला काफी लम्बा है जिसे गिरिराज किशोर अपनी रचनात्मक क्षमता से तय करते हैं । जहाँ अनुभवों की सूक्ष्मता और संप्रेषण की व्यवस्था में ये बातें गुंफित हैं वहीं पर हम देखते हैं कि सच को सच और झूठ को झूठ कहने का साहस भी गिरिराज किशोर में है । इसी साहस से वे सामाजिक स्थितियों की अन्तरंगता में जाते नज़र आते हैं ।

गिरिराज किशोर आस्थावादी लेखक है । वे जीवन मूल्यों को समाज के संदर्भ में रखकर मूल्यांकित करते हैं । उनके अनुसार व्यक्ति का सच समाज के सच से सदैव बड़ा होता है व्यक्ति के इस सच को समाज के सच के रूप में बदल लेना ही लेखक का सामाजिक सरोकार है । इसी माध्यम से वह व्यक्ति के प्रति अपनी पक्षधरता को कभी उभार कर सामने लाता है । वह ठोस यथार्थ व्यक्ति के हृदय को कचोटता है । उसमें एक आक्रोश पैदा करता है । गिरिराज किशोर के लेखन में उनका सामाजिक सरोकार और मनुष्य मात्र के प्रति उनकी पक्षधरता गहराई से उभर कर सामने आती है ।

राजनीतिक परिदृश्य

"सचेतन व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया में अपने काल की नब्ज़ को पकड़ता है । अपने युग यानि अपने बुखार की जाँच करता है । कारणों पर सोचता है ।"[1] मनुष्य जहाँ रोटी, कपड़ा और मकान से जुड़ता है

---

1. समकालीन साहित्य और सिद्धांत, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 15.

वही कहीं न कहीं वह राजनीति से भी जुड ही जाता है । "कोई भी साहित्यकार समकालीन राजनीति से उदासीन नहीं रहता । जो साहित्यकार उदासीन दिखाई देते हैं या उदासीन होने का दावा करते हैं, जो कहते हैं उन्हें राजनीति से कुछ लेना देना ही नहीं । वे वास्तव में उदासीन नहीं होते है । उनकी उदासीनता वास्तव में राजनीति के प्रति नकारात्मक प्रतिक्रिया मात्र है ।"[1] गिरिराज किशोर ऐसे लेखक है जिन्होंने राजनीति के सूक्ष्म गलियारों तक में अपनी लेखनी को सशक्त रूप से चलाया है ।

राजनीति को जब हम एक अलग अनुशासन के रूप में लेते है तो उसमें अनेक प्रामाणिक और मूल्यवान सिद्धांत उपलब्ध होते हैं । लेकिन जब राजनीति को सत्ता से जोडकर देखते हैं तो उसका दूषित वृत्त सामने आने लगता है । उस समय राजनीति मूल्यहीनता, अमानवीयता, स्वार्थ परायणता आदि की मिसाल बन जाती है । सत्ता से जुडी राजनीति का यह अवाँछित रूप आधुनिक काल का विरोधाभास मात्र नहीं है । आधुनिक काल में यह इसलिए विसंगतिपूर्ण लग रही है कि राजनीति के नारों और राजनीति की वास्तविकता में काफी फ़रक है । संभवत: ज़मीन आसमान का । लोकतन्त्र के नारों की अनुगूँज में सामान्य जीवन को अनदेखा करने का उपक्रम ही आधुनिक राजनीति में दीख पडता है । दरअसल गिरिराज किशोर ने इसी पक्ष के विभिन्न पहलुओं को अपने कथा साहित्य के अन्तर्गत लिया है । गिरिराज किशोर का उद्देश्य इन पहलुओं का नक्शा तैयार करना नहीं है

---

1. साहित्य और सामाजिक मूल्य, हरदयाल, पृ. 37.

अपितु इस मानचित्र से तिरोहित हो चुके सामान्य जीवन को खोज करना है । अफ़सर शाही का सिलसिला भी तथा कथित राजनीति से जुडा हुआ है । कदम कदम पर हमें अपने जीवन में राजनीति का कोई न कोई चेहरा नज़र आ ही जाता है । गिरिराज किशोर की विशेषता यह है कि उन्होंने इन प्रसंगों को मोहभंग के स्तर पर चित्रित नहीं किया है । भावुकता का संस्पर्श भी नहीं है क्योंकि वे समकालीन कहानीकार हैं । उनके सपाट चित्रण राजनीति की अन्तरराष्ट्रीयता, संकीर्णता, मौके के अनुसार ऊपर उठ आनेवाला उसका जहरीला सा रूप आदि गिरिराज किशोर ने चिन्हित किया है । "पेपरवेट", "नया चश्मा", "तिलिस्म" जैसी रचनाएँ इसके सशक्त उदाहरण हैं । राजनैतिक बोध उनकी रचनाओं में तिलमिला देनेवाले एहसास के साथ उभरता है । अगर गिरिराज किशोर राजनैतिक संदर्भों के रचनाकार है तो इसका मतलब यहाँ यह ठहरता है कि वे मानवीय संदर्भों के रचनाकार हैं ।

गिरिराज किशोर मानते हैं कि "संगीत कला आदि माध्यमों से अधिक साहित्य के सिर पर राजनैतिक संकट है । एक सीमा तक साहित्य राजनीति के अनुगामी होने के संकट को भोग रहा है उसे भोगना भी चाहिए । क्योंकि राजनीति वर्तमान ज़िन्दगी का अविभाज्य अंग है । परन्तु दबाव के सामने समर्पण कर देने का खतरा भी कुछ कम नहीं है ।"[1] वे मानते हैं कि विधा यदि विचार को ज़िन्दगी के साथ जोड कर अपने पूर्ण सत्य के रूप में सामने आ सकती है उसे अभिजात्य विधाओं से कुछ अलग होना पडता है ।

---

1. भद्रलोक से उपन्यास का रिश्ता, गिरिराज किशोर

गिरिराज किशोर के अनुसार साहित्य मनुष्य परिवार और समाज की कमभकम यानि ब्रह्माण्ड के स्तर पर घटित होता है । कुछ रचनाएँ अपने को मनुष्य परिवार तक सीमित रखती है । उनका विकास आगे नहीं हो पाता । बहुत सी रचनाएँ मनुष्य परिवार और समाज तक जाती है । इस दृष्टि से उनकी व्यापकता और अधिक बढ जाती है । ब्रह्माण्ड तथा प्रकृति से अपने आपको जोडनेवाली रचनाएँ कम ही होती है जो रचनाएँ अपने आपको इन चारों स्तरों पर उद्घाटित करती है, गिरिराज किशोर के अनुसार उनका प्रक्षेपण भी देश व काल की सीमाओं को लाँघ जाता है ।[1] स्वयम् अपनी रचना प्रक्रिया को वे एक नितान्त व्यक्तिगत प्रक्रिया समझते हैं, वह उसके दो पक्ष मानते हैं - एक सूक्ष्म और दूसरा प्रतिक्रियात्मक । सूक्ष्म अंश स्वत: घटित होता है । प्रतिक्रियात्मक के बारे में वे कहते हैं कि उनकी रचना प्रक्रिया का सबसे पहला अंश लेखन के प्रति उनकी श्रद्धा है और दूसरा समर्पण है । रचना प्रक्रिया को समझाते हुए वे कहते हैं - हर लेखक के अन्दर एक चिमटी होती है चिडिया की चोंच की तरह । उसी से वह अपने विषयों को चुनता है जैसे चिडिया अपना प्राप्य मिट्टी में निरन्तर चोंच द्वारा खोजती और पाती रहती है । समाज में रहते लडते झगडते सोते जागते यात्रा करते वह चिमटी या चोंच अपने अनुभवों को पकडती रहती है । जहाँ जो मतलब का मिला वहीं से उठा लिया चाहे वह स्थान अच्छा हो या गन्दा । और झोली में डाल लिया ।[2] वे कहते हैं कि रचना करते हुए दिन रात उन्हीं पात्रों और घटनाओं स्थितियों के साथ रहना पडता है । यह प्रक्रिया अपने आपको सब तरफ से काट लेने की होती है । उस समय उपस्थित रहते हुए भी अनुपस्थित रहने के लिए बाध्य होना पडता है । इस कारण रचना की प्रक्रिया

---

1. अधरा -23, जनवरी-जून 1993, पृ. 6.
2. वही

को वे सहजता से नहीं लेते उनके अनुसार लेखक अनुभव, समय और अभिव्यक्ति को अन्दर ही अन्दर पचाते रहते हैं और जब जब अभिव्यक्ति समय और अनुभव के अनुकूल बन जाती है तो बडी रचना सामने आती है ।[1]

लेखक और विधा के अलावा इस संपूर्ण विधा की एक महत्वपूर्ण इकाई के रूप में वे पाठक को मानते हैं । वे मानते हैं कि पाठक की रुचि की नियामक साहित्यिक रचनाएँ न हो कर साहित्येतर रचनाएँ होती है । पाठकीय रुचि भी साहित्य के क्षेत्र में एक तार्किकता है । अक्सर ऐसा होता है कि जहाँ तक पाठक की रुचि है उससे आगे जाने का कोई रास्ता पाठक को नज़र नहीं आता है । गिरिराज किशोर कहते हैं कि जो लेखक यह मानते हैं कि पाठकों में नये परिवर्तन के अनुरूप अपने आपको ढलने की अद्भुत क्षमता होती है वे बिना कुछ किये पाठकों के कन्धों पर उनकी सीमा से अधिक बोझ डालना चाहते हैं ।[2] गिरिराज किशोर के अनुसार पाठक लेखक से अधिक रूढिवादी होता है । वह अपनी रुचि के अनुरूप पढना चाहता है । दूसरा कोई चारा न होने की हालत में वह अपनी रुचि को बदलता है । किन्तु इसके साथ ही वे यह भी कहते हैं कि "प्रकाशन के बाद रचना को अपने लेखक के बल पर नहीं अपनी प्राथमिकताओं के बल पर और अपने पाठक के साथ बननेवाली तादात्म्यता पर निर्भर करना पडता है ।[3]

अपनी रचनाओं के माध्यम से सार्थकता को लेकर चिन्तित दीख पडनेवाले रचनाकार है गिरिराज किशोर । इसका कारण भी यही है कि सार्थकता यों ही नहीं प्राप्त हो जाती । उसके लिए रचनात्मक क्षमता की आवश्यकता है ।

---

1. संवाद सेतु, गिरिराज किशोर
2. वही
3. आठवें दशक की हिन्दी आलोचना, पृ. 108.

विधाओं के सरोकारों की चर्चा में उसकी समकालीनता का सवाल सबसे पहले उठता है । समकालीनता पर विचार करते समय समकालीनता अपने साधारण शब्दार्थ तात्कालिकता से सर्वथा भिन्न है । स्थितियों या समस्याओं के चित्रण, निरूपण या बयान से कोई भी विधा समकालीन नहीं हो जाती । तात्कालिक दबाओं के कारण संभव है विधा में नये जीवन संदर्भों से जुडा विषय आ जाये किन्तु यहीं तक ठहर जानेवाली दृष्टि समकालीन नहीं कही जा सकती है । समकालीनता एक ठहरी हुई जड स्थिति नहीं है, ठहराव, गतिहीनता और जडता को सख्ती और निर्ममता से तोडनेवाली एक गतिमान प्रक्रिया है ।

समय का प्रवाह तो निरन्तर होता रहता है । प्रवाह के इस नैरन्तर्य में मानव की स्थिति को ही समकालीनता द्योतित करती है । "मानव की वास्तविक स्थिति को देखकर या उसे अंकित चित्रित करके ही हम समकालीनता की अवधारणा को समझ सकते हैं ।"[1] मानव के साथ की सहस्थिति को अनुभव के रूप में परिवर्तित करके समकालीन कथाकार अपने कृतिकर्म को एक व्यापक मानवीय बिम्ब में परिवर्तित करता है ।

समकालीन कथाकार देश काल स्थित मनुष्य का अंकन स्थिति समेत करता है । इस अंकन का कायदा चाहे जो भी हो परन्तु समकालीनता से यह बात वाँछनीय हो जाती है कि अंकित मानव जीवन के निकट हो ।

---

1. समकालीन कहानी की भूमिका, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 2.

मानव मन की बारीकियों की खोज अनुभवों एवं अनुभूतियों के माध्यम से करनेवाला कथाकार यहाँ अपने समय को मूर्त रूप में पाना चाहता है और इसके लिए वह ऐसे व्यक्ति से तादात्म्य स्थापित करता है - जोकि इसी देश-काल में जीता है, और उससे प्रभाव ग्रहण करता है । "लेखक इन्हीं मानव स्थितियों में पात्रों के साथ ठीक उसी प्रकार होता है जैसे पात्र स्वयं अपने साथ होते हैं ।"[1] कथा में अंकित इस मानव से लेखक का रिश्ता अन्दरूनी तौर पर होता है । उससे तादात्म्य स्थापित करके कथाकार चीज़ों को उसी तरह देखता और महसूस करता है और इसके साथ ही एक द्रष्टा की हैसियत भी बनाये रखता है । इसी कारण रचनाकार काल की बारीकियों और उसकी अमूर्तताओं को मनुष्यों के कार्यों के ज़रिये ग्रहण करता है ।

समकालीन कथा साहित्य में जहाँ समय का निरन्तर प्रवाह दृष्टिगोचर होता है वहीं पर संभावनाओं का ज्ञान भी है । पूर्ववर्ती कथाकारों ने भी मानव जीवन के यथार्थ को देखने की कोशिश की थी । परन्तु उनकी अवधारणा सदैव शाश्वतता से जुड़ी हुई है । स्थितियों या समस्याओं पहचान तो पूर्ववर्ती कथा-साहित्य में भी है परन्तु स्थितियों और समस्याओं के चित्रण बयान या निरूपण से आगे बढ़कर इनके साथ जुड़े हुए आत्मीय सामाजिक और ऐतिहासिक संबंधों की पहचान के ज़रिये यथार्थ के सघन, जटिल और गहरे स्तरों में पैठ जाया करते हैं । उससे निष्पन्न सामाजिक ऐतिहासिक तथा अस्तित्वगत चेतना का बोध कराया जाये ।"[2] इस दृष्टि से देखा जाये तो

---

1. समकालीन कहानी की भूमिका, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ.
2. समकालीन कहानी की पहचान, नरेन्द्र मोहन, पृ. 39.

समकालीन कथा साहित्य में जिस जटिल यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है वह एक ओर सामाजिक चेतना का बोध करानेवाली है, उसकी छान-बीन करानेवाली है तो दूसरी ओर अस्तित्वगत संकट की पहचान करानेवाली है । उपन्यास एवं कहानियों में मनुष्य अपनी स्थिति समेत स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं । और "समकालीनता, समकालीन मानव को उसके गत्यात्मक जीवन में परखना उसके साथ तादात्म्य स्थापित करना अथवा उसके साथ होना, उसके मन में उतरना, उसके साथ अस्तित्व की एकता स्थापित करना है ।"[1]

समकालीन कथा साहित्य के संदर्भ में यथार्थ से टकराने की बात सदैव ही होती है । वास्तविक स्थितियों के अंकन और परिप्रेक्ष्य के बिना यथार्थ स्थितियों की पहचान संभव नहीं है । इसमें स्थितियों की पहचान जितनी अनुभूत और ठेठ तथा प्रामाणिक होगी टकराहट उतनी ही मूल्यवान होगी । अनुभूति और अवलोकन रचनाकार के अस्त्र हैं । इनका वह क्षमता के अनुसार प्रयोग करता है । इन दोनों अस्त्रों के संबंध में प्रामाणिकता का प्रश्न बराबर रहता है । कथाकार अपने अनुभवों को प्रस्तुत करता है । वह अपना चिन्तन प्रस्तुत करता है । पर यदि उसका अनुभव व्यक्ति के अनुभव से विलक्षण या कल्पना प्रसूत है तो उसे समकालीनता नहीं कहा जा सकता । "समकाल" में अपना अस्तित्व रखनेवाले लेखक भी जब काल-प्रभावित मानव-जीवन के वास्तविक सुखों दुखों आशाओं आकांक्षाओं के प्रति तल्लीनता नहीं रख पाते तो वे समकालीनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं ।

---

1. समकालीन कहानियाँ, विश्वंभरनाथ उपाध्याय-मंजुल उपाध्याय, पृ. 4.

द्वितीय अध्याय

समकालीन कथा-साहित्य का व्यापक परिदृश्य

समकालीन कथा

जिस समकाल या समकालीनता की चर्चा यहाँ सत्तर के बाद के कथा साहित्य के संदर्भ में है, उसके संदर्भ में स्पष्ट है कि समकालीनता रचनाकारों के एक ही कालखण्ड में जीने या रचना करने में नहीं है । यहाँ लेखकों की समकालीनता के बोध की समान धर्मिता है । "समकालीन कथा-रचना किसी भी तरह से किन्हीं नामों या वर्गों की कथा रचना नहीं है । वह कुछ समान दृष्टि संपन्न रचनाओं की सम्मिलित संगति है । जो कि एक ही धरातल पर जीवन के विचित्र योग विसंगति संत्रास अस्तित्व संकट आदि के यथार्थ भोग की परिणति है ।"[1]

समकालीन कथा को किसी शुद्ध इकाई के रूप में नहीं लिया जा सकता जो विश्लेषण या मूल्यांकन की सपाट सुविधाजनक कथात्मक युक्ति हो । गौर से देखा जाये तो समकालीन कथा साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य का विरोध नहीं है वह सहज रूप से अपनी पूर्ववर्ती परंपरा से जुडा है । इसी कारण समकालीनता भी कथा-साहित्य के संदर्भ में साहित्यिक प्रत्यय मात्र नहीं है । समकालीनता ऐतिहासिक स्थितियों का, शक्तियों का लेखा-जोखा उपस्थित करने की बजाय उनका साक्ष्य उपस्थित करनेवाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका प्रतिफलन कथा-साहित्य में आत्मगत धरातलों पर से लेकर सामाजिक धरातलों तक फैला रहता है । मूल्यों के किसी ढाँचे को नहीं स्वीकारती है ।

---

1. समकालीन कहानी : जीवन दृष्टि का परिप्रेक्ष्य, गंगाप्रसाद विमल, पृ.

और इस प्रकार समकालीन कथा-साहित्य में वह आधुनिकता की जातीय अस्मिता के निकट पहुँचती है । जातीय अस्मिता की विशिष्ट पहचान के कारण समकालीन कथा साहित्य का यथार्थ अपने भौगोलिक संदर्भ में अत्यधिक प्रभावशाली हैं । इसी कारण वह यथार्थ सामान्य जीवन स्थिति का बहिरंग चित्रण भर नहीं करता, वह मात्र आँखों देखा हाल नहीं है अपितु आज के जीवन की विडम्बनाओं को समेटनेवाली एक प्रखर संश्लिष्टता भी है ।

रचना की बारीकियों को उसकी तह से जान पाने की क्षमता वास्तव में संवेदना के कारण ही आती है । इसी कारण विधा के किसी भी मोड पर संवेदनात्मक दृष्टि सर्वाधिक ध्यान देने योग्य बात हो जाती है । आज की कथा के व्यापक परिप्रेक्ष्य में कहें तो समूचे लेखन के लिये प्रभाव सापेक्षता का उतना ही महत्व नहीं है जितना यथास्थिति से मुक्ति का । आज की कथा में इसे पहचाना गया है । शायद यही कारण है कि इसमें प्रामाणिकता का भी एक सर्जनात्मक रूप है ।

पिछले कुछ वर्षों से कथा के वर्ण्य विषय में अन्तर आया है, और यथार्थ के प्रति "एप्रोच" में भी । और हम देखते हैं कि परिवर्तनों की सतत श्रृंखला ने समकालीन कथा साहित्य की संवेदनात्मक दृष्टि को प्रभावित किया है । समकालीन कथाकार के अनुसार "स्थिति और उसकी सारी विडंबनाओं, विद्रूपताओं को उजागर कर देना होता है जिससे कि हम जान सकें कि जिस माहौल में हम जी रहे हैं वह कितना विसंगत है ।"[1] आज के

---

1. कथारंग, महीप सिंह से सुरेन्द्र चौधरी की बातचीत, पृ. 191.

मनुष्य के जीवन के लगभग सभी पहलुओं को समकालीन कथा अपने में उभारती है और रूढ संस्कार व पूर्वनिर्मित धारणाएँ और यहाँ पर बड़े पुअस्सर तरीके से टूटते हैं ।

व्यवस्था का जाल हो या राजनैतिक दूषित वृत्त, या महानगरी की भटकन हो या ग्राम - परिवेश में व्याप्त अराजकता और अभाव अथवा संबंधों में व्याप्त जटिलताएँ इन सभी के बीच मौजूद मनुष्य ही समकालीन कथा साहित्य में अपनी पूरी स्थितियों समेत दीख पडता है ।

व्यवस्था और आज का आदमी

आज के युग में मानवीय अस्तित्व की यातना का एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ हम देखते है कि कोई तन्त्र या व्यवस्था ही है । आज बदले हुए परिवेश में बदली हुई व्यवस्था से जो अपेक्षाएँ थी उनके पूरे होने की बात तो दूर रही अपितु एक नकारात्मक रुख ही आम आदमी को व्यवस्था में हर कहीं दीख पडने लगा । उपलब्धियों के स्थान पर समकालीन मानव को तीखा अनुभव ही प्राप्त हुआ । रिश्वतखोरी, बेईमानी, मिलावट आदि व्यवस्था के पर्याय बन गये और ईमानदारी और कर्मण्यता आदि का यहाँ कोई स्थान नहीं रह गया । व्यवस्था-तन्त्र में जो व्यक्ति मित्र की तरह दिखाई देता है वही शत्रु के रूप में सामने आता है । समकालीन कथा साहित्य में इसका पर्दाफाश बहुत ही प्रभावी ढंग से हुआ है । "व्यवस्था के भीतर

दुहरा संघर्ष चल रहा है और इसकी अलग अलग नीतियाँ हैं ।"[1] इनकी अभिव्यक्ति समकालीन कथा में हुई है ।

बदीउज्मा के उपन्यास "एक चूहे की मौत"[2] में व्यवस्था के डरावने रूप और उससे भयभीत समकालीन मनुष्य की तस्वीर को प्रतीकात्मक ढंग से उभारा गया है । वस्तुतः व्यवस्था में पिसते मनुष्य की क्रूर नियति ही सामने आती है । संपूर्ण व्यवस्था-तंत्र इसमें एक क्रूर राक्षस की तरह व्यवहार करता है जो कि सभी को अपने जबडों में दबोचे हुए है । व्यवस्था से संबद्ध एवं उसी के अन्तरगत आनेवाले तथा उससे विद्रोह करनेवाले व्यक्ति की जटिल एवं विसंगति पूर्णस्थिति के सैकडों पहलू पहली बार औपन्यासिक फलक पर, जीवन व्यापारों की संगति में उभरे है ।

"एक चूहे की मौत" में आज के आदमी की निरीह स्थिति को दफ्तरी माहौल और घुटन की दहशत के संदर्भों में शासन तंत्र और व्यवस्था तंत्र के व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है । व्यवस्था तंत्र के एक लम्बी सुरंग है जो दिन भर चूहे उगलती रहती है । और उपन्यास का वह छोटा चूहेमार चूहे मारने की नियति को भोगता है । क्योंकि चूहे खाने से निकलकर कोई भी चैन से नहीं रह सकता है चूहे मारो या भूखे मरो । व्यवस्था इतनी पेंचीदी है कि इन चूहों में वह जितनी रुचि लेता है उतना ही उनके शिकंजे में

---

1. सिलसिला, मधुरेश, पृ. 55.
2. एक चूहे की मौत, बदीउज्मा, पृ. 56

फँसने लगता है । इस तन्त्र की भयावहता और शक्ति इतनी है कि चूहों की लाख अवहेलना की जाये, चाहे जितना उपहास किया जाये, वह आपका साथ नहीं छोड़ेंगे । चूहे खाने की शक्तियाँ दानवों की सी है जो आदमी के सत्व को निचोड़ कर रख देती है ।

प्रतीकान्वेषण की प्रक्रिया को रचनात्मकता में गूँध कर आज के वातावरण की तल्खी को इसमें उभारा गया है । उपन्यास में चूहे चूहे मार आदि को व्यवस्था के घुटन भरे वातावरण के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए उसे व्यापक अर्थों में संक्रान्त किया गया है । चूहे मारना यहाँ केवल फाईलों से निपटना नहीं है बल्कि वह एक व्यवस्था की भी मनोवृत्ति है ।

""व" तस्वीरें नहीं बनाता चूहे मारता है ।"[1] यही आधुनिक मानव की नियति है जिसमें वह निरन्तर व्यवस्था में ही पिसता रहता है ।

व्यवस्था के बीभत्स और अमानवीय रूप का चित्रण सशक्त रूप से सतीश जमाली की कहानियों में हुआ है । उनकी कहानी अर्थतन्त्र का वह न सिर्फ इस व्यवस्था से घृणा करता है बल्कि तिल तिल कर लोगों को मरते देख कर वह गुस्साया भी रहता है । इस बात पर उसे सख्त झुझलाहट होती है कि

---

1. एक चूहे की मौत, बदीउज्मा, पृ. 75

आखिर इस देश की जनता की चेतना को क्या हो गया है ? भीड लगानेवाली और हर वक्त जुलूस के लिये तैयार रहनेवाली मानसिकता से उसे चिढ हो जाती है ।" - वह कहता है -

"...... सब साले मरियल हैं, कोई हिम्मत नहीं करता कि इन "कुछ" को कत्ल कर दे या गोली मार दे ।..."और तब उस नतीजे पर पहुँचता है कि "वह" और बाकी सब लोग भी उसी तरह सोच सकते हैं निर्णय ले सकते हैं परन्तु जीने के प्रति एक अजीब तरह का मोह होता है जो उन्हें कभी कुछ करने नहीं देता और वे हर प्रकार की यातनाएँ बरदाश्त करने को तैयार रहते हैं........"[1]

कहानी के केन्द्र पात्र को इस कारण प्रधान मंत्री की हत्या के आरोप में बन्दी बना लिया जाता है क्योंकि "रेल पेल" और धक्का मुक्की में वह उस स्थान पर पहुँच जाता है । इसपर वह सोचता है -"आनेवाली सन्तानें उसका "हीरो" के रूप में आदर करेंगी ।"[2]

यहाँ एक ओर संवैधानिक साधनों के माध्यम से, कैसे भी हो बदलाव के असंभाव्य होने का संकेत दिया गया है साथ ही साथ यह भी व्यवस्था की विडम्बना के रूप में दिखाया गया है कि कातिल बनकर आदमी मौजूदा व्यवस्था की यातना और अभाव को अपेक्षाकृत बेहतर तौर पर झेल सकता है ।

---

1. अर्थतंत्र, प्रथम पुरुष, सतीश जमाली, पृ. 32.
2. वही, पृ. 42.

बिहार के कोयला - अंचल में स्थित एक चन्दनपुर कोयला खान और उसके संचालन की दुर्व्यवस्था तथा भ्रष्टाचार की जिसका सन् सत्तासी अठासी के दौरान अखबारों में उल्लेख अक्सर मिलता था, उसीसे संबंधित कथा है, संजीव के उपन्यास 'सावधान ! सावधान ! नीचे आग है' में[1]। उपन्यास के पूर्वार्द्ध में हम देखते हैं कि किस प्रकार अप्रेन्टिस उधम सिंह खान के ढह जाने से बने एअर कुशन में फँस कर उन्नीस दिनों तक अपने तेरह साथियों सहित एक एक को मरते देखता रहा और उस भीषण रोमाँचकारी घटना को अपनी डायरी में नोट करता रहा और अन्त में स्वयं भी ढेर हो गया ।

कथा के उत्तरार्ध 'सतह के ऊपर' में उस दुर्घटना से प्रभावित परिजनों स्वजनों की भाग दौड और स्वार्थी लोलुप भेडियों द्वारा मृत ही नहीं जीवित लाशों को भी नोच खाने की अफसरों की प्रवृत्ति, अधिकारियों एवं राजनेताओं की कपटभरी सहानुभूति· थोथे बयान आदि है । एक ठेकेदार गजानन्द तो अपने आपको खान में मृत घोषित कर अपनी मृत्यु का मुआवजा भी अपनी पत्नी के ज़रिये हडप लेता हैं । मैनेजर भट्ट जिसकी असावधानी अयोग्यता या लापरवाही के कारण यह घटना घटी थी उसे एक दूसरी प्रतिष्ठित कम्पनी के टेक्निकल एडवाइज़र के रूप में हम मौजूद पाते है । और अन्त में आशीष कुमार जिसके हाथ उधमसिंह की डायरी लग जाती है और जो खान की व्यवस्था की पोल खोलकर सरकार को समुचित कार्यवाही के लिए प्रेरित करना चाहता है उसे पागल करार देकर जबरदस्ती पागल खाने में बन्द कर दिया जाता है ।

---

1. सावधान ! नीचे आग है, संजीव, पृ. 5।

गोविन्द मिश्र की कहानी "चीटियाँ"[1] में अस्पताल की बिगड़ी हुई व्यवस्था का चित्र खींचा गया है । आनेवाले बच्चे की आमद सुबह तक रोक दी जाती है । स्ट्रेक्चर पर पड़े मरीज़ को दवा लेने पर अन्तत: यह अफसोस होने लगता है कि न दवा लेता तो कम से कम अपने पैरों पर रेंगती चीटियों के रेंगने की आवाज़ तो न सुनाई देती ।

काशीनाथ सिंह की कहानियाँ भी इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हो जाती हैं । उनकी कहानी "बैल"[2] में मास्टर दुखद् लाल, प्रिन्सिपल के इसरार पर, उन्हें गाली देकर उनकी गर्दन बाँस में फँसानेवाले लड़के की शिकायत में अर्जी लिखते हैं । पर यह व्यवस्था का अन्तर विरोध है कि वह पूरे इक्कीस साल सात महीने उन्हें चैन से सोने नहीं देती - वे ज़मीन से बेदखल कर दिये जाते हैं । पत्नी और बच्चे मृत्यु तक पहुँचा दिये जाते हैं । फिर भी वे आदमी होते हुए भी बैल बने रहते हैं । और यहाँ व्यवस्था की वे स्थितियाँ साफ जाहिर हो जाती हैं जो आदमी को पागल बना छोड़ती हैं ।

न्याय व्यवस्था की विसंगतियों की ओर उसके विभिन्न पहलुओं का नग्न रूप की झाँकी प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है "सफेद घोड़ा काला सवार"[3] । इसमें हम देखते हैं कि मजिस्ट्रेट हीरालाल अपने व्यक्तिगत जीवन की परिस्थितियों की परेशानियों से घबराकर तथा पक्षकार के भाग्य

---

1. चीटियाँ-अन्त:पुर, गोविन्द मिश्र, पृ. 42.
2. बैल - प्रतिनिधि कहानियाँ, काशीनाथ सिंह, पृ. 23.
3. सफेद घोड़ा काला सवार, हृदयेश, पृ. 39

का दोष मानकर निरपराध को दण्डित करता है । और अपराधी को बरी कर देता है । जौहरी साहब जो कि जज है वे आराम से वक्त गुज़ारते हैं और अन्त में मनमाने ढंग से फैसले देते हैं । केस का फैसला यहाँ पर न्याय की दृष्टि से नहीं वरन् इस ढंग से होता है कि वह न्यायाधीश की तरक्की के अनुकूल हो । न्यायाधीश निरंजन किशोर रस्तोगी यहाँ इसी ढंग से अपना फैसला सुनाते हैं ।

दूसरी ओर यहाँ पर वकीलों के व्यवहार का भी पर्दाफाश हुआ है । वकील किशोर कौशल न्याय की तलाश में आयी लडकी के साथ उससे भी बदतर व्यवहार करते है जैसा कि अभियुक्त ने किया था । हर प्रकार से यहाँ पर मुवक्किलों का शोषण होता है, या उन्हें ठग लिया जाता है । भक्त शरण जैसे वकील बहस तो करते हैं परन्तु वह बहस न होकर शराब के नशे में धुत आदमी की बकवास होती है । गंगानाथ वैजल और मुकुटधर पाण्डेय आदि एडवोकेट भी दलालों का उपयोग करते हैं । थानेदारों और उनके बीच तरह तरह के समझौते है । कुल मिलाकर इस व्यवस्था में मुवक्किल की दशा बड़ी ही दयनीय हो जाती है ।

रिश्वतखोरी भी न्याय व्यवस्था में जड से शिखर तक व्याप्त है । सरकारी अमले के नाज़िर या पेशकार मुवक्किलों से पैसा लिये बगैर सही सूचना नहीं देते । चपरासी तो निरन्तर कुछ न कुछ ऐठने के पक्ष में ही होता है । यहाँ तक कि भंगी भी पक्षकार से न्यायालय में बने

शौचालय का उपयोग करने के लिए जहाँ आठ आने ले लेता है वही सरकारी शौचालय इस्तेमाल करने का अपराध बोध भी दिलाता है ।

दूसरी बात यह है कि न्याय व्यवस्था की प्रक्रिया इतनी मन्दगति से होती है कि यदि निरपराध को न्याय मिलता भी है तो तब जाकर जबकि उसके लिए न्याय का कोई महत्त्व ही नहीं रह जाता है । मोहन लाल जो गबन के झूठे इलज़ाम में फँसाया जाता है वह तब बरी किया जाता है जबकि उसके पूरा घर उजड जाता है - पत्नी व पुत्री की मृत्यु, घर के छोटे से छोटे सामान तक का बिक जाना, मकान गिरवी रख दिया जाना यह सभी कुछ मुकदमें के दौरान घटित होता है । इस पर अन्त में जब उसे बरी किया जाता है तो सरकारी अमले के लोग उससे ईनाम माँगते हैं ।

यद्यपि इसमें घटनाओं को जिला स्तर तक ही सीमित दिखाया गया है तथापि ये घटनाएँ कानून के सभी पक्षों के अन्तरविरोधों को हमारे सामने प्रस्तुत करतीं हैं । जीवन से उठाई गयी घटनाओं द्वारा कानून के क्षेत्र में फैली विसंगतियों का चित्रण यहाँ पर दीख पडता है ।

भारतीय रियासतों एवं राजा रानियों के संसार को पृष्ठभूमि बनाकर शाश्वत उत्पीडन चक्र का रहस्योद्घाटन गोविन्द मिश्र ने

"हुज़ूर दरबार"[1] में किया है । केन्द्र पात्र हरीश की आत्मकथा को इसमें बहुत ही संश्लिष्ट एवं सपाट ढंग से प्रस्तुत किया गया है । अपने पिता के साथ राजमहल में पहुँचनेवाले हरीश को राजकीय पालन पोषण और शिक्षा की सुविधाएँ तो मिलती है परन्तु साथ ही साथ उसके भविष्य की स्वतंत्रता पर प्रश्न चिह्न भी लग जाता है । यहाँ पर सवाल यह उठता है कि क्या मेधावी हरीश भी अपने पिता की भाँति राजगुरु या महन्त बनकर बारह तोपों वाले हिस हाइनेज़ महाराजा रुद्र प्रताप जू देव को समर्पित हो अपनी सारी ज़िन्दगी नरक में धकेल दें ।

महाराजा और अँग्रेज़ी राज के एजेन्ट के बीच चलते पैतरां और उसकी जटिलता, जनता की माँगें और जन प्रतिनिधियों को शासन सौंपने में आयी जटिलता । रियासतों का शासन के साथ गठबन्धन और उत्तरोत्तर परिवर्तित होती स्थिति यहाँ पर उभरी है ।

दफ्तरी जीवन और शासन व्यवस्था के अन्तर्विरोधों से जन्मी सामान्य व्यक्ति की पीड़ा आक्रोश विवशता की अभिव्यक्ति समकालीन कथाकार अपनी रचनाओं में करता है । मानव की मानवता के लिए भी संकट उत्पन्न कर देनेवाली स्थितियाँ समकालीन कथा साहित्य में उभर कर आयी है । दफ्तरों में एक के बाद दूसरे बॉस का सिलसिला सामान्य जनता

---

1. हुज़ूर दरबार, गोविन्द मिश्र, पृ. 67

को निरंतर आतंकित किये रहता है । कुर्सी पर बैठा व्यक्ति मनुष्य नहीं रह जाता बल्कि नौकर या अफसर हो जाता है । अफसर होने का अहंकार या नौकर होने की चिन्ता, कुण्ठा उसमें सदैव बनी रहती है । व्यवस्था के पूरे चरित्र का चित्रण बदीउज्मा की कहानी "दुर्ग"[1] में मिलता है । "दुर्ग" के अन्दर और बाहर जीनेवाले समकालीन साधारण मनुष्य की नियति ही यहाँ पर प्रतिफलित हुई है । एक पात्र यहाँ पर कहता है -"दुर्ग के अन्दर पहुँचकर सब दुर्ग के रंग में रंग जाते हैं । दुर्ग बडा प्रलोभन भी है, जिसकी जडे हमारे दिलों तक फैली हुई हैं ।"[2]

"पुल"[3] में महानगर में वह विशेष भाग ऐसी व्यवस्था का प्रतीक है जो स्वयं को मिटाकर महानगर का निर्माण करता है । यानि जो बडी बडी इमारतें और नई नई कोलोनियाँ बन रही है उन्हें बनानेवाले मज़दूर अपनी झोंपडियों को एक स्थान से उजाड कर दूर ले जा रहे है" । पुल का वास्तविक भेद जब खुलता है तो हमारी सामाजिक व्यवस्था के सारे अन्तर्विरोध सामने आते हैं । अमानवीय स्थितियों को झेलते हुए भी मानवीय स्थितियों को खतम न होने देने का संकल्प यहाँ पर दीख पडता है मौजूदा व्यवस्था में मनुष्य का स्वरूप यहाँ दिखाई देता है ।

"पुल के बिलकुल नीचे फुटपाथों पर बहुत से लोग पडे थे ।

---

1. दुर्ग, बदीउज्मा, पृ. 63
2. वही, पृ. 74
3. नई कहानियाँ 68, सतीश जमाली, पृ. 42.

भिखमंगे भी अपाहिज भी मज़दूर भी स्त्रियाँ भी बच्चे भी । दो तीन मज़दूर टोकरियों में उकडू बैठे थे शेष के पास भी न गद्दा था न रजाई न कम्बल ही, सब अपने ठण्डे पतले मैले कपडों में पड़े थे ।"[1]

मनुष्य जिस प्रकार रोटी कपडा और मकान से जुडता है उसी प्रकार वह व्यवस्था से भी जुडता ही है । इस कारण व्यवस्था की विसंगतियाँ भी समकालीन मानव के जीवन के लिए एक अपरिहार्य अंग ही बन गयी हैं । जीतेन्द्र भाटिया की कहानी "शहादतनामा" का "मैं" एक ईमानदार नेता को व्यवस्था के दलालों द्वारा कास्टिक टैंक में धकेलते हुए देखता है । लेकिन अमरजीत की क्रूर नृशंस हत्या की प्रतिक्रिया यह है कि वह कहता है -

"वे ही दिन थे जब मैं ने नौसिखियेपन से उबर कर धीरे-धीरे यह जानना शुरू किया था कि इनसान की जिन्दा रहने की लडाई कितनी भयानक होती है ।"[2]

आगे यही व्यक्ति हत्या का चश्मदीद गवाह होकर भी कुछ बताने या जताने की बेवकूफी नहीं करता । हत्या को देखकर वह अपने पर संयम बरतने की कोशिश करता है और

"सबसे ज़्यादा नफरत अब मैं अपने आप से करने लगा था ।

---

1. पुल-प्रथम पुरूष, सतीश जमाली, पृ. 13.
2. शहादतनामा, जीतेन्द्र भाटिया, पृ. 25.
3. वही - 27

लेकिन इन सब के बावजूद अन्ततः नफरत और बदहवासी के सिवा कुछ उसके हाथ नहीं आता ।

राजनीतिक विसंगतियों के बिखरे चित्र

आज जीवन का संभवतः ऐसा कोई भी पक्ष नहीं रहा जो कि राजनीति से प्रभावित नहीं हुआ हो । हमारा आपसी व्यवहार सामाजिक संबंध कार्यालयी गतिविधियाँ इनमें से कोई भी राजनीति से अछूते नहीं रहे हैं । और यही कारण है कि समकालीन कथा साहित्य में भी राजनैतिक परिप्रेक्ष्य सशक्त रूप से दिखाई पड़ता है । संभवतः यह समकालीन कथाकार की जागरूकता है या उसके प्रामाणिक अनुभवों का ही परिणाम है कि उसकी कथा राजनैतिक बोध से युक्त है । ध्यान देने योग्य बात यह है कि कथाकार राजनीति को मात्र परिवेश के रूप में ग्रहण नहीं करता वरन इसके माध्यम से वह व्यापक बोध को ग्रहण करता है । यहाँ पर कथाकार के मानसिक क्षितिज का विस्तार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर होता है ।

समकालीन कथाकार राजनीति का आधार तो ग्रहण करता है परन्तु वह राजनीति का अनुगामी नहीं होता । इसी कारण समकालीन कथा राजनीति की कथा नहीं है वरन् राजनैतिक स्थितियों की अंतरंगता की कथा है । यहीं हमें यह एहसास भी होने लगता है कि राजनैतिक बोध की अनुभूति करानेवाली कथा वास्तव में समाज से जुड़ी हुई है ।

दर असल मानव नियति ही जब राजनीति से जुड़ जाती है तो कथा का सरोकार समकालीन मानव के साथ होता है और साथ ही साथ राजनीति से कथा का रिश्ता भी एक प्रासंगिक सवाल बन जाता है ।

राजनीति जब व्यापक मनोभूमि से जुड़ती है तो अनेक प्रश्नों के द्वार खुलते है, रचनाकार की संवेदना में प्रतिष्ठित होकर ये संवेदनाएँ जब सीधी टकराहट पैदा करती हैं तो इनसे बचा नहीं जा सकता । राजनीति इसी कारण आज के कथा साहित्य में परिवेश से कुछ और अधिक, व्यापक चेतना के रूप में उपस्थित हो गयी है । इसका कारण भी यही है कि राजनीति जीवन में बहुत ही व्यापक स्तर पर प्रवेश कर चुकी है, ऐसी स्थिति में लेखक यदि उससे तटस्थ रहता है तो वह तटस्थता उसके लिए न तो ईमानदारी है और ना ही इस तटस्थता को बनाये रखते हुए वह जीवन के यथार्थ को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त कर सकता है । समकालीन कथाकार राजनीति को इनसान के हालात के साक्षात्कार के रूप में प्रकट करता है । आज के शासित मनुष्य का संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व ही यहाँ पर प्रकट होता है । उन राजनैतिक षड्यंत्रों को उन दबावों को जिनसे मनुष्य पद दलित होते है समकालीन कहानीकार अभिव्यक्ति देते हैं । राजनैतिक दबाव से पिसते मनुष्य की छटपटाहट ही समकालीन कथा में दीख पड़ती है ।

मुद्राराक्षस का उपन्यास "शान्तिभंग"[1] आपातकालीन विभीषिका को मार्मिक अभिव्यक्ति देता है । इतिहास न होते हुए भी

---

1. मुद्राराक्षस, शांतिभंग, पृ. 53

यह इतिहास के एक खण्ड का आधार अवश्य है । आपातकाल के समय के दौरान उस काल में जीनेवाले मनुष्य की जो मानसिक स्थिति रही उसी का उद्घाटन उपन्यास करता है । अत्याचार के शिकार हुए, पीडित एवं असन्तुष्ट मानव की तस्वीर उपन्यास में उभरती है । राजनीति जब पेशा बनकर आती है, तो स्वार्थ को पूर्ण रूप से ओढ लेती है । तथाकथित राजनीतिज्ञों के समक्ष न केवल साधारण मानव का चरित्रबल ही यहाँ पर कुण्ठित होता नज़र आता है वरन् मानव की जीवनी शक्ति भी यहाँ पर सूखती नज़र आती हैं ।

सराय दुर्विजय सिंह नामक एक मोहल्ला उपन्यास का केन्द्र है । यह मोहल्ला वास्तव में भारत वर्ष का ही एक छोटा रूप है । इस मोहल्ले में रहनेवालों की मानसिकता के रूप में हर आम भारतवासी की मानसिकता ही उद्घाटित होती है । सराय दुर्विजय सिंह का विवरण प्रकारान्तर भारतवर्ष की स्थिति का वर्णन बन जाता है । सराय दुर्विजय सिंह का एक सिरा शहर के एक बडे बाज़ार में चोंच बडाये हुए है ठीक उसी प्रकार जैसे भारत को प्रगतिशील चेतना छु भर पायी है । इस मुहल्ले का दूसरा सिरा छोटे छोटे मोहल्लों में ठीक उसी प्रकार तिरोहित है जैसे कि हमारे राष्ट्र की परंपराएँ और जड विश्वास राष्ट्रीय जीवन के छोटे- छोटे प्रदेशों में पैठे हुए हैं ।

काशीनाथ सिंह की कहानी 'माननीय होम मिनिस्टर के नाम'[1] में आज़ादी के बाद उभर आये उन बिचौलियों के करतब पर प्रकाश है

---

1. माननीय होम मिनिस्टर के नाम, काशीनाथ सिंह

जो कि सरकारी कामकाज में बेईमानों की धुरी है । "माननीय होम मिनिस्टर के नाम" का राम प्रसाद मौचा इसी प्रकार का एक व्यक्ति है । "माननीय" और "मिनिस्टर" शब्दों के सही अर्थ को न जानते हुए भी वह उनसे व्यापार चलाता है और जनता से मौके के अनुसार गाली गलौच करवा लेता है ।

पिछले पैंतालीस वर्षों में भारतीय मनुष्य की नियति ही एक प्रकार के भूलभूलैच्चे में फंसी जा रही है । आज़ादी की चमक राजनेताओं के चेहरों पर तो दीख पडती रही परन्तु देश की आत्मा दबती ही गयी । आज़ादी मिले अडतालीस वर्ष का समय बीत गया । इन वर्षों में हमारे देश में जो ढोंग स्वार्थ और झूठ फैला वह कल्पनातीत है । सत्ताधारी सुविधा भोगी वर्ग केवल अपने हित और अपने हक में डूबा है । दूसरी ओर आम आदमी की स्थिति दयनीय और निस्पाय सी हो जाती है आज की भयावह दुनियाँ के सच्चे चित्र समकालीन कथाकार की रचनाओं में मिलते हैं । इस कथा साहित्य के माध्यम से शासन तन्त्र का नग्न रूप सामने आ जाता है जिस षड्यंत्र को कथाकार खुली आँखों से अपने सामने देखता है उसी की स्पष्ट एवं सपाट अभिव्यक्ति वह अपनी रचनाओं में करता है ।

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास "नेता जी कहिन"[1] में देश के सामान्य जीवन में व्याप्त सच्चाई को, राजनीति के असली रूप को नितान्त सहज रूप से उभारा गया है । किसी अन्य संदर्भ में हम इस नेता जी के ही शब्दों में देख सकते हैं -

---

1. नेताजी कहिन, मनोहर श्याम जोशी, पृ. 76

"अतिशयोक्ति नहीं है, ई हम भोगा हुआ यथार्थ बोलि रहें है ससुर ।"

यहाँ बोलने का अन्दाज़ ऐसा हो सकता है कि सुननेवालों को हँसी आ जाये पर जिसको लक्ष्य करके यह बात कही गयी है वह तिलमिला कर रह जाये ।

इस उपन्यास में नेता जी के रूप में ऐसे पात्र को लेखक ने अवतरित किया हैं जो कि सर्वज्ञ है क्योंकि वह अपनी और दूसरों की गन्दगी को समान भाव से बखानता है । समदर्शी है क्योंकि उसे स्वयं और विरोधियों में कोई भेदभाव दिखाई नहीं पड़ता है । ऐसा धारा प्रवाह प्रवचन वह चलाता है कि उसके द्वारा किये गये आघात से कोई भी बच नहीं सकता । भारतीय राजनीति का असली चेहरा कितना घिनोना है, अनजान आम आदमी इसका अनुमान भी नहीं कर सकता है ।

कला, साहित्य, सुसंस्कृति के महिमा मण्डित व्यक्तित्वों की पोल भी यहाँ पर खूब खोली गयी है । हिन्दी साहित्य पर नेता जी टिप्पणी करते हैं -

"अरे, तीस करोड लोगों की भाषा हय हिन्दी और दस करोड अउर भी हय जो समझता हय, फिर भी आपका अमर साहित्त ससुर सरकारी खरीद के लिए मरा जा रहा है ।.... प्रेमचन्द हरी प्रसाद, मुक्तिबोध, इनकी फाइव स्टार जयति आपकी करनी हो, ग्रंथावली का चक्कर

चलाना हो तो आइयेगा । सरकार की सरन मे । अउर सरकार का मतलब ही नेता हय ।"

मुख्यमंत्रीयों के बारे में तो नेता जी की यह बात पत्थर की लकीर है -

"सत्तावान मुख्य मंत्री के इस जमाने में अपने कहने के चार आदमी भी नहीं होते कि ससुर लेट हो जाये तो कन्धा देई दें ।.....कौनो पार्टी हो मुख्य मंत्री अब दिल्ली का सिपाही होता हय ।"

लेखक ने अधिकांश छुट भैयूया के बल पर स्थित दम वाले बड भैयूयाओं या वी.आई.पी. ओं की चरितावली का बखान किया है । यह बखान कही भी अस्वाभाविक नहीं लगता है । आज के भक्तों और दीन दुखितों के लिए संकट मोचन और दुखभंजक ये ही हैं जिनकी क्षमता पर और करुणा से बडे से बडा काम भी कितना ही गलत या असंभव क्यों न हो चुटकी बजाते ही हो जाता है ।

समकालीन कथाकार राजनीति की पोल खोलता है । यहाँ हम देखते हैं कि कथाकार की दृष्टि सीमित दायरों से निकलकर देश की पूरी समस्याओं और पूरे परिवेश में समाती है ।

गोविन्द मिश्र की कहानी 'अपाहिज' में भी नेताओं की धूर्तता पर व्यंग्य किया गया है। इन नेताओं के कारण समूचा प्रजातंत्र ही अपाहिज सा हो गया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जनविरोधी कारगुजारियों के बावजूद ये नेता ही उसके प्रति चिन्तित होने का ढोंग भी करते हैं।

नैतिकता से समकालीन राजनीति का कोई लगाव नहीं रह गया है। दर असल व्यवहारवादी क्रान्ति के बावजूद नैतिकता से हटकर राजनीति एक गत्यात्मक गतिविधि के रूप में उभरी है। आज के बदलते हुए परिवेश में राजनीति एक युद्धहीन संघर्ष के रूप में या परस्पर लगनेवाली होड के रूप में सामने आयी है। इसी कारण सच्चाई के स्थान पर झूठ का आधार पनपने लगा है। राजनीतिज्ञों में भी अन्दरी तौर पर एक दूसरे को पछाड कर स्वार्थ सिद्ध करने की हो और संघर्ष ही बरकरार रहा है।

'सत्तासीन राजनीति स्थिरता की पक्षधर होती है और जो राजनीति सत्तासीन नहीं वह भी अस्थिरता तभी तक चाहती है जहाँ तक उसे सत्ता प्राप्त न हो सके।'[1] सत्ता से वंचित और सत्ता द्वारा पीडित व्यक्ति भी जब सत्तारूढ हो जाता है तो उसमें और पहले की सत्ता में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। समकालीन राजनीति के दूषित वृत्त को और उसके अन्दर चल रहे दोहरे संघर्ष को बदीउज्मा ने अपने उपन्यास

---

1. साहित्य और सामाजिक मूल्य, डा. हरदयाल, पृ. 39.

"छटा तंत्र" में प्रतीकात्मक शैली को अपना कर बड़े ही प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है । छटा तंत्र मे श्राकान नगर के चूहे वहाँ की बिल्लियों से विशेष रूप से सनोवर नामक बिल्ली से बहुत परेशान हो जाते है और अन्त में एक नौजवान चूहे रोनी के नेतृत्व में बिल्ली से लड़ने का निश्चय करते हैं । छापा मार युद्ध होता है और अन्त में सन्धि के पश्चात् बिल्लियों एवं चूहों की एक परिषद बनती है । बिल्लियों और चूहों की संयुक्त व्यवस्था में भी चूहों की संख्या कम होने लगती है, वे रहस्यमय ढंग से गायब होने लगते हैं । चूहे जब इस रहस्य का पता लगाकर अपने नेताओं, रोनी आदि से बताना चाहते है तो वे उनकी बातों पर विश्वास करने को तैयार नहीं हैं । क्योंकि शायद अब नेता चूहों और बिल्लियों में कोई भी अन्तर नहीं रह गया है । रोनी और लोशी भी अब बिल्लियों की तरह चूहों का माँस खाने लगे है । उनकी ओर से चूहों द्वारा शिकायत की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप केवल यह घोषणा होती है कि "बिल्लियों को चूहे का शिकार करने की मना ही है । बिल्लियों ने चूहे खाना छोड़ दिया है ।..... जो चूहे ऐसी गलत अफवाहें फैलायेंगे या ऐसी गलत अफवाहों पर विश्वास करेंगे उन्हें सख्त सजा दी जायेगी ।"[1]

गोविन्द मिश्र की कहानी "अपाहिज"[2] में नेताओं की धूर्तता पर व्यंग्य है । नेताओं के कारण समूचा प्रजातंत्र ही अपाहिज सा हो गया है । ध्यान देने की बात यह ठहरती है कि जनविरोधी कार गुजारियों के बावजूद ये नेता ही उसके प्रति चिन्तित होने का ढोंग भी करते हैं ।

---

1. छटा तंत्र, बदीउज्मा, पृ. 72

2. अन्तःपुर, गोविन्द मिश्र, पृ. 35.

इब्राहिम शरीफ की कहानी "दिग्भ्रमित"[1] में डरे हुए आदमी के एहसास और विकल्पहीनता की उसकी स्थितियों के क्रूर राजनैतिक संबंधों को उजागर किया गया है । राजनीति से सम्बद्ध लोग उसे चारों ओर से घेरे हुए हैं । और वह पाता है कि उसके लिये कोई रास्ता नहीं रह गया । आम आदमी यह जानता है कि इनसे तभी छुटकारा मिल सकता है जब इन सभी की खाल उधेड़ी जाये परन्तु तभी कहानी का केन्द्र पात्र "वह" महसूस करता है कि वह कहीं से इतना पोला हो गया है कि जुलूस तो जुलूस वह खुद भी रगड़ने की हालत में नहीं है ।

मध्यवर्गीय मानसिकता के विभिन्न आयाम

स्वातंत्र्योत्तर युग में अर्थात् भारत की आज़ादी के पश्चात् मध्यवर्ग की एक स्वतंत्र वस्तुनिष्ठ वास्तविकता पुनर्गठित हुई । उच्च वर्ग के समान उठने की इच्छा के बावजूद आर्थिक खोखलापन उनकी ख्वाहिशों का गला लगातार घोंटने लगा और घोटता ही चलता है । दिखावटी मान-सम्मान और बड़प्पन का बोध मध्यवर्ग को ग्रसित किये रहता है । "आर्थिक अभाव, ऊँचे अरमान, बड़प्पन की मिथ्या भावना, मिथ्या प्रदर्शन इन सारे चक्रों में पिसते हुए मध्यवर्ग की अपनी अनेक जटिल समस्याएँ हैं ।"[2]

दिलो और दिमागी तौर पर मध्यवर्ग उच्चवर्ग से बिलकुल भी पिछड़ा नहीं होता । इस कारण उच्चवर्ग के स्तर की ज़िन्दगी न जी पाने,

---

1. कहानियाँ, इब्राहित शरीफ, पृ. 45
2. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर यात्रा, राम दरश मिश्र, पृ. 34.

उनके बराबर न पहुँच पाने के कारण हमेशा बेचैनी और ना खुशी मध्यवर्ग में बरकरार रहती है । परन्तु इतना कुछ होते हुए भी वह कुछ कर पाने में असमर्थ रह जाता है । तमाम जिन्दगी जूझते हुए जीने के बाद भी एक प्रकार की कुढ़न या संकुचित होती मानसिकता ही अन्त में मध्यवर्ग की पूँजी रह जाती है ।

हिन्दी कथा साहित्य कुछ दूर जाकर भी बार बार "मध्यवर्ग" के केन्द्र में लौट आता है । संभवतः इसीलिए उसकी केन्द्रीय धारा मध्यवर्ग की संवेदना से ही बनती है । इस बात में भी कोई शंका नहीं कि स्वातंत्र्योत्तर मध्यवर्ग की स्वतंत्र वस्तुनिष्ठ सत्ता पुनर्गठित हुई । अनन्तर इसी मध्यवर्गीय मानसिकता की अभिव्यक्ति समकालीन कथा में हुई । मध्यवर्ग को इसी कारण आज की कथा के केन्द्र में विद्यमान देखा जाता है ।

काशीनाथ सिंह की कहानी "अपने लोग"[1] में मध्यवर्ग के बाबू की मनःस्थिति का बहुत ही स्पष्ट चित्रण हुआ है । वह जानता है कि उसके भीतर की आवाज़ बिलकुल मर चुकी है । वह अपने भीतर सोई पड़ी आत्मा को जगाना चाहता है । उसमें स्वाभिमान था जो कि अब बिलकुल शून्य पड़ चुका है वह उसे झकझोर देना तो चाहता है किन्तु स्पन्दन हीनता ही उसे महसूस होती है -

---

1. आदमी नामा, काशीनाथ सिंह, पृ. 31.

"दासू, मेरे भीतर कोई चीज़ है जो मर गयी है"
"और तुम क्या चाहते हो"
"मैं चाहता हूँ कि वह जिन्दा हो"[1]

किन्तु वह जिन्दा नहीं हो पाती है । वह भीतर से इतना पोला और पिपला है, जड और स्पन्दनहीन हो चुका है कि न उसकी अन्तरात्मा जगती है न स्वाभिमान । घिसटते हुए घिघियाते हुए, अपमानित होते हुए जीवन जीने की आदत उसकी स्थिति को और भी दयनीय बना देती है ।

मध्यवर्गीय मनुष्य के अभावों और अभिशापों की छाया जिसे हर कोई अपने ढंग से झेलता है उसे समकालीन कहानीकारों ने अपनी कहानियों में उभारा है । से.रा.यात्री की कहानी "अंधेरे का सैलाब"[2] का "मैं" जतन से बचाये गये कुल बीस रुपयों दीवाली मनाना चाहता है । इसमें से बारह रुपयों में उसने एक किलो मिठाई का डिब्बा खरीद कर बच्चों से छिपाकर रख दिया है । किन्तु दीवाली के दिन दूर संबंधी इन्जीनियर द्वारा घर बुलाये जाने के पश्चात् वहाँ पर डाली के तौर पर आई मिठाईयाँ और अन्य चीज़ों की चकाचौंध में "मैं" के परिवार की दीवाली अन्धेरे का सैलाब बनकर रह जाती है । मुण्डेर पर दिया रखने के बाद, रोशनी दिखाने के उद्देश्य से जब वह बच्चों को

---

1. आदमी नामा, काशीनाथ सिंह, पृ.32.
2. सारिका, से.रा.यात्री, अक्टूबर 1974, पृ.20.

पुकारता है तो अन्दर से कोई निकल कर नहीं आता...... "अन्दर जाकर देखा तो पाया कि दोनों बच्चे फर्श पर टेढ़े-मेढ़े होकर लेते है और पसीजी हुई मिठाई के टुकड़े उनकी मुट्ठियों में जकड़े हुए थे..... नये कपड़ों में राजी उस नन्हीं सी मासूम बच्ची को गोद में लेकर मैंने लाख जगाने की कोशिश की पर उसने आँखें एक क्षण के लिए मुल मुलाकर फिर बन्द कर लीं और फुलझाड़ियों का बण्डल उसकी पकड़ से छूटकर फर्श पर गिर गया।"[1]

मध्यवर्गीय परिवार की आकांक्षाओं और सपनों के ध्वस्त हो जाने की कहानी है रमेशचन्द्र शाह का उपन्यास "गोबर गणेश"। इसमें एक ऐसे मध्यवर्गीय परिवार की कथा है जो सपने पालता है यत्न से उन्हें सींचता है परन्तु उनका अन्त निराशा और टूटन में ही हो पाता है। परिवेश से टकराते-टकराते व्यक्ति के विध्वंस की कथा ही इसमें है। यहाँ पर यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पूरा उपन्यास एक व्यक्ति विनायक की चेतना में घटित होता है। और वह उसके द्वारा जी गयी कथा है। इस कारण यह मध्यवर्गीय जीवन की गाथा होने के साथ एक संवेदनशील व्यक्ति के जीवन भोग और पीड़ा का दस्तावेज़ भी हो जाती है। "गोबर गणेश" में जगन काका जैसे पढ़े लिखे चरित्रवान और विवेकशील व्यक्ति आर्थिक मोर्चे पर खरे नहीं उतरते। विनायक के पिता जगन के बड़े भाई आदर्शवादी और स्वप्न जीवी होने के कारण परिवार में उनकी कोई हस्ती नहीं है। एक मधुर काका हैं जोकि व्यावहारिक दृष्टि रखते हैं। वही परिवार सम्हाले हैं। उनका सपना

---

1. सारिका-1974, से.रा.यात्री, अन्धेरे का सैलाब, पृ.23.

है कि विनायक आई.ए.एस. पदाधिकारी बने । इस कारण वे उसकी पढ़ाई पर कक्षा में प्रथम आने पर विशेष ज़ोर देते हैं । किन्तु स्कूली जीवन के पश्चात् जब विनायक विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है तो वहाँ का वातावरण बिलकुल अलग है, उसकी टकराहट नई परिस्थितियों से होती है । आइ.ए.एस. परीक्षा में सफल होने का उसका स्वप्न केवल इस कारण से स्वप्न ही रह जाता है । क्योंकि मधुर काका खर्च भेजना बन्द कर देते हैं । अन्ततः विवश होकर वह ट्यूशन करता है और वह लड़की बाद में उसकी प्रेमिका बन जाती हैं, किन्तु उसके उच्च पदाधिकारी पिता इस मध्यवर्गीय युवक को अपना दामाद बनाने योग्य नहीं समझते हैं । इस मानसिक और आर्थिक संघर्ष से जूझता विनायक आई.ए.एस बनने का स्वप्न तो दूर द्वितीय श्रेणी का एम.ए. ही प्राप्त कर पाता है ।

आशीष सिन्हा की कहानी "इस शहर में"[1] का मैं छोटी उमर में ही जान लेता है कि ज्ञान पाण्डित्य सब व्यर्थ है । पढ़े लिखे ज्ञानी शिक्षक की जगह भी जज साहब के यहाँ माली तथा अन्य नौकरों के साथ ही है । परन्तु वह भी अपना आक्रोश बालू के बस्ते पर ही उतारता रह जाता है । यहाँ हम देखते है कि मनुष्य जब अपनी ज़रूरतों को भी पूरा करना चाहते हो और मूल्यों से भी जुड़े रहना चाहते हो तो ऐसी स्थिति में उसे दोनों स्तरों पर संघर्ष करना पड़ता है ।

किन्तु किसी बिन्दु पर आकर तो मूल्यों की तिलांजली भी काम नहीं आती और टूटन ही शेष रह जाती है । सूर्यबाला की कहानी

---

1. सारिका 1979, आशीष सिन्हा, पृ. 26.

"पराजित"[1] का "बंसल" अपनी स्थिति से उबरने के लिए एक प्रमोशन हासिल कर सीनियर हो जाने की तमन्ना में न केवल चिड़चिड़ा हो जाता है बल्कि वह अपने बालों को डाई करने तक लेकर अपनी पत्नी को मैक्सी पहनाकर उच्च अधिकारियों को रिझाने तक की स्थिति तक पर आ जाता है और अंततः पराजित होकर फफक फफक कर रो पड़ता है ।

जीवन परिवेश के कारण मध्यवर्ग की मानसिकता में भी कुण्ठा, उदासीनता आदि का आगमन या आधिक्य स्पष्ट दीख पड़ता है । "फ्रेम में इधर और उधर"[2] में "मैं" इधर के अपने इज्जतदार और सशंकित घर और उधर के लापरवाह तथा खुले व्यक्तित्ववाले पड़ोसी परिवार की तुलना करता है और वहाँ कुण्ठा और विमुक्ति का अन्तर ही स्पष्ट होता है । पड़ोसी परिवार की लड़की को लेकर उसके माँ बाप को कोई भी संदेह, अशांति या भय नहीं है किन्तु नायक के यहाँ तो भाभी तक फूल लेने के लिए पप्पी के साथ निकलतीं हैं । वे बाहर भी डरतीं हैं और घर में भी । लड़की का अकेले बैठना, लड़की के पिता द्वारा अपनी पत्नी के कन्धे पर हाथ रखकर बातें करना, धूमधाम के बिना हुई लड़की की शादी, शादी के दूसरे दिन ही उसका पति के साथ सहज भाव से चलकर आना यह सब कुछ बहुत ही सहज है किन्तु नायक की माँ के अनुसार वह लड़की कठोर है, दादी के अनुसार यह शादी कंजूसी की है । इस प्रकार नायक के घर पड़ोसी निन्दा का बाज़ार गरम रहता है । इस समय नायक को एक गहरा अभाव प्रतीत होता है और वह खालीपन और उदासी को अनुभव करता है ।

---

1. थाली भर चान्द, सूर्यबाला, पृ. 75.
2. प्रतिनिधि कहानियाँ, काशीनाथ सिंह, पृ. 27

मध्यवर्गीय सामाजिक स्थिति की अन्दरूनी रचना "आखिरी रात" में देख सकते हैं । एक स्पन्द और शारीरिक संबंधों में निस्पन्दता का भाव और सपाटपन आ जाता है जोकि युवाचित्त को बाहर फेंक देता है । युवा पति यहाँ रिक्त है युवा उन्मादित पत्नी के साथ भी अकेला है । प्यार की बातें प्यार की घड़ियाँ महज रोमान्टिक और अभिनयात्मक हो जाती है । यादें भी रोमांचहीन है ।

"कई अन्धेरों के पार"[1] का धीरेन्द्र मध्यवर्गीय अभावग्रस्त आठ प्राणियों के परिवार बोझ ढोनेवाले एक ऐसे पिता का पुत्र है जो दलालों के पेशे में पारखी से निकाले गये । वह दो वक्त की रोटी भी नहीं जुटा पाता । यही कारण है कि हायर सेकेन्ड्री के बाद ही धीरेन्द्र को किराना की नौकरी करनी पडती है । और परिवार को सहयोग देने के लिए विवश होना पडता है । जीवन और ओढी गयी प्रतिष्ठा को कायम रखने के लिए अभावों की दुर्निवारण के कारणवश हो उसकी माँ जहाँ अपने छोटे-छोटे बच्चों को थेगडों से ढँकती है । वही रूखा सूखा खाकर दो कमरों के मकान को भी किराये पर उठा देती है । वह गृहस्थी को किसी प्रकार चलाने का प्रयत्न करती है ।

महानगरीय जीवन बोध की समकालीनता

समकालीन कथाकारों ने महानगर में बड़े पैमाने पर हो रहे परिवर्तनों को, यान्त्रिकी एवं यान्त्रिकी सभ्यता के दबाओं को अनुभव किया है ।

---

1. कई अन्धेरों के पार, धीरेन्द्र वर्मा, पृ. 47

आततायी बाहरी माहौल को वे अपने भीतर रूपांतरित होता हुआ पाते हैं। महानगरीय संदर्भों में एक प्रकार का आतंक लगातार मनुष्य को घेरता चला जा रहा है। इसकी अभिव्यक्ति समकालीन कथाकार करता है।

नगर जीवन की स्थितियों एवं संवेदनाओं को अनेक रचनात्मक स्तर पर अभिव्यक्त करने की कोशिश समकालीन कथाकारों ने की है। यहाँ पर इनका रचना-संसार भी काफी हद तक महानगरीय ही हो चला है। महानगर में बसे व्यक्ति पर पड़नेवाले दबाव के भी कई आयाम होते हैं - राजनैतिक सत्ता का दबाव, यान्त्रिकता का दबाव, यौन स्वछन्दता की भ्रष्ट स्थिति का दबाव आदि। इस प्रकार महानगर निवासी व्यक्ति पाता है कि सभी कुछ यहाँ पर छिन्न-भिन्न है। विश्रृंखलित और विपर्यस्त है। सार्थक होने के तमाम प्रयत्न उसे निरर्थकता की ओर ही ले जाते हैं। "वह {महानगर में बसनेवाला व्यक्ति} पाता है कि प्रेम, स्नेह, वात्सल्य, भ्रातृ भावना और श्रद्धा आदि के युगों पुराने आद्य संस्कार या आर्कटाइपल बिम्ब अपने स्थान से खिसक चुके हैं और मिटने की प्रक्रिया में हैं।"[1] जीवन की जटिलता और विडम्बना और त्रास का जो गहरा एहसास समकाल में जीनेवाला मनुष्य करता है, महानगरीय जीवन और वहाँ की संस्कृति के इसी बोध को समकालीन कथाकार सर्जनात्मक धरातल पर अभिव्यक्त करते हैं।

महानगर के प्रभाव से बदलते मूल्य की कशमकश को ज्यों का त्यों सामने रख देने का प्रयास गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यास "तुम्हारी

---

1. आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ, नरेन्द्र मोहन, पृ. 119.

रोशनी में"[1] में किया है । युवती सुवर्णा में यहाँ पर सम्मोहन है, अनेक पुरुष मित्रों का साहचर्य उसे कालेज के दिनों में मिलता है । कभी सोम कभी विनय, कभी अन्य रमेश से सुवर्णा का पारम्परिक तौर पर विवाह होता है । दो बच्चे भी हैं नौकरी करती सुवर्णा आर्थिक रूप से स्वतंत्र भी है । सम्प्रेषण संस्थान में नौकरी करते समय अविवाहित अनन्त से उसका परिचय होता है ।

अनन्त की मुलाकात यहाँ रमेश से भी होती है और पहली मुलाकात में ही वह जान लेता है कि सुवर्णा के पति होने के अधिकार दर्प को रमेश कहीं न कहीं जता देता है । अनन्त और सुवर्णा मानसिक रूप से जुडते चले जाते हैं । रमेश और अनन्त दोनों ही सुवर्णा के पुरुष मित्रों के संदर्भ में जानते हैं । रमेश इसे जान कर भी कुछ नहीं कहता है । परन्तु एक दिन जब सुवर्णा अपने मित्र श्याममोहन के जन्म दिन पर प्यार का प्रतिपादन करती है तभी सहसा रमेश आकर सुवर्णा के साथ अप्रत्याशित व्यवहार करता है । और इसी के साथ सुवर्णा रमेश को छोडने तथा नौकरी में तबादला करवाने तक की बात सोचती है । तथा तबादले की माँग करने के पश्चात् वह पहाडों पर अपने माता पिता के साथ चली जाती है ।

आधुनिक दृष्टि और आर्थिक स्वतंत्रता के साथ-साथ उत्पन्न जटिलताओं को भी यहाँ उभारा गया है । सुवर्णा जहाँ नये अर्थ और नये मूल्य खोजती है वहीं पर मध्यवर्ग की संस्कार-बद्धता भी भोगती है ।

---

1. तुम्हारी रोशनी में, गोविन्द मिश्र, पृ. 67

"चेहरे"[1] का केन्द्र पात्र मनप्राण से शेष हो चुका है। उसकी स्थिति घर में और बाहर अजनबी जैसी है। उसे कहीं भी कुछ भी "इम्प्रेशन" नहीं मिलता है। वह मानता है कि चेहरे की कभी सही पहचान नहीं हो सकती। क्योंकि चेहरों पर हर वक्त मुखौटे चढ़े रहते हैं। उसके चेहरे पर हमेशा एक मुखौटा चढ़ा रहता है। प्रेमिका से बात करते हुए भी पत्नी से बर्ताव करते हुए। मानवीय संबंधों में आ गयी एक अजीब प्रकार की कृत्रिमता और ढोंग को उघाड़कर सामने रखा गया है, मुखौटा के पीछे के नंगेपन और घिनौनेपन को इंगित करके। कहानी के अन्त में एक भयानक स्वप्न के ज़रिये आदमी के बहुरूपियेपन और विकलांगता का बोध कराने की कोशिश की गयी है।

आशीष सिन्हा के उपन्यास "अजनबी इन्द्र धनुष"[2] में महानगरीय संस्कृति पूरी तरह से उभरी है। इस उपन्यास का केन्द्र पात्र अशोक न केवल अपनी पहली पत्नी को छोड़कर कविता से विवाह करता है बल्कि महानगरीय चेतना उसपर इतनी अधिक हावी होती है कि वह अपना सब कुछ भुला कर नये जीवन को रंग देना चाहता है। अपने व्यवसाय के लिए वह सब कुछ करने को तैयार है - यहाँ तक कि अपने व्यवसाय में लाभ के लिए पत्नी का इस्तेमाल करना भी उसे अनुचित नहीं लगता।

क्लब जाना, पत्नियाँ बदलना या शराब पीना अशोक की दृष्टि में हेय नहीं है। इस महानगरीय संस्कृति और जीवन में कविता फिट

---

1. अर्धहीन वह मैं, सिद्देश, पृ. 52.
2. अजनबी इन्द्रधनुष, आशीष सिन्हा, पृ. 51

नहीं हो पाती । इसी कारण क्लब में अन्य औरतें उसे गंवार एवं देहाती कहती है ।

महानगरीय परिवेश में इस दाम्पत्य जीवन की विसंगति के साथ-साथ महानगरीय स्वच्छन्द प्रेम संबंधों की स्थिति का भी चित्रण उपन्यास में मिलता है । अशोक की पुत्री ज्योत्सना भी कभी सुधीर के साथ काफी हाउस में दीख पडती है तो कभी वेंकट की बाहों में तो कभी अमिताभ के साथ अकेलापन भुलाने की कोशिश में तो कभी प्रेमप्रकाश के साथ जीप में । ये प्रेम संबंध ज्योत्सना को किसी भी गन्तव्य पर नहीं पहुँच पाते । इन सभी का संबंध मात्र शरीर से है । प्रेमियों से घिरी ज्योत्सना बाज़ार से पिता को फोन करती है और कहती है -

"पापा !.... आई एक एलोन....
मैं अकेली हूँ पापा"[1]

"शेष होते हुए" में हम देखते हैं कि घर पहूँचने पर "मझले" की क्या मनोदशा है ? माँ, पिता, भाई बहन, भाभी का निहायत सामान्य, औपचारिक निरुत्साहित और ठंडा रुख-वात्सल्य और स्नेह जैसी मनोवृत्तियों के सुख जाने का बोध कराता है । परिवार के सभी सदस्य स्वयं सुखे सिमटे हुए है । एक दुसरे से दे कटे हुए हैं । वे एक दुसरे को दोष देते हैं, खीजते हैं, क्रोधित होते हैं, रोब डालते हैं और "पोज़" करते हैं । कहानी की अंतिम पंक्ति में कहा गया है कि -"अभी लोग पूरी तरह टूटे

---

1. अजनबी इन्द्रधनुष, आशीष सिन्हा, पृ. 73

बिखरे नहीं है अभी संक्रान्ति और अंजाम की तरफ केवल शुरूआत हुई है ।[1] मूल्य के स्तर पर अस्तित्व संकट किस प्रकार महानगरीय जीवन परिवेश में मनुष्य को तोड़ता जा रहा है इसकी अभिव्यक्ति देनेवाली इस कहानी की संवेदना तीव्र ही जान पड़ती हैं ।

काशीनाथ सिंह की कहानी सुबह का डर में पंचम तथा उसका साथी तथा वसन्त व राय साहब उस अवसर पर जबकि वे वसन्त के बुरी तरह घायल भाई को जो कि मृत्यु से संघर्ष कर रहा है लेकर अस्पताल में आये हैं । वे स्कूल की लड़कियों और अस्पताल की नर्सों को लेकर भद्दे मज़ाक करते हैं । भाई की जिन्दगी का नहीं वरन् जाड़े में रात काटने का सवाल उनके लिए प्रमुख हो जाता है । स्वयं वसंत भी पोस्टमार्टम के बाद सारा झंझट खतम कर चलना चाहता है । तमाम औपचारिकताएँ निभाता हुआ मनुष्य कितना कमीना और नंगा है यह इस कहानी में कथित नहीं बल्कि उसके रचाव का एक हिस्सा है । मौत के बाहरी संदर्भ में मनुष्य का भीतरी विघटन यहाँ पर दीख पड़ता है ।

गंगा प्रसाद विमल की कहानी "बच्चा"[2] में भी इसी प्रकार की स्थिति है । ऊपरी मंजिल से बच्चे के गिर कर मर जाने पर संकीर्तन की भाँति मातम तो होता है परन्तु यह नहीं देखा जाता कि बच्चा कौन सा है । सभी को यहाँ पर अपने अपने बच्चे की फिक्र ही होती है ।

---

1. आदमी नामा, काशीनाथ सिंह, पृ. 41.
2. मेरी कहानियाँ, गंगा प्रसाद विमल, पृ. 24.

मनुष्य यहाँ पर न तो मूल्यों की तलाश में भटकता है न तो वह वैयक्तिकता और सामाजिकता के द्वन्द्व में डोलता है । वास्तव में मूल्यों की टूटन ही है जो यहाँ दीख पडती है । समाज, संस्कृति, मानवता पर चिन्तन न करके एक कटी ज़िन्दगी जीनेवाला मनुष्य ही यहाँ दीख पडता है ।

ग्रामीण जीवन-स्थितियाँ

आज का भारतीय जीवन निरंतर संक्रमित होते हुए मूल्यों और तेज़ी से होते परिवर्तनों एवं परस्पर टकराते सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक संदर्भों का जीवन है । चारों तरफ ह्रास और बिखराव का एक व्यापक दौर ही आता है जो नगर जीवन के साथ ग्राम जीवन को भी स्पर्श करता है । परंपरा की जकडन सुदृढ होने के कारण टकराहट की मात्रा गाँवों में अधिक होती है । सरकार के सारे विकास-प्रयत्न गाँवों को धक्का देते है कि उसकी जकडन टूटे । अनेक विकास योजनाओं के बावजूद गाँव टूट रहे हैं । इसकी अभिव्यक्ति समकालीन कथाकारों ने अपनी रचनाओं में सशक्त रूप से की है ।

ग्राम जीवन के बदलाव की सही पहचान और बनते बिगडते नये मूल्य, गरीबी का जनव्यापी संघर्ष और राजनैतिक दबाव उभरे हैं । उनमें उभरे सामाजिक आयामों का बिम्बात्मक चित्रांकन राम दरश मिश्र के उपन्यास "जल टूटता हुआ" राप्ती नदी के कछार की अभावग्रस्त ज़िन्दगी जीते

जनसामान्य के जीवन और क्षणभर के लिये उनके जीवन में आनेवाली तरल घाड़ियाँ इस उपन्यास में उभारी गयी हैं ।

जल टूटता हुआ में हम देखते हैं कि कल का क्रूर ज़मीन्दार आज रंग बदल कर जनसेवक बन गया है । अन्य किसी भी बात की चर्चा गाँव में गौण विषय है, मुख्य विषय तो चुनाव, राजनीति और पार्टीबन्दी ही है । गाँव की राजनीति में भी कत्ल, पुलिस केस, बैल खुल जाना, खलिहान फूँक जाना, खेत उखाड़ लिया जाना से लेकर सरपंच, सभापति जैसे लोगों का कत्ल तक शामिल है । कथा के केन्द्र में सतीश नामक पात्र है और उसी के माध्यम से गाँव उभर कर सामने आता है । यह पात्र महसूस करता है कि "इन तमाम लोगों के बीच मैं अकेला हूँ कहीं कोई चीज़ है जो मुझे इन लोगों से काट देती है ।..... अपने भीतर के सारे अकेलेपन को लिये मैं इस समूह में समूह की ज़िन्दगी जी रहा हूँ ।"[1] यह समूह की ज़िन्दगी जीने की विवशता ही आधुनिकता का एक अभिशाप है । समूह में भी अलग अलग दर्जे हैं और ये संवादहीन स्थिति में परस्पर टकराते हैं । जमीन्दार महीप सिंह भी है क्योंकि जमीन्दारी टूट रही है । सतीश सोचता है -"जमीन्दार टूट रहा है, मगर इसकी जड़ता नहीं टूट रही है।..... सभी अलग अलग दुखी है ।"[2]

नये बदलाव के साथ साथ गाँव में नैतिकता की जड़ें उखड़ चुकी हैं। ग्राम अपनी सामाजिक नैतिक समग्रता के साथ काफी बिखर चुका है ।

---

1. जल टूटता हुआ, राम दरश मिश्र, पृ. 107.

2. वही, पृ. 50.

ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार है। गोरा बाढ में "गाँव ऊँचा करो" की योजना है जिसमें ठेकेदारों की लूट मची है । चकबन्दी का भ्रष्टाचार सभी को मात दे रहा है । "दीनदयाल चलें तो उनकी जेब रूपयों से गरमा रही थी । दो सौ साहब के लिए और सौ अपने लिए ।" (पृ. 46)

गाँव की सामाजिक व्यवस्था भी दिन-ब-दिन बदतर ही होती जाती है । हरिजन बस्ती की मुँहफट हरिजन लडकी लवंगी बड़े लोगों की असलीयत का पर्दाफाश करती है कि किस प्रकार सवर्ण, अछूता नारियों की गरीबी की दरिया में हाथ धोते है जहाँ बदमी कुलवा और इलवा जैसी अवर्ण, नीची जाति की कन्याओं की स्थिति शोचनीय है वहीं पर गितवा, पारबती, सरधा जैसी सवर्ण कुँवारी कन्याएँ भी सामाजिक कुरीतियों और बिगड़ी हुई सामाजिक व्यवस्था का शिकार बनती हैं ।

भारतीय गाँवों की सीधी और सच्ची तस्वीर सामाजिक पृष्ठभूमि पर ही उभरती है । "बावजूद टूटन और बिखराव के गाँव की इकाई का ढाँचा अब भी जिस-तिस तरह बना हुआ है, इस ढाँचे के । जब चरमराते हुए देखते हैं तो बहुत पीड़ा होती है । यह पीड़ा एक सत्य है जिसकी कसमसाहट से "जल टूटता हुआ" भरा है ।"[1] बाढ का प्रकोप हो या मंझरिया नाले पर बान्ध बाँधने की कोशिश, प्रकृति से संघर्ष में तो गाँव का आदमी विजयी हो भी जाता है अपने ही अन्दर की नैतिक सामाजिक शक्तियों से वह निरन्तर हारता चला जाता है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, नरेन्द्र मोहन, पृ. 225.

विवेकीराय के उपन्यास "लोक ऋण" में गाँव के जन साधारण के शत्रुओं की सही पहचान और व्यवस्था की बिगड़ी स्थितियों के कारणों की खोज दिखाई पड़ती है । साथ ही गाँव के प्रति निराशा का रूख भी इसमें काफी हद तक बदला हुआ प्रतीत होता है । गाँव का संपन्न वर्ग स्वयं को और अधिक संपन्न बनाने की हवस में किन-किन तरह के मुखौटे लगाता है इसका प्रामाणिक विवरण लोक ऋण में है । अपना स्वार्थ साधने की धुन में न्याय सज्जनता ईमानदारी आदि किसी भी प्रकार के किसी मूल्य का कोई अर्थ नहीं रह जाता है । और स्वार्थों की सिद्धि के लिए आम आदमी ही यहाँ पर प्रयुक्त होता है । "लोक ऋण"में सीता राम के माध्यम से हम देखते हैं कि शोषित एवं पीड़ित वर्ग को अपने गलत इस्तेमाल का अहसास होने लगा है । गिरिश के साथ बातचीत में सीताराम की मूल चिन्ता यही है कि "हम लोग जाने अनजाने भ्रमित होते चले जाते है और अच्छे बुरे की पहचान धूमिल पड़ जाती है । ऐसी स्थिति में संघर्ष लाजमी है ।" यहाँ पर हम देखते हैं कि ये शोषित पीड़ित वर्ग संघर्ष करना तो चाहते है किन्तु संघर्ष का सही तरीका उन्हें मालूम नहीं है ।

गाँवों में व्याप्त मानसिक रूग्णता के मूल में एक ओर तो पर्याप्त शिक्षा का अभाव है तो दूसरी ओर राजनीति का दूषित वृत्त है । शिक्षा के अभाव में गाँववालों में चुनाव एवं प्रजातंत्र संबंधी गलत धारणा विकसित होती है । इसके साथ ही गाँव के शिक्षित युवा वर्ग का प्रलोभित होकर शहर की ओर चले जाना भी गाँव के लिए एक अभिशाप बन गया है ।

इससे उबरने का प्रयास लोकऋण में गिरिश के माध्यम से दिखाया गया है । रामपुर में त्रिभुवन, सौदागर तिवारी, सदानन्द तिवारी जैसे बहुरूपियों की उपस्थिति में गाँव के व्यवस्था तंत्र की गडबडी ही सर्वत्र दीख पडती है । आपसी मानवीय संबंध अस्त व्यस्त हैं तथा स्वस्थ मानवीय मूल्य कठोर आजमाइश से गुज़र रहे हैं । स्वार्थ शक्तियाँ अपने स्वार्थ लाभ पर तुली हुई हैं ।

"लोकऋण" में धरमू एवं गिरिश को लगता है कि गाँव के मरने का अर्थ है लोगों के भीतर आदमी की मौत । धरमू जैसे अर्धशिक्षित लोग इस मौत को लगभग स्वीकार कर लेते हैं परन्तु गिरिश जैसे ग्रामीण बुद्धिजीवियों में द्वन्द्व के बावजूद यह चेतना बराबर बनी हुई है कि गाँव मरा नहीं है, गाँव को मरना नहीं चाहिए ।

पंजाब के पिछडे हुए गाँव घोडेवाहा के चौधरियों के अन्यायों तथा गाँव पर उनके आतंक से सीधा साक्षात्कार कराता है "धरती धन न अपना"[1] शीर्षक उपन्यास । इसमें चौधरियों एवं चमारों के बीच में दास प्रथा वाले अर्ध-सामन्तीय संबंध है । परन्तु यहाँ भी अब इस संबंध के वर्ग संघर्ष में बदल जाने की अनिवार्यता की स्थिति दीख पडती है । इसमें एक स्वाभिमानीनी और सुन्दर चमारिन किशोरी ज्ञानो प्रेम में गर्भवती होने के पश्चात् स्वयं अपनी माँ द्वारा संखिया खिलाकर मार दी जाती है ।

---

1. धरती धन न अपना, जगदीश चन्द्र, पृ. 67

एक दूसरी चमारन युवती लच्छो के साथ चौधरी हरदेव बलात्कार करता है और लच्छो की भूख और विवशता के कारण बात वहीं पर दब भी जाती है । उपन्यास के केन्द्र में चमा दड़ी मुहल्ला है और गाँव के चो खेत है, यहीं पर डा. बिशन दास कठमुल्ला है, जोकि किताबी कम्युनिस्ट हैं । दो वृद्ध चमारों बाबे, फत्ते तथा ताया वसन्ता में ही शोषण के खिलाफ खड़े होने का तथा वर्गीय संघर्ष की समझ का उदय होता है । अपढ़ होने पर भी ये आधुनिकता के सकारात्मक संघर्ष की ओर बढ़ते हैं । सम्भोग, बलात्कार, भूख, शोषण तथा अपमान और अत्याचार की जो कथाएँ "धरती धन न अपना" में हैं वे अश्लील, असंभव या अस्वाभाविक नहीं हैं । बल्कि जीवन तथा समाज के तथ्य है ।

"धरती धन न अपना" में समूह के क्रिया कलाप तथा सामूहिक स्थितियों के संदर्भ में आम आदमी की साझेदारी को उजागर किया गया है । यह साझेदारी ही उपन्यास का वह मार्ग है जोकि घोड़ेवाहा गाँव को चमादड़ी के चमार हरिजनों की बस्ती की गलियों, "चो"(नदी) के बान्ध तक पहुँचने में सहायक सिद्ध होता है । उपन्यास का कार्य स्थल चमादड़ी की गलियाँ, कच्चे मकान, चौबारे आदि है । चौधरियों, महाजनों के मुहल्लों तथा खेतों और हवेलियों के लिए कमीन और कामी जैसा चमार और चमारिने पुश्तैनी तौर पर गुलाम और चाकर हैं ।

गाँव के वातावरण में आज की जिन्दगी को कहीं और भी अधिक निकट से पहचाना गया है श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास राग दरबारी

में । प्रगति और विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थो और अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही गाँव की जिन्दगी के दस्तावेज़ को इसमें प्रस्तुत किया गया है ।

उपन्यास का केन्द्र स्थल शिवपाल गंज है । यह गाँव शहर से कुछ नज़दीक एवं सडक के किनारे पर स्थित है । इस कारण अफसरों और नेताओं को भी वहाँ तक जाने में अपेक्षाकृत कम एतराज होता है । रंगनाथ जो प्राचीन इतिहास पर शोध करता है वह सेहत बनाने के उद्देश्य से ही शिवपालगंज गाँव जाता है । किन्तु शिवपालगंज जाने के रास्ते में ही यह दृश्य भी है : "थोडी देर में ही धुधलके में सडक की पटरी पर दोनों ओर कुछ गठरियाँ सी रखी हुई नज़र आयीं । ये औरतें थी जो कतार बान्ध कर बैठी हुई थीं । वे इतमिनान से बातचीत करते हुए वायु सेवन कर रही थी और लगे हाथ मलमूत्र विसर्जन भी ।"[1] इस दृश्य के वर्णन से पाठक को अरुचि तो हो सकती है परन्तु समस्या, समस्या बने बगैर नहीं रह जाती है ।

शिवपालगंज का अपना थाना है जहाँ पर हर काम जैसे का वैसा पडा है । दरोगा जी के लिए साम्यवाद वह है जिसमें रिश्वत, चोरी, डकैती में भेद नहीं रह गया ।

---

1. राग दरबारी, श्रीलाल शुक्ल, पृ. 38.

छंगामल विद्यालय इंटर मीडियट कालेज शिवपालगंज के लोगों का अपना कालेज है जहाँ अपनी पालिटिक्स चलती है, और इसमें हर तरह का कमीनापन भी चलता है । बिजली क्या है इस बात की जानकारी तक छात्रों को नहीं है ।

प्रिंसिपल साहब, मास्टर खन्ना, रुप्पन बद्री, वैद्य जी, मास्टर खन्ना, गयादीन, लंगड आदि के साथ बामन, ठाकुर चमार जैसे वर्गीय चरित्र भी उभरते हैं । एक छोर पर वैद्यजी है जो सभी प्रकार के छल और अवसरवादिता से युक्त है और दूसरी ओर लंगड है जिसकी ज़िन्दगी रिश्वत न देने और नकल कायदे से ही देने में निकली जाती है । वह "धरम की लडाई" लडता है, ऊबता नहीं है । परन्तु रंगनाथ का चरित्र अवश्य यहाँ से पलायन करने की मानसिकता में तब्दील होने लगता है । वह कुछ करना तो चाहता है परन्तु उसकी नियति की यही विडम्बना है कि परिस्थितियाँ ही उसके साथ प्रयोग करती है वह परिस्थितियों को ज़रा भी इधर उधर नहीं कर पाता है । पीढ़ियों के संघर्ष में वह रुप्पन और मास्टर खन्ना का पक्षधर अवश्य बनना चाहता है । परन्तु कुछ कर नहीं पाता है । उसे भी लगने लगता है "...... कीचड से बचो, यह जगह छोडो । यहाँ से पलायन करो, वहाँ जहाँ की रंगीन तस्वीरें तुमने "लुक" और लाइफ में खोज कर देखी हैं । जहाँ के फूलों के मुकुट गिटार और लडकियाँ तुम्हारी आत्मा को हमेशा नये अन्वेषणों के लिए ललकारती हैं..... जा कर वही छिप जाओ"[1] और अन्ततः रंगनाथ शहर को ही लौट आता है ।

---

1. राग दरबारी, श्रीलाल शुक्ल, पृ. 176.

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तर शती का जीवन और परिवेश यहाँ जब सामान्य नहीं रहा । जो कभी आह्लाद और उल्लास से पूरित रहती थी वे ग्रामीण स्थितियाँ भी इस असामान्यता से अछूती न रह पायी । अवसाद की अन्तर धारा गाँवों की ओर भी प्रवाहित हुई गाँव समाप्त होने लगे । गाँवों का समाप्त होना मानव में मानवीय संवदेना का समाप्त होना है इस कारण गाँवों की दशा संवेदनशील समकालीन कथाकार की चिन्ता के केन्द्र में है ।

स्त्री पुरुष संबंधों का दायरा

समकालीन कथा साहित्य के दौर में संबंधों की कहानियाँ एवं उपन्यास काफी संख्या में लिखे गये हैं । परन्तु खासियत यहाँ इस बात में है कि समकालीन कथाकारों ने भावात्मक चित्रण से, निरूपण से अपने को दूर रखा है और अपेक्षाकृत संबंधों की विसंगति, विडंबना, जटिलता, तनाव आदि की ओर अधिक ध्यान दिया है । "लज्जा संकोचशील और आत्मदान को समकालीन लेखक आत्मा की सिकुड़न मानता है ।"[1] कहानी में मनुष्य की वास्तविक स्थिति को देख कर उसे अंकित एवं चित्रित किया गया है । "एक तटस्थ टिप्पणीकार की निस्संगता के बावजूद सूक्ष्म इन्वाल्वमेन्ट इनमें मौजूद है ।"[2] समकालीन कथाकारों की इन रचनाओं को मात्र संबंधों की कहानियाँ या उपन्यास नहीं कहा जा सकता है । इनके साथ समकालीन व्यक्ति की मनोदशाएँ व्यवहार, दुविधाएँ, भय और संशय सभी जुड़े हुए हैं । इनमें ये सभी बातें ज्यों कि त्यों उभरती है । इसी बिन्दु पर नामवर सिंह का कथन "आज के संबंधों की अमानवीयता को भेदकर पहचानने की अद्भुत दृष्टि"[3]

---

1. सिलसिला, मधुरेश, पृ. 112.
2. वही, पृ. 125.
3. नामवर सिंह,

वाली बात सत्य हो जाती है । नारी और पुरुष की स्वतंत्रता की माँग नये और पुराने कथा साहित्य में मूल रूप से विद्यमान है । परन्तु वासना और शारीरिकता को भी समकालीन कहानीकार व उपन्यासकार खुलेपन के साथ रोमांस के विरोध में स्थापित करते हैं । इसी कारण "समकालीन कथा कल्पना प्रसूत सम्मोहनों से मुक्ति की कथा है ।"[1] जहाँ तक संबंधों में रूढी और जकड़न का प्रश्न है समकालीन कथा साहित्य संवेदना के स्तर पर काफी आगे बढ़ चुका है ।

जैसा कि ऊपर सूचित किया जा चुका है समकालीन कथाकारों ने संबंधों का विशेषकर स्त्री पुरुष संबंधों का चित्रण करते समय रूमानियत से दूर रहने की पूरी पूरी चेष्टा की है । रवीन्द्र कालिया की कहानी "तफरीह"[2] का भद्दी किसी युस्त जोडे को अपने पास से गुज़रते देखता है तो उसे अपनी नव विवाहिता किन्तु ऊँची साडी और फूली पेट वाली बीवी को लेकर गहरी वितृष्णा होने लगती है । शादी और रोमाँस वाली अवधारणा यहाँ निर्ममता से टूटती नज़र आती है । क्योंकि कहानी के केन्द्र पात्र "भद्दो" की सबसे बडी यातना अपनी पत्नी को लेकर तफरीह के लिये निकलना ही है । इस मानसिक यातना से जुडे छोटे-मोटे संघर्ष और अभाव भी इसमें और गहरा असर डालते हैं । इसी प्रकार, रवीन्द्र कालिया की कहानी "नौ साल छोटी पत्नी", "दाम्पत्य", आदि भी स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता और तनाव को बयान करतीं हैं ।

---

1. समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि, धनंजय, पृ. 58.
2. तफरीह- काला रजिस्टर, रवीन्द्र कालिया, पृ. 50.

मनुष्य के आन्तरिक विकास का संबंध सामाजिक परिवेश से निश्चित रूप से जुड़ा होता है । जहाँ मानवीय स्थितियाँ बदलती हैं वहीं मानवीय जीवन में भी तब्दीली आती है । आज का व्यक्ति नये जीवन दृष्टिकोण एवं आयामों की खोज करता है ।

ज्ञानरंजन की कहानी "हास्य रस"[1] विवाह जैसे स्वीकृत संबंधों के आगे प्रश्न चिह्न लगाती है और इस ओर संकेत करती है कि व्यक्तित्व में संबंध तभी सहायक होते है जबकि वे बोझ न बन जायें किन्तु ऐसा होता नहीं है । "हास्य रस" में संबंधों से दबाव का अनुभव है । उनसे छूटने की इच्छा भी है परन्तु पुनः उसी की गिरफ्त में आते जाना भी है । "महत्वपूर्ण स्थिति {विवाह} को हास्यपरक मनोदशा में इस प्रकार कहा गया है कि आज के अग्रगामी युवक की दशा हास्य परक लगती है, करूण भी । हास्यरस संबंधों के विघटन की मनोगतियों का पूर्ण आलेखन है ।

विवाह और पारिवारिक जीवन के बिखराव की अभिव्यक्ति महीप सिंह के उपन्यास "यह भी नहीं "[2] में हुई है । यहाँ पर अस्वीकारवादी दृष्टिकोण महानगरीय परिस्थितियों में पूर्ण भयावहता के साथ उभरा है । उपन्यास की केन्द्र पात्र शान्ता तथा उसके पति सोहन साथ रहते हुए भी उनमें पति पत्नी जैसा कोई संबंध नहीं है । दाम्पत्य संबंधों का पूरा मिथ यहाँ पर खण्डित हो चुका है । अन्य व्यक्तियों से शान्ता के शारीरिक

---

1. समकालीन कहानियाँ, विश्वंभरनाथ उपाध्याय व मंजुल उपाध्याय, पृ. 97.
2. यह भी नहीं, महीप सिंह, पृ. 60

संबंधों तक का होने पर भी सोहन यहाँ पर इन सभी के प्रति उदासीन है । उसे लगता है कि बोरावाली के मकान से होटल के कमरे तक की यात्रा में उसके जीवन के जो थोडे बहुत तन्तु थे वे भी टूट गये हैं । परन्तु कहीं भी न तो शान्ता के मन में न सोहन के मन में, इन संबंधों को लेकर कोई भावुकता नहीं है । न सोहन शान्ता के मामले में दखल देना चाहता है न शान्ता सोहन के । परन्तु दोनों इसके बावजूद भी असम्पृक्त होकर साथ रहना अवश्य चाहते हैं । इसी कारण दोनों तनाव और यातना से बुरी तरह घिरते जाते हैं । ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये तनाव किसी प्रकार के नैतिक मूल्य या नैतिक बोध से उत्प्रेरित नहीं है । नैतिक मूल्यों के खण्डित हो जाने से उत्पन्न भावुकता या आक्रोश भी नहीं है । शान्ता यहाँ पर बेबसी निराशा से बुरी तरह घिरती चली जाती है । वह प्रवंचना, असहायता, क्षोभ, करुणा जैसे असंख्य भावों के दबाव को एक साथ सहन करती है । इसी कारण मिस्टर राय से वह एक बार कहती है -

"मिस्टर राय आप अपने दर्द पर चुप्पी की काली चादर डाले रहते हैं । मैं हँसी की रंगीन चादर से उसे ढके रहती हूँ । लाश पर पडी चादर का रंग चाहे कुछ भी हो पर लाश तो लाश ही रहती है न ।"[1]

उपन्यास के आरंभ में ही हम देखते हैं कि शान्ता सीधी गाडी से न जाकर के लगातार बदलनेवाली गाडी से सफर करती है । इसी प्रकार जीवन में भी वह मात्र पति के सहारे नहीं रहती है लगातार वह अपने प्रेमियों को बदलती है । टुकडों में सफर का वह सिलसिला जीत खोसला,

---

1. यह भी नहीं, महीप सिंह, पृ. 109.

सुदर्शन मधु, सुदर्शन पंकज, मिस्टर राय और प्रीतम लाल से जुडता टूटता है । और अन्ततः किसी भी मंजिल पर नहीं पहुँच पाता ।

आधुनिक जीवन स्थितियों की एक बहुत बडी विद्रूपता यह है कि पति पत्नी के बीच संबंधों में एक दरकन टूटन और अलगाव सा आ गया है । दाम्पत्य की इन दूरियों और अलगाव को लेकर सशक्त कहानियाँ लिखी गयी हैं । मध्यवर्गीय स्वावलम्बी नारी के भटकाव एवं उसके समझौता कर लेने की मजबूरी निरूपमा सेवती की "तलफ्लाहट" कहानी में प्रस्तुत हुई है । निरूपमा सेवती की कहानी "तलफ्लाहट" में साविका मन ही मन टूट जाता दिखाई पडता है । वह अपने टूटन को छिपा रखती है - "पर यही तो मेरी जीत है कि मैं आधुनिक ढंग से बेफिक्र दिखूँ । मेरा कोई दुख किसी को पता नहीं चलना चाहिए और यह भी जीत है कि पति मुझे अपार शारीरिक सुख देने से न शरमानेवाली पत्नी माने । और किसी भी तरह घुटन में जीनेवाली कमजोर स्त्री हरगिज़ न दिखूँ ।"[1] आधुनिक नारी के मानसिक संघर्ष का चित्रण इस में हैं । रुकावट (मृदुला गर्ग) की रीता विवाहिता है । मदन उसका प्रेमी है । रीता मदन से पूछती है कि वह कितनी स्त्रियों से प्रेम रचा चुका है । तो उत्तर में वह कहता है -"कुल मिलाकर चार । सबसे पहली थी गीता शंकर..... काफी दिन मिलते रहे, साथ साथ काफी पीना, सिनेमा और सपाटा..... फिल्मी प्रेम प्रदर्शन.... फिर दोनों ही एक दूसरे से ऊब गये और धीरे धीरे मिलना जुलना बन्द हो गया । फिर भी वह.....वह .... छोटे छोटे कटे बाल थे उसके क्या नाम था.... याद नहीं आ रहा ।

---

1. तलफ्लाहट-आतंक बीज, निरूपमा सेवती, पृ. 69.

और फिर जब मैं नौकरी करता था तब....।[1] रीता को लगा था कि वह भी प्रेयसी से वेश्या मे बदलती जा रही है । उसे अपने स्नेही, सज्जन, संवेदनशील पति का ख्याल आता है । उसका पति उसकी हर इच्छा पूरी करने को तैयार रहता है । अपने पति के स्नेह की याद करते हुए भी रीता होटल के कमरे में मदन के साथ आ जाती है । इसी प्रकार कुसुम अंसल के चर्चित उपन्यास "उसकी पंचवटी"[2] की केन्द्र पात्र "साधवी" को यतीन की पत्नी बनकर रहने के नाटक की अपेक्षा विक्रम की रखैल बनकर रहना सत्य एवं नैतिक लगता है फिर भी वह कहती है -"पहले पत्नी बनी फिर परित्यक्ता, अब "कीप" रखैल । मेरी चाहत मुझे कहाँ तक ले आयी है । मैं क्यों चली इस राह पर । अब चली हूँ तो इस चुनौती को स्वीकारना होगा ।"[3]

आज के आदमी के लिये संबंधों की शाश्वतता का कोई अर्थ नहीं रह गया है । सम्बन्ध उसके लिये प्राथमिक निष्ठा नहीं हैं । यह उसके लिये एक सुविधा है या अस्थाई भाव या भीतर से कहीं भी जुडे न रहने के बावजूद परस्पर जुडे रहने की लाचारी । कथा और चरित्र की परंपरागत मान्यताओ से अलग हटकर कुछ प्रसंगों के सहारे मन:स्थितियों को सामने लानेवाला उपन्यास है प्रमोद सिन्हा का "उसका शहर"[4] । इसमें हम देखते हैं कि आमुल और लुपिका के संबंध में केवल सुविधा है - आमुल को लुपिका से केवल मानसिक रति मिलती है । मित्र और पत्नी के संबंधों में परस्पर

---

1. टुकडा टुकडा आदमी, मृदुला गर्ग -"रुकावट", पृ. 91.
2. उसकी पंचवटी, कुसुम अंसला, पृ. 52
3. वही, पृ. 92.
4. उसका शहर, प्रमोद सिन्हा, पृ. 61

साथ बने रहते हुए बेगानेपन का भाव है - दोनों दो समानान्तर रेखाओं की तरह जीते हैं । लुपिका और दशानन अपनी भिन्न-भिन्न रुचियों के कारण एक दूसरे से जुड नहीं पाते हैं - दाम्पत्य जीवन समर्पित व्यक्तित्व चाहता है और लुपिका अपनी निजता को खोना नहीं चाहती है । यह संबंधों का केवल ऊपरी द्वन्द्व नहीं । यह संबंधों में झाँक रहे आधुनिक आदमी की अस्तित्व स्थिति है जिसमें बीत जाने की संवेदना उसे कचोटती है । लुपिका सोचती है यह बीतना कितना भयानक है कहीं कुछ भी वापस नहीं आता । बीतते जाने का एहसास उस आत्महत्या की तरह है जिसमें आदमी यह अच्छी तरह जानता है कि यदि उसने ऐसा कुछ भी किया तो उसका अस्तित्व खतरे में पड जायेगा और यह खतरा अन्य खतरों की तरह टाला नहीं जा सकता बल्कि इससे उसके अस्तित्व के ही टल जाने की गुन्जाइश है ।

पीढ़ियों की टकराहट और समकालीन कथा

समकालीन कहानी या उपन्यास के संदर्भ में कहा जाये तो यहाँ इनकी मुख्य पहचान संभवत: बदलती हुई संवेदना ही है । जीवन के संदर्भ हर नये दिन के साथ बदल रहे हैं । साठोत्तर युग में जहाँ राजनैतिक और आर्थिक स्थितियाँ बदलीं हैं वहीं हम देखते हैं कि सामाजिक स्थितियों में भी गहरी तब्दीली आयी है । संयुक्त परिवार का विघटन तेज़ी के साथ शुरू हुआ और परंपरागत नैतिक आदर्श टूटते चले गये और पारिवारिक संबंधों में भी बदलाव आता गया । समकालीन कथा में इन बदलते मूल्यों और परिवर्तित विचार भूमियों का यथार्थ चित्रण मिलता है । पुराने रिश्ते अब गायब हो गये हैं और उनके स्थान पर एक बहुत बडा शून्य दीख पडने लगा है ।

समकालीन कथाकारों ने पीढ़ियों के बीच के तनाव एवं वैचारिक दृष्टिकोण के परिवर्तनों को गहराई से देखा है । सूर्यबाला की रचना "निर्वासित" में दोनों बेटे अपने माँ बाप को बाँट लेते हैं । पिता तो अन्त में यह भी कहते हैं कि -"अब जब दो बेटे है तो एक ही दोनों का खर्च क्यों उठाये, ठीक ही तो सोचा है दोनों ने । अभी यहाँ बेबी छोटी है तुम यहाँ रहोगी - फिर तुम वहाँ चली जाओगी छोटे के पास ..... मैं यहाँ ।"[1]

संदर्भों के बिखराव के संदर्भ में पिता और सन्तान का चित्र हमें निरूपमा सेवती की कहानी "विमोह" में मिलता है । इसमें माँ कान्ता और पिता रामनाथ ही विडम्बना है । कान्ता अपने बेटे के यहाँ अपने और पति के मेहमान बनकर रहने की बात को सोच भी नहीं सकती है वह कहती है -"वक्त का तो एक एक पल भारी हो जाता है इस बड़े शहर में वहाँ तो पास पड़ोस में कहीं भी घूम आओ । साथ ही सौ काम हाथ में करने को रहते हैं । रसोई में भी बहू कोई काम करने नहीं देती । इतना बुरा मान लेती है, कि डर लगता है वहाँ की किसी भी चीज़ को छूते हुए ।[2] मृणाल पाण्डे की "दोपहर में मौत" कहानी का रघु विदेश में अपनी पत्नी और बच्चों के साथ आराम से रहता है । वह अपने माँ बाप के लिए आधुनिक जीवन हेतु आवश्यक चीज़ें हिन्दुस्तान भेजता रहता है । विदेश में उसका अच्छा सा बंगला तो था ही । हिन्दुस्तान में एक फ्लैट बनवाने के लिए उसने पैसे भी दिये थे । दुर्भाग्यवश रघु की मृत्यु एक कार दुर्घटना में हो जाती है । रघु का दोस्त जनार्दन यों ही रघु से माता पिता से मिलता है । अपने पुत्र की मृत्यु होने के

---

1. निर्वासित- एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम, सूर्यबाला, पृ. 32.
2. आतंक बीज, निरूपमा सेवती - विमोह, पृ. 26.

पश्चात् उसकी सम्पत्ति का लालच पिता के मन में मौजूद है। "पितृदाय" का बाप अस्पताल में बीमार पड़ा है और उसकी सेवा करने को बड़ा लड़का उमेश ही अस्पताल में है । पिता तो उमेश को सदैव नफ़रत की नज़र से ही देखते थे । अन्तिम समय में उनकी सेवा के लिए उमेश ही अकेला रह जाता है । उमेश के मन का आक्रोश इन शब्दों में फूट निकलता है -"पहले ऐंठ से माँ को मारा । फिर लड़की की गृहस्थी चूस खाई । अब मुझे खा लो । मरते भी नहीं कि पिण्ड छूटे हमारा ।[1] दीप्ती खण्डेलवाल की "एक और कब्र" कहानी के गुप्तजी से उसका लड़का पूछता है -"पैदा करना आपकी जिम्मेदारी थी पैदा होना हमारी जिम्मेदारी थी क्या ।"[2] महरूनिसा परवेज़ की कहानी "टहनियों पर धूप" की जेतुन की माँ अपने जीवन में अकेली रह गयी । और अन्ततः पाती है कि उसके बच्चे भी उससे अलग होते जा रहें हैं ।

समकालीन कथाकार मूल्यगत संकट और जीवन यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में बदलते हुए रूपों को पहचानते हैं । इसी कारण समकालीन कथा साहित्य में संबंधों में व्याप्त तनाव विघटन और जटिलता का सूक्ष्म एवं आन्तरिक स्तरों पर एहसास है । यहाँ हम देखते हैं कि विघटित और तनावभरे संबंधों का एक छोर आधुनिक व्यक्ति की चेतना से जुड़ता है । ज्ञानरंजन की कहानी शेष होते हुए में संबंधों के बदलाव और तनाव को विघटित स्थितियों के संदर्भ में इस ढंग से व्यक्त किया गया है कि मनुष्य की वर्तमान स्थिति के प्रति भरपूर संकेत प्राप्त होने लगता है -"माँ गुमसुम रहती है और

---

1. एक नीच ट्रैजडी, मृणाल पाण्डे, पितृदाय, पृ. 72.
2. एक और कब्र, धूप के अहसास, दीप्ती खण्डेलवाल, पृ. 55.

पिता चिड़चिड़े । पिता से चीनू तक सब अज्ञात परिणाम वाले भविष्य के लिए वर्तमान स्थितियाँ झेल रहे हैं ।"[1] ये बदली हुई स्थितियाँ है, जहाँ परंपरागत संबंधों का कोई अर्थ नहीं रह गया । यहाँ तक कि ये स्थितियाँ पारिवारिक संस्था को कायम रखनेवाले जातीय अवशेषों को चुनौती देती प्रतीत होती हैं । संबंधों की सतह पर बुनी हुई स्थितियाँ यहाँ गहरे अभिप्रायों से जुड़ती चली जाती हैं ।

संबंधों में दीख पड़नेवाली यह बदली हुई दृष्टि महीप सिंह की कहानी "कील" में भी दिखाई पड़ती है । इसमें बदले हुए संबंधों और उन संबंधों में झाँक रहे व्यक्ति के स्वभाव और व्यवहार को देखा जा सकता है । यहाँ पर मोना के चरित्र की जटिलता का कारण उसके "डैडी" है जो उससे कहते रहतें हैं कि वह असाधारण है । डैडी उसे असाधारणता का खोल इसलिए ओढ़ाते है कि वह किसी लड़के को पसन्द करने की मनःस्थिति में न आ सके । उनके ऐसा चाहने के पीछे एक जटिल चरित्र है । लेकिन मोना इस ग्रंथि से मुक्त होकर जीना चाहती है । और इसकी गिरफ्त से वह तब छूटती है जब उसे एहसास होता है कि उसके व्यक्तित्व में कोई खास बात नहीं है । जटिल एवं तनावपूर्ण संबंधों को देखने की यह एक सहज दृष्टि है जो इस कहानी की रचनाशीलता में एक अन्तरंग तत्व के रूप में अवस्थित है ।

---

1. शेष होते हुए - मेरी प्रिय कहानियाँ, ज्ञानरंजन, पृ. 23.
2. कील - मेरी प्रिय कहानियाँ, महीप सिंह, पृ. 49.

संबंधों में झाँक रहे आधुनिक व्यक्ति के स्वभाव और व्यवहार को हम रमेश बख्शी की कहानी "पिता दर पिता"[1] में देख सकते हैं । यहाँ संबंधों के रोमैन्टिक संस्कार नहीं वरन पीढ़ियों के बीच के अन्तर एवं संघर्ष को उभारती है । यहाँ पर पिता एवं पुत्र के संबंधों को नहीं वरन् असंबंधों को और पीढ़ी दर पीढ़ी रूपान्तरित होते चेहरों तथा रूपों का रचनात्मक स्तर पर बोध कराया गया है । इस कहानी में संबंधों की अभिव्यक्ति बौद्धिक या एकेडेमिक स्तर पर न हो कर संवेदनात्मक स्तर पर है । उत्तरोत्तर एक जीवन पद्धति में अपने आपको विलीन करने वाली युवा पीढ़ी की अराजक स्थिति इसमें उभरी है ।

ज्ञानरंजन की कहानी "पिता"[2] में हम देखते हैं कि पिता पाँचवें दशक के कथा साहित्य में मौजूद माता पिता जैसे वापसी के पिता या चीफ की दावत की माता से बिलकुल भिन्न है । यहाँ पर भावुकता या रूमानी संसक्ति नहीं है । यहाँ हम देखते हैं कि पिता और पुत्र दोनों ही दो अस्मिताएँ हैं जिनकी टकराहट कहानी में मौजूद है । पुत्र को पिता एक भीम काय दरवाज़े सा प्रतीत होता है जिससे टकराकर वह निहायत दयनीय होता जा रहा है । "पुरानी पीढ़ी से विचारों के न मिलने और उसकी नासमझी से नई पीढ़ी के कुछ होना व्यंग्य कराना एक सच्चाई है । सारी सुख सुविधाओं के बीच वे इतने आत्मकेन्द्रित है कि दूसरों से मिल पाने में असहाय हैं ।

---

1. पिता दर पिता, रमेश बख्शी, पृ. 19
2. प्रतिनिधि कहानियाँ, ज्ञानरंजन, पृ. 14.

गंगा प्रसाद विमल की कहानी "शीर्षक हीन"[1] में पिता और पुत्र के संबंध पारम्परिक पिता एवं पुत्र के संबंधों से बिलकुल ही भिन्न है । यहाँ पर पिता अपेक्षाकृत सुन्दर एवं चुस्त लड़की को पुत्र के कमरे में भेजता है और पुत्र वहाँ पर न केवल अपने पिता के सौंदर्यबोध से प्रभावित होता है बल्कि अपनी तलाक शुदा महिला बॉस को पिता को भेंट चढाने की बात भी सोचता है ।

"यात्रा"[2] भी यहाँ पर उल्लेखनीय है जहाँ पर पिता की मृत्यु पर व्यक्ति वास्तविक कारण बताने पर शर्म महसूस करता है और बहन की शादी का बहाना बताता है । रिश्तों को नया संदर्भ देने की कोशिश वह करता है । और अन्त में स्थितियों में आयी तब्दीली पर खुश होता है -"मैं समझता हूँ अब कहीं भी लोग फालतू भावुक नहीं है ।"[3]

भरपूर जीवन जीने की चाहत रखनेवाले एक व्यक्ति का व्यक्तिगत एवं पारिवारिक संबंध तथा उनका उतार चढाव देवराज के उपन्यास "दूसरा सूत्र"[4] में अभिव्यक्त हुआ है । इसका केन्द्र पात्र जोकि एक अच्छी आयवाला वकील है और साथ ही बौद्धिक दृष्टि से प्रबुद्ध भी है । वह अपनी पहली पत्नी की मृत्युपर एक पढी लिखी समझदार एवं संवेदनशील स्त्री से

---

1. शीर्षकहीन, शीर्षकहीन, गंगाप्रसाद विमल, पृ. 51.
2. यात्रा, ज्ञानरंजन, पृ. 53
3. वही
4. दूसरा सूत्र, देवराज, पृ. 63

विवाह कर लेता है । परन्तु सामाजिक रूढ़ियों एवं मध्यवर्गीय समाज की मानसिकता उनके संबंधों में संकट पैदा करती है । पुत्र एवं विमाता अर्चना के संबंध जहाँ इस पात्र को दुविधाग्रस्त करतें है । अर्चना की मृत्यु पर केन्द्रपात्र के अकेलेपन के साथ ऊसड व्यवहार का भी परिचय यहाँ पर दिया गया है । यहाँ इस पात्र में एक वितृष्णा ही पैदा होती है । इसके पश्चात् वह दूसरे शहर में जाकर प्रतिमा नामक एक आधुनिक संवेदनशील युवती से सम्पर्क स्थापित करता है । यहाँ पर हम देखतें है कि पारिवारिक संबंधों को बनाये रखते हुए, उसमें संतुलन को कायम रखते हुए व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन जीने के अधिकार पर जिस प्रकार बल दिया गया है वह पुरानी धारणा से कदाचित् भिन्न ही है, जिसमें पिता अपने परिवार के लिए अपना निजी जीवन होम कर देता है ।

संबंधों का आर्थिक दायरा

पारंपरित रूप से चलती आ रही संबंधों एवं परिवार संबंधी अवधारणा को आर्थिक प्रक्रिया ने आज बहुत अधिक प्रभावित किया है । आर्थिक शक्ति के ह्रास में पारिवारिक संबंध बिखरने लगे, आर्थिक रूप से उपार्जन ही संबंधों की आधार शिला बनती जा रही है । और भौतिकता वादी मूल्य दृष्टि के कारण व्यक्ति भी आत्मकेन्द्रित होते चले गये । आज सारे राग तत्वों के ऊपर अर्थ हावी दीख पडता है ।

यहाँ पर मूल्य विघटन अर्थ के स्तर पर भी दिखाई देता है । अर्थ वास्तव में जीवन के हर संबंधों में मायने रखता है । मिथिलेश

की कहानी "सावित्री दीदी"[1] की सावित्री दीदी के प्रति सबका व्यवहार इतना असहनीय है कि स्वयं उसके माता पिता उसे आत्महत्या के लिये विवश करतें हैं । इसके पीछे अर्थ ही है जो सावित्री दीदी की मृत्यु पर माता पिता को राहत देता है ।

देवेश कुमार के उपन्यास भ्रमभंग में हम देखते हैं कि संबंधों के बीच पलने, पकने और टीसनेवाली दरारों के बीच, छत के नीचे टूटती चटकती दीवारों और उफनती धाराओं में बहनेवाले किनारों से बरदाश्त की अन्तिम सीमा तक चिपका रहता है । परन्तु वह भी अन्ततः सभी से अलग हो जाता है । अपनी छोटी एकमात्र बहन अपने छोटे भाइयों से अपनी माँ से भी व्यक्ति अपने पारिवारिक रिश्तों के प्रति सदैव कमजोर होता है किन्तु यह कमज़ोरी जब आत्मघाती है तो चन्दन जैसा सहनशील व्यक्ति भी उस निष्ठुर आतंक से आद्यन्त अन्त तक जीता है ।

चन्दन का देहरादून प्रवास, अपना घर नजीबाबाद की स्मृतियाँ, माँ बाप भाई बहन, बन्धु बान्धव, निम्न मध्य वर्गीय परिवार के कडवे अनुताप तनाव, पढाई के बाद बेकारी, पैसे के अभाव में तकलीफें एवं जिम्मेदारियाँ, बम्बई के एक कालेज में नियुक्ति और फिर राजकोट कालेज में स्थानान्तरण, अपनी सीनियर सुमन से आत्मीयता, संबंध विच्छेद, बम्बई वापसी, शुभी से विवाह, शुभी का बंबई आना, उसकी बडी बहन शान्ती की मौत, आभा और भारती की पैदाईश, तीसरे बच्चे का गर्भपात, छोटे

---

1. सावित्री दीदी, मिथिलेश, पृ. 130.

भाई की निरंकुशता और आवारागर्दी, माँ का प्रतिकूल व्यवहार, छोटी बहन चम्पा की आज़ादी, अपने ही घर में चन्दन का अपमान, सभी मिलकर चन्दन को छीलते जाते हैं । अन्त में चन्दन को लगने लगता है कि संबंधों के स्थान पर असहाय और अनावश्यक और अन्तहीन पीड़ा है जिसे पालते रहना केवल आत्मप्रवंचना है । परिवार की सारी अन्तरंगता यहाँ पर नष्ट हो जाती है । तब चन्दन को लगने लगता है -

"सारा घर जैसे बदबू आ रहा है । आदमी ही सबसे ज़्यादा बदबू छोड़ता है । इस बदबू में, इन गन्दे दिमागों के बीच में नहीं रह सकूँगा । माँ और बहन के रिश्ते, कैसे रिश्ते, कैसा खून, कैसा प्यार ? ये तो गैंग्रीन है । जिन्दा रहना है तो इन्हें शरीर से काटकर फेंकना होगा..... नहीं तो तुम नहीं रहोगे ।"[1]

संपूर्ण उपन्यास में यही दीख पड़ता है कि सारे संबंध अर्थ से ही तय होते हैं । बीच में जब कभी आर्थिक असुरक्षा और अभाव होते हैं वहीं संबंध रगड़ खाते हैं और नासूर पकने लगता है और मवाद बन जाता है । चन्दन के लिए यहाँ पर सारे रिश्ते खोए सिक्के बन जाते हैं ।

अर्थ निर्वाह के लिए चन्दन अपने को सारे प्रयत्नों के बावजूद भी लाचार एवं विवश पाता है । बार बार उसे अपरिमित खर्च के झटके महसूस होते हैं । बंबई के एक प्रतिष्ठित कालेज में व्याख्याता होना या लेखक होना

---

1. भ्रमभंग, देवेश ठाकुर, पृ. 106.

सुनने में चाहे जितना अच्छा लगे पर चन्दन के रूप में इस पर के भी खोखलेपन और प्रतिष्ठा पर ईमानदार टिप्पणी हम पाते हैं । मध्यवर्गीय परिवार के एक बुद्धिजीवी के जीवन की कटुता ही यहाँ पर झलकती है ।

जीवन के संघातों से पीड़ित व्यक्ति से पीड़ित व्यक्ति के लिए अर्थ की महत्ता इतनी बढ़ गयी कि वह आर्थिक शक्ति के समक्ष स्वयं को बौना महसूस करने लगा । और आज के जीवन में अर्थतंत्र को विस्मरित कर देना नामुमकिन सा हो गया ।

जीतेन्द्र भाटिया की कहानी "साजिश" के पात्र "मैं" और "वह" रचनाधर्मिता और व्यावसायिकता के द्वन्द्व को झेलते हैं और रचना धर्मिता अन्ततः व्यावसायिकता के तले दब जाती है । इसे यहाँ पर नाटकीय विधान द्वारा कहानी में स्पष्ट दिखाया गया है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन जीवन दिन पर दिन जटिलतर होता चला जा रहा है । इस जटिल स्थिति में अर्थ और पद इतने प्रबल हो गये है कि उसके समक्ष सारे संबंध शिथिल होने लगे है । अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किसी भी मूल्य की तिलांजली दी जा सकती है । इसी विकराल स्थिति का समकालीन कथा पर्दाफाश करती है ।

समग्र रूप से देखने पर हम पाते हैं कि समकालीन कथा के समक्ष सामाजिक एवं राजनैतिक गतिविधियाँ रही हैं । इन गतिविधियों को स्वेच्छा से या प्रभाव वश ग्रहण करने का कार्य भी कथाकारों ने किया है । यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि कथा साहित्य का सीधा सरोकार यहाँ पर जीवन के विस्तार से दीख पड़ता है । यहाँ पर जीवन केवल विस्तार नहीं पा रहा है बल्कि वह गहराता भी रहा है । जहाँ-जहाँ कथा-साहित्य ने इससे भिन्न जीवन के तौर तरीकों को अपनाने का कार्य किया है वहाँ रचनात्मक ऊर्जा का शिखर परिचय न हो सका है । किन्तु समकालीन कथा साहित्य में जीवन की विपुलता और विविधता हो तो ही हमें मिलती है । इसी कारण यहाँ उसका बहुआयामी संदर्भ भी उभरा है ।

तीसरा अध्याय

समकालीन सामाजिक स्थितियों की अंतरंगता और गिरिराज किशो

कथा साहित्य

सन् पचास से पहले भी हिन्दी कथा साहित्य की लगभग तीन दशकों की एक सुदृढ़ परंपरा रही है । प्रत्येक दौर के कथा-साहित्य की परिदृश्यात्मक स्थिति में समय और समाज के महत्व को नकारा नहीं जा सकता । "हिन्दी कथा साहित्य का जिस रूप में विकास हुआ है उसे देखते हुए आनेवाले सौ वर्षों तक या उससे अधिक भी वे ही कथा रचनाएँ अपना स्थान बनाती रहेगी जिनका सीधा सरोकार अपने समाज, बदलते इनसान और ढहते और उभरते आर्थिक और सामाजिक मूल्य से होगा ।"[1] समकालीन कथा के संदर्भ में तो यह बात पिछले अध्याय में ही स्पष्ट की जा चुकी है कि समकालीनता मनुष्य की वास्तविक स्थिति के चित्रण से संबद्ध है ।

समकालीन कथा साहित्य में हम देखते हैं कि समकालीन कथा साहित्य का सामाजिक प्रसंग अत्यधिक सूक्ष्म है । हम जिस कठिन समय से होकर गुज़र रहे हैं उसका बाह्य स्वरूप उसका वास्तविक रूप नहीं है । इसमें असंख्य अयाचित स्थितियों का समावेश है । क्योंकि अमानवीयता इसका अंतरंग स्वभाव हो गया है ।

यह निर्विवाद सत्य है कि छठे दशक की मोहभंग की घड़ियों ने सामाजिक स्थितियों को सबसे अधिक प्रभावित किया । इन्हीं बदली हुई

---

1. सृजन और सम्प्रेषण, संपादक अज्ञेय, 1984, कथा साहित्य : स्वभाव, समाज और संबंध, गिरिराज किशोर, पृ. 114.

स्थितियों की अंतरंग पहचान देती हैं गिरिराज किशोर की रचनाएँ। सामन्ती ढाँचे के चरमराने की पीडा हो या मनुष्य की यातनाएँ। यथास्थितिवाद से अलग रहकर इनके आधारभूत कारणों की खोज गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में परिलक्षित होती है। खासियत यहाँ पर इस बात में है कि लेखक ने समाज को अमूर्त रूप में नहीं मूर्त रूप में पकडने की कोशिश की है। इसके लिए वे समाज में स्थित और उससे प्रभावित मनुष्य के साथ आत्मीयता या तादात्म्य स्थापित करते हुए नज़र आते हैं।

सामाजिक स्थितियों का अवलोकन करते समय एक द्रष्टा की हैसीयत बनाये रखते हुए भी गिरिराज किशोर पात्र के साथ सह-स्थिति का एहसास देते हैं। वे पात्र के साथ होते हैं तथा उनका यह होना बाहरी नहीं वरन् भीतरी है। इस प्रकार व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह के कार्यों में वे समाज की स्थितियों को पकडते हैं। यहाँ पर सूक्ष्म और अमूर्त काल उनके लेखन में आकर मूर्त होता हुआ नज़र आता है।

समकालीन सामाजिक स्थितियों पर लेखन के ज़रिये लेखक में आत्मशोध की प्रवृत्ति ही नज़र आती है। क्योंकि यहाँ लेखन के दौरान लेखक की उपस्थिति सामाजिक स्थितियों में जीनेवाले मनुष्य की भाँति ही होती है अत: यह आत्मशोध यहाँ लेखक का आत्मशोध न हो करके समकालीन सामाजिक स्थितियों में जीनेवाले मनुष्य का आत्मशोध हो जाता है। इस

प्रवृत्ति के माध्यम से विन्यसित स्थितियाँ और उसमें पलनेवाले मनुष्यों की अवस्था और अधिक स्पष्ट होती जाती है । सामाजिकता का मात्र बाह्य स्वरूप नहीं अपितु उसके मूल तक जाने की प्रवृत्ति ही दिखाई पड़ती है, और यह मूल तक जाने की प्रवृत्ति ही अंतरंगता है ।

सामाजिक संदर्भों को बुनियादी तौर पर पकड़ने में प्रयत्नरत गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में संवेदना का स्वरूप ही वास्तव में इस साहित्य की पहचान बनता है वे मानते हैं कि "वह (लेखक) परिस्थितियों का किसी धेय या साधन की तरह उपयोग नहीं करता बल्कि सामग्री की तरह उपयोग करता है ।"[1] और हम देखते हैं कि गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में परिस्थितियों को पूर्ण रूप से आत्मसात किया गया है । यहाँ साहित्य भौतिक अभिव्यक्ति के स्तर पर आकर वक्तव्य या विवरण नहीं बन जाता है ।

आस्थावादी लेखक गिरिराज किशोर अपने जीवन मूल्यों को समाज के संदर्भ में रखकर मूल्यांकित करते हैं । उनके अनुसार व्यक्ति के सच से समाज का सच सदैव बड़ा होता है और समाज के इस सच को ठोस यथार्थ में बदलना ही लेखक का सामाजिक सरोकार है । इसी के माध्यम से

---

1. संवाद सेतु, गिरिराज किशोर, पृ. ९५.

व्यक्ति के प्रति लेखक की पक्षधरता भी उभर कर सामने आती है । "इनसान और समाज के संदर्भों में अनुभवों का जितना विस्तृत पटल होगा उतनी ही ये विधाएँ (उपन्यास एवं कहानी) विकसित होंगी ।"[1] गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में मनुष्य मात्र के प्रति पक्षधरता ही परिलक्षित होती है । इसके साथ ही एक ईमानदार रचनाकार की भाँति वे रचना से भी प्रतिबद्ध हैं और उसी के माध्यम से वे समाज से भी अपने सरोकार व्यक्त करते हैं यही पर वे एक व्यक्ति के रूप में भी समाज से जुडे हुए दीख पडते हैं ।

दलित चेतना के आयाम

पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान दलित साहित्य के नाम से बहुत सी रचनाएँ प्रकाशित हुई । पत्र-पत्रिकाओं के कारण भी दलित साहित्य के नाम पर बहुत कुछ लिखा गया । दलित-कथा, दलित कविता, दलित रंगमंच, जैसी विविध साहित्यिक प्रवृत्तियाँ समुचित आकार भी प्राप्त करती रहीं । चर्चाएँ, परिसंवाद शैलियाँ भी आयोजित की जाती रहीं हैं । बडे बडे वार्षिक सम्मेलन भी आयोजित किये जाते रहें हैं । सभी उपक्रमों के द्वारा दलित साहित्य आन्दोलन को सशक्त बनाने की कोशिश लगातार की जाती रही है परन्तु सवाल यह है कि क्या इसमें तथा कथित दलित कहलानेवाले लोगों का जीवन, परिवेश और उनकी समस्याएँ समग्र रूप से उभर पायी है या नहीं । दलित साहित्य के नारे तो खूब उठे परन्तु "सात सौ वर्ष की परंपरावाले

---

1. सृजन और सम्प्रेषण, संपादक अज्ञेय, कथा साहित्य : स्वभाव, समाज और संबंध, गिरिराज किशोर, पृ. 114.

मराठी साहित्य ने भी उनको एक अर्थ में अस्पृश्य ही बनाये रखा । क्योंकि दया के कारण कितना ही प्रेम व्यक्त क्यों न किया गया हो उनकी व्यथा, वेदनाओं का आशा आकांक्षाओं का यथार्थ चित्रण हुआ ही नहीं । दलितों के जीवन के प्रति या तो अनुकम्पा व्यक्त की गयी है या तो तिरस्कार"।[1] इस संदर्भ में गिरिराज किशोर का लेखन सशक्त रूप से मुखर हुआ है । हरिजन समाज के जीवन परिवेश और साथ ही साथ तमाम आरक्षणों के बावजूद उनकी जीने की समस्याओं को गिरिराज किशोर ने अपने दो चर्चित उपन्यासों में उभारा है । गिरिराज किशोर मानते हैं कि "अभी तो दलित वर्ग की समस्याओं को लेकर जो परिवर्तन आया है उसके साथ भी लेखक पूरी तरह से जुड़ नहीं पाया है । भारतीय समाज में ये परिवर्तन बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि वह वर्ग जो अभी तक अपनी पहचान उपेक्षित वर्ग के रूप में रखता था उसे गरिमा मिली है और उसने साहित्य में भी अपनी पहचान बनायी है परन्तु यह अनुभव मुख्य धारा का अंग नहीं बना है । यह बहुत बड़ी चुनौती है जिसे लेखक नज़रन्दाज़ करके एक बहुत बड़े सत्य की उपेक्षा करेगा । रचनाशीलता की मुख्य धारा का रुझान वैसे भी इतनी जल्दी तय नहीं होता । उसमें समय लगता है क्योंकि जब तक समकालीन लेखन के बारे में सब कसौटियाँ इतनी संवेदनशील नहीं हो जातीं कि रडार की तरह आनेवाले परिवर्तनों को परिलक्षित कर सकें तब तक रुझान के बारे में स्पष्ट तस्वीर नहीं बनती ।"[2] इस प्रकार दलित की और हरिजन वर्ग की जीवन तथा परिवेश एवं उनकी तमाम स्थितियों को काफी हद तक मुख्य धारा का अंग बनाकर प्रस्तुत किया गया है उनके उपन्यास "यथा प्रस्तावित" एवं "परिशिष्ट" में ।

---

1. दलित साहित्य : प्रासंगिकता और संभावना, सदा कऱ्हाडे, पृ. 114
2. निमित्त, अंक दो, दिसम्बर 1995, गिरिराज किशोर, संपादक श्याम सुन्दर निगम ।

"यथा प्रस्तावित" में नौकरशाही की अमानवीयता और यान्त्रिकता तथा उसके परिणामों की चरम सीमा हम देखते हैं । "यथा प्रस्तावित" में जहाँ एक ओर हम देखते हैं कि अनुशासन के नाम पर जातिगत वैमनस्य के कारण और अनुसूचित जाति को मिलनेवाली सुविधाओं के प्रति ईर्ष्या और द्वेष के कारण सवर्ण सहयोगी और अफसर एक हरिजन कर्मचारी के साथ हृदयहीनता के साथ पेश आते हैं और नृशंसता की हद तक पहुँचते हैं । दूसरी ओर "यथा प्रस्तावित" इस तथ्य को केन्द्र में रखकर चलता है कि प्रशासन तन्त्र किस प्रकार एक साधारण मनुष्य के साथ अमानवीय ढंग से पेश आता है । उसकी इच्छाओं आकांक्षाओं के प्रति ही नहीं बल्कि आवश्यकताओं के प्रति भी उदासीन रह कर उसकी कर्तव्य निष्ठा और संवेदनशीलता को धीरे धीरे सोखता चला जाता है ।

हरिजन कर्मचारी बालेसर जो कि कुशल एवं कर्तव्यनिष्ठ भी है उसके प्रति सवर्णों से भरे प्रशासन का रवैय्या कुछ इस प्रकार का है कि उसे बड़े ही तर्कातीत ढंग से खतम कर दिया जाता है । सवर्ण सहयोगियों और अफसरों के दुर्व्यवहार एवं निरंतर जीवन में आ तो जानेवाली कठिनाइयों के कारण बालेसर मानसिक रूप से असन्तुलित हो जाता है । किन्तु उसकी विक्षिप्तता को भी प्रशासन या तो उसकी उद्दण्डता मानता है या काम के प्रति उदासीनता ।

प्रशासन का विचार है "वह ड्यूटी पर नहीं आता । कामचोर और उद्दण्ड है । चिठ्ठियाँ दो तो लेता नहीं । जाँच में उस पर

लगाये गये सभी आरोप सही पाये गये । उसे सफाई का मौका दिया गया पर वह तो अपने को लाट साहब समझता है...... उसे नौकरी की क्या ज़रूरत ? जिसे उसे नौकरी देने की ज़रूरत हो वह उसकी खुशामद करने जाये । आप नौकरी भी चाहे और नखरे भी करें । हम जो भी करेंगे अब न्याय और कानून को दृष्टि में रखकर ही करेंगे । वह तो समझता है कोई उसका क्या बिगाड़ सकता है ।...... उसे और उसके वर्ग के लोगों को तो सरकार ने कानून की हदों से बाहर कर दिया है....... अब कुछ नहीं हो सकता ।"[1]

बालेसर की घरवाली बताती है कि उसका दिमाग खराब हो चुका है और इस प्रकार उसके मानसिक सन्तुलन के बिगड़ने की वजह भी इस दफ्तर के लोगों का व्यवहार ही है । किन्तु इसके उत्तर में भी उससे यही कहा जाता है कि - "गुनाह के दण्ड से बचने के लिए सब इसी तरह बावले बन जाते हैं । दर असल दिमाग ज़रूरत से ज्यादा चलने के कारण ही अच्छे खासे लोग अपने दिमाग को खराब बता देते हैं । जिससे मुफ्त की रोटी मिलती रहे ।"[2]

बालेसर के विरुद्ध शिकायतों और आरोपों की एक श्रृंखला ही है जो कि उसकी फाइल में मौजूद है । इन शिकायतों के आधार पर उसके मामले में जाँच कमीशन रखी जाती है किन्तु वह उस जाँच कमीशन में

---

1. यथा प्रस्तावित, गिरिराज किशोर, पृ. 12

2. वही, पृ. 13.

हमेशा उपस्थित नहीं रहता है । इसे उसकी लापरवाही और उद्दण्डता समझा जाता है और उसकी सेवाएँ समाप्त करने के लिए कमीशन द्वारा सिफारिश कर दी जाती है । यही फाइल अब विभाग के निर्देशक के पास आयी हुई है हस्ताक्षर के लिए । किन्तु इसी समय बालेसर की पत्नी और बच्चे जोकि काफी हद तक सभ्य है उनके निर्देशक के पास पहुँच जाने एवं अनुरोध करने के कारण निर्देशक आँख मूँदकर उस फाइल पर हस्ताक्षर तो नहीं कर पाता है न ही अपनी सिफारिश वह स्वयम इतनी जल्दी लिख पाता है । वह बालेसर की पत्नी एवं बच्चों को आश्वासन देता है कि वास्तविक तथ्यों को जान कर ही कोई निर्णय लिया जायेगा ।

"यथा प्रस्तावित" की संपूर्ण कथा का आधार बालेसर नामक हरिजन कर्मचारी की पत्रावली ही है । पारिवारिक स्थिति उसमें होनेवाली असुविधाएँ एवं दुर्घटनाएँ इसी पत्रावली के माध्यम से हमारी सामने आती हैं । कुशल एवं कार्य के प्रति निष्ठा रखनेवाले कर्मचारी बालेसर की गलती केवल इतनी है कि वह उस वर्ग का सदस्य है जो कि सदियों से अस्पृश्य रहा है । इस वर्ग की परछायी से भी लोग घृणा करते रहें हैं । अपने छोटे से छोटे अधिकार के लिए भी बालेसर को संघर्ष करना पडता है । जिन कर्मचारियों को बालेसर के साथ दैनिक वेतन पर रखा जाता है उनकी सेवाएँ तो नियमित कर दी जाती हैं परन्तु बालेसर की सेवाएँ नियमित करने में सदैव उदासीनता बरती जाती है । कभी कभी अपवाद स्वरूप ही वर्मा साहब जैसे कुछ अधिकारियों के सहयोग से इतना तो हो जाता है कि मन्त्रालय तक पहुँचायी गयी अपनी शिकायतों के कारण जैसे तैसे उसकी अस्थाई नौकरी स्थाई हो गयी । बाद में सरकारी क्वार्टर भी उसे मिलता है । परन्तु बाद में वह इस सारी दुर्घटना का प्रेरक कारण बना क्योंकि वह जाति से अस्पृश्य था और उसके पडोसी

उस वर्ग के लोग थे जो उसे गलीज समझ कर उसे सताना अपना अधिकार सा मानते थे । एक गर्भपात और एक नवजात बच्चे की मृत्यु के बाद हुए तीसरे बच्चे को जो कि बाहर खटोले पर लेटा था निर्दयता के साथ वहाँ पर उलट दिया जाता है । शिकायत तथा प्रतिवाद की कोशिशों पर मकान में आग लगा दी जाती है । पड़ोसी जो कि सवर्ण है उनके बारे में बताती बालेसर की घरवाली कहती है -"हमारी सिगड़ी से निकला धुआ तक इन्हें अपवित्र लगता है । जैसे इनकी सिगड़ी बिना धुए के जलती हो । जात के पवित्र ऐसी ऐसी बकते है कि सुनी नहीं जाती ।"[1]

तथ्य जो है और जैसे है उनमें उसके बूढ़े माता पिता की मृत्यु पत्नी का गर्भपात और दूसरे नवजात बच्चे की मौत, भाई का रिश्ता न हो पाने से लेकर आगजनी की दुर्घटना और अन्ततः अपमान और सामाजिक अप्रतिष्ठा का सिलसिला बालेसर के मानसिक असन्तुलन और विक्षिप्तता में परिणति पाता है । भूतपूर्व निर्देशक बर्नी बालेसर का पक्ष लेते हुए समूचे तन्त्र का एक अमूर्त रूप प्रस्तुत करते हैं । परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि प्रशासन तन्त्र हमेशा अमूर्त ही रहता है । बर्नी साहब बालेसर को उसके काम एवं सन्तोषजनक व्यवहार के कारण स्थाई करने का आग्रह ही नहीं करते वरन् यह भी कहते हैं कि उन चिट्ठियों को जिनका कि प्रयोग एक इनसान की हत्या करने के लिये औजार की भाँति प्रयुक्त की जा रही है उन्हें फाइल से निकालकर फेंक देना चाहिए । अपनी संस्तुति में वे लिखते हैं कि दुर्भावना

---

1. यथा प्रस्तावित, गिरिराज किशोर, पृ. 37.

चाहे चिट्ठी के रूप में हो या व्यक्ति के रूप में, वह संक्रामक प्रभाव डालती है और विस्तृत होती चली जाती है - "मानवीय संबंधों के बृहद् ताल को जहाँ तक हो हम निर्मल रखें तभी हम अपने कोमल संवेगों और भावनाओं को सुरक्षित रख सकने में सफल हो सकेंगे । किसी भी बड़े से बड़े व्यक्तिगत स्वार्थ और हित से इनसान का महत्व कहीं अधिक होता है, चाहे वह जो भी हो और जैसा भी हो ।"[1] इसके बाद यह वर्तमान निर्देशक है जो कि बालेसर की पूरी फाईल का अध्ययन करने के पश्चात् उसकी पत्नी के आग्रह पर उसके घर भी जाता है । वहाँ पर गली के परिवेश और लोगों की टीका टिप्पणी सुनने के पश्चात् यह काम उसे स्वयं गलत लगने लगता है । बालेसर की पूरी फाईल के अध्ययन के दौरान जो तथ्य उद्घाटित होते हैं उनमें से कोई भी ऐसा नहीं जिसे बालेसर के खिलाफ प्रयुक्त किया जा सके, और उसकी सेवाओं को समाप्त करके उस फाईल को बन्द कर देने में सहायक हो सके । लेकिन यहाँ हम देखते हैं कि तथ्यों के सत्य को नहीं माना जाता बल्कि तथ्यों की ध्वनि को लिया जाता है । कागज़ पर जो संवैधानिक अधिकार बालेसर और उसके वर्ग को मिले हैं, बालेसर की गलती यह है कि वह उन्हें व्यवहार में उतारने की भी जिद करता है । इसी के परिणाम स्वरूप पूरे दफ्तर के लोग और पड़ोसी उससे भड़क जाते हैं । और तब उनका गुस्सा जितना उस वर्ग के प्रति है उतना ही बालेसर के प्रति है । इन तमाम संवैधानिक अधिकारों एवं आरक्षणों के कागज़ी तौर पर मौजूद होने के बाद भी हम देखते हैं कि प्रशासन तन्त्र का रुख बालेसर जैसा हरिजन कर्मचारी के प्रति कितनी निर्दयता से भरा है । प्रशासन का यह रूप कुछ पात्रों से ही साफ हो जाता है जो बर्नी के सारे सुझावों को नज़रन्दाज़ करते हुए बालेसर के विरुद्ध प्रयुक्त किये गये हैं । ऐसे

---

1. यथा प्रस्तावित, गिरिराज किशोर, पृ. 71.

ही एक पत्र के उत्तर में बालेसर की इस प्रार्थना के उत्तर में, कि उसके नवजात पुत्र का नाम भी इन्दराज में शामिल कर लिया जाये जिससे कि उसकी दवा और चिकित्सा की सुविधा मिल सके, उस पर अधिकारी की टिप्पणी के रूप में नवजात पुत्र के पिता का नाम पूछने का आदेश है । जहाँ एक ओर बालेसर तन्त्र की निर्मम अमानवीयता की व्याख्या में लग जाता है वही पर दूसरी ओर प्रशासन के किसी निर्णय पर पहुँचने से पहले ही नवजात बच्चे की मृत्यु हो जाती है और इन्दराज के बनने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता है । बालेसर की फाईल से उद्घाटित तथ्यों के प्रति पूरी तरह से उदासीन रहकर "मैं" वर्तमान निर्देशक भी यही सोचता है कि बालेसर को अपने पत्रों और दिये गये उत्तरों में ऐसा रवैय्या नहीं अपनाना चाहिए था । दूसरे अधिकारियों के स्थान पर यदि वह स्वयं भी होता तो शायद उसकी भी प्रतिक्रिया यही होती । बालेसर के प्रति और उसकी तमाम स्थितियों के प्रति अपनी सहानुभूति पर अंकुश लगाते हुए वह भी सोचता है - "जो अफसर अपने से नीचे उतरकर इस तरह लोगों के साथ अपने को जोड़ता है वह एक महान अफ़सर कभी नहीं हो सकता । व्यक्ति चाहे हो जाये ।"[1] जाँच आयोग की सिफारिशों की वास्तविकता को जानते हुए भी वह बालेसर की पत्रावली पर "यथा प्रस्तावित" लिखकर फाइल बन्द कर देते हैं । अफसर और व्यक्ति के बीच का यह बटवारा वास्तव में अपने दायित्व से बच निकलने का एक बहाना मात्र है । व्यक्ति को प्रशासन से अलग करके यहाँ पूरा तन्त्र को ही अमूर्त बना दिया जाता है । "दलित वर्ग के संबंध में पहले यह समझा जाता था कि इस वर्ग के लोगों के प्रति चाह जितनी उपेक्षा दिखायी जाये वे उसके आदि होते हैं । लेकिन बालेसर अति संवेदनशील व्यक्ति है जैसे कोई भी किसी भी वर्ग का व्यक्ति संवेदनशील हो सकता है उसके ऊपर दो ही प्रतिक्रियाएँ हो सकतीं है या तो वह उसका

---

1. यथा प्रस्तावित, गिरिराज किशोर, पृ. 115.

विरोध करे, अगर वह विरोध नहीं कर सकता या विरोध करने की क्षमता नहीं रख सकता तो स्वाभाविक है कि उसकी संवेदना कुण्ठा में बदल जाती है। कुण्ठा के अतिरेक ही कभी-कभी पागलपन में परिवर्तित हो जाता है।"[1] बालेसर पागल है किन्तु अपनी स्थिति से अनजान नहीं है। अपने ऊपर हुए अत्याचारों को वह बाद में गोली के रूप में महसूस करता है। "वह (बालेसर) हँसने लगा और हँसते हँसते ही बोलता गया, "आप लोग क्यों सुनेंगे गोली की आवाज़। जात के बड़े बात के बड़े......) वह तुक बन्दी मिलाता सा बोलता जा रहा था। "दिन रात गोली चल रही है। इन्हें उसकी ठूँ ठाँ सुनाई नहीं पड़ती सारा शरीर छलनी हो गया है।"[2] बालेसर अपनी स्थिति को यथावत् स्वीकार नहीं करता जबकि एक समझदार और मानसिक रूप से स्वतंत्र होने पर भी "मैं" स्थिति को समझते हुए भी परिस्थिति को ही स्वीकारता है और पत्रावली पर "यथा प्रस्तावित" लिख छोड़ता है।

शोषण के लिए जहाँ तन्त्र उत्तरदायी है, शोषक की दयनीय स्थिति उत्तरदायी है वहीं इस वर्ग के साथ कुछ हद तक सहानुभूति रखने और समझनेवाले तथा कथित ईमानदार लोगों की सुविधाप्रियता भी कम उत्तरदायी नहीं है।

बालेसर के पक्ष में एक ही अधिकारी ने लिखा था, किन्तु

---

1. सुरेश सर्वावर्ते से गिरिराज किशोर की बातचीत (यह देह किसकी है के परिशिष्ट में) पृ. 2.
2. यथा प्रस्तावित, गिरिराज किशोर, पृ. 10.

सशक्त लिखा था । उसके समर्थन से बालेसर को न्याय मिल सकता था किन्तु तथा कथित "मैं" भी सहानुभूति रखने के बावजूद वर्गगत घृणा से परिचालित लोगों के पक्ष में आकर उनके "यथा प्रस्तावित" को पुष्ट ही कर पाता है । यहाँ लेखक यह सोचने पर हमें बाध्य कर देता है कि इन तमाम आरक्षण के नियम और संवैधानिक अधिकार कागज़ों पर तो बन गये हैं । इस दलित वर्ग को ऊपर उठाने के परन्तु इन सभी को प्रयोग में लाने की बजाय इन पर विद्वेषपूर्ण रुख रखनेवाले तन्त्र के समक्ष इन समस्याओं के निदान में कहाँ तक विश्वास किया जाये ।

ऊँचे शिक्षा संस्थानों में अनुसूचित जाति छात्रों के प्रति ईर्ष्या द्वेष से जलते एवं बड़ी जाति के घमण्ड में चूर छात्रों के अमानुषिक व्यवहार का उनके नीच षड्यन्त्रों का तथा उसका विरोध करनेवाले और जीवन की आशा-निराशा के बीच झूलते तथा पलायन करते अनुसूचित जाति के छात्रों की वास्तविक स्थिति का उद्घाटन करनेवाला उपन्यास है "परिशिष्ट" । इसके लिये लेखक ने एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त शिक्षा संस्थान आई॰आई॰टी॰ का चुनाव किया है जहाँ लब्ध प्रतिष्ठित किन्तु भीरू या डरपोक किस्म के प्रोफेसर हैं । पूँजीपरस्त वर्ग के सामन्ती छात्र पढ़ते हैं, गरीब विद्यार्थियों के साथ ऐसे लोग ज़मीन दाराना व्यवहार ही करते हैं । इस बर्ताव के पीछे अतीत की परंपरा और संस्कार भी है । उनसे उबरने के संघर्षशील शक्तियों का यहाँ पर यथानुकूल चित्रण भी मिलता है ।

बारह अध्यायों में विभक्त इस उपन्यास के आरंभ में लेखक ने एक परिशिष्ट जोड़ा है जिसमें कि जाँच रिपोर्ट का खुलासा है और

व्यंग्योक्तियाँ हैं और फिर सुबरन चौधरी की अपराजेय विवशता से लदा हुआ कारुणिक पत्र जो कि कथा की त्रासदी को रूप देता है ।

परिशिष्ट में एक पीढ़ी है बावन राम और सुबरन चौधरी की और दूसरी पीढ़ी है अनुकूल और राम उजागर की । एक ओर खन्ना और उसके दोस्त है और दूसरी ओर नीलम्मा है । एक ओर बाबूराम वाल्मीकि है और सजीव । ये सारे पात्र अपनी तमाम स्थितियों समेत सामने आते हैं । और घटित होनेवाली घटनाएँ भी पूर्वापर त्रास को जीवन्त करती है ।

बावन राम और सुबरन चौधरी एक ही पीढ़ी के होने के बावजूद अलग अलग व्यक्तित्व रखते हैं यद्यपि उनके संस्कारों में हमें समानता दीख पड़ती है । सुबरन चौधरी गाँव के किसान है और सहनशील हरिजन हैं । उन्हें अपने बेटा राम उजागर पर गर्व और विश्वास है । उसके बूत्ते पर वे मानवीय समानतावाला सच्चा भविष्य भी देख पाते हैं । लेकिन राम उजागर को लेकर वे अपनी जातीय सहनशीलता के चरम पर पहुँच जाते हैं । नीच होने की एवं अभागा होने की कुण्ठा उनमें बढ़ जाती है । उन्हें लगता है कि "मेरे बेटे को बड़े घरों और ऊँची जात के लड़कों और मास्टरों ने मरने को मजबूर कर दिया ।"[1] उनको गाँधीजी का हरिजन जागरण भी त्रास बढ़ानेवाला प्रतीत होता है । नीलम्मा का आगमन उनके लिए राम उजागर

---

1. परिशिष्ट, गिरिराज किशोर, पृ. 91.

की दृष्टि से सुखद प्रतीत हुआ था, किन्तु अन्ततः उन्हें गहरा दुख ही हाथ लगता है । जाँच अधिकारी को पत्र लिखते समय उनका मर्म भिंद जाता है और खुल पड़ता है । वे कहते हैं -"अगर मैं और मेरी औरत श्रवण के अन्धे माँ-बाप हुए होते तो आप लोगों को यह श्राप दिये बिना न मानते कि आप भी हमारी योनि में आकर एक बार हमारी तरह की जिन्दगी जरूर भोगें ।"[1]

बावन राम आठवीं कक्षा पास है । सहन उनको भी बहुत कुछ करना पड़ता है । परन्तु अध्ययन ने उन्हें ऐतिहासिक व्याख्या एवं तर्कशील होने की शक्ति प्रदान की है । वे एक फैक्ट्री में काम करते हैं और सामाजिकता के कारण न केवल फैक्ट्री के कर्मचारियों के नेता है बल्कि वोट दिलाने के सामर्थ्य के नाते एक हरिजन नेता के पास उनकी पहुँच भी है । उनका एक बेटा है, अनुकूल । अनुकूल एक होनहार बालक है । बावन राम उसे उच्च शिक्षा दिलाकर साधारण हरिजनों की इस शोचनीय स्थिति से ऊपर उठाना चाहते हैं । उन्हें गाँधीजी और अम्बेदकर पर श्रद्धा है । गुलामी के दिनों में वे न केवल दिल्ली तक हो आये हैं बल्कि अनेक नेताओं के दर्शन भी कर चुके हैं । उधर जहाँ सुबरन चौधरी पूरी तरह से भावुक, विनम्र एवं सहनशील और संस्कार सीमित व्यक्ति है, वहीं बावन राम में विश्वास है जिसके पीछे उनके आर्थिक आधार और राजनैतिक समझ है और उनकी सहनशीलता के पीछे उनकी आस्था की दृढ़ता और भविष्य के सपने हैं । बावन राम को अपने बेटे की उच्चशिक्षा के लिए सरकार की ओर से एक छूट मिल जाती है । वे अनुकूल के साथ दिल्ली पहुँच जाते हैं । ऊँची जातियों के अपमान उन दोनों को सहन करने पड़ते हैं ।

---

1. परिशिष्ट, गिरिराज किशोर, पृ. 119.

यहाँ तक कि नेताजी की पत्नी भी उन्हें अपमानित करती हैं । अन्त में वे अपमान के अन्तिम चरण में अनुकूल के लिए कार्य संपन्न करवा लेते हैं । बावन राम के संस्कार में संस्कार स्वरूप आवश्यकतानुसार विनम्रता के घोर रूप भी दिखाई पड़ता है । पहले तो अनुकूल के वे बना सँवार कर आई.आई.टी. भेजते हैं किन्तु धीरे धीरे पत्रों से जब संघर्ष एवं अपमान पूर्ण स्थितियों का उन्हें बोध होता है तब वे अनुकूल से मिलने जाते हैं । पुनः उन्हें अपमान का सामना करना पड़ता है । जो बावन राम, बाबूराम वाल्मीकि नामक छात्र के अनुकूल के साथ रहने पर एतराज करनेवाली अपनी पत्नी पर बरस पड़ते हैं । वही बावन राम खन्ना को सिर्फ पहचानकर दरवाजा भर बन्द करते हैं । अवसर आने पर उनके भीतर दबे विद्रोह को भी हम फूटते देखते हैं । किन्तु बेटे की अवस्था देखकर उनकी आस्था और भविष्य के सपने भी चोट खाते नज़र आते हैं ।

"परिशिष्ट" की दूसरी पीढी राम उजागर अनुकूल और उसके साथियों की पीढी है । राम उजागर सुबरन चौधरी का बेटा है । आई.आई.टी. में वह चौथे वर्ष में है । अनुसूचित जाति के छात्र उसे आदर की दृष्टि से देखते हैं और उसे अपना सहारा भी मानते हैं । राम उजागर सभी का ख्याल रखता है और कहता भी है कि "बदतमीजी मत करो और आत्म सम्मान के मामले में झुको भी नहीं ।"[1] राम उजागर अच्छी अंग्रेज़ी बोलता है उसकी अंग्रेज़ी के सामने कोई टिक नहीं पाता । राम उजागर की धारणा है कि गाँधीजी ने ऊँची जातवालों को हमारे गुस्से से बचाने के लिए हरिजनोद्धार

---

1. परिशिष्ट, गिरिराज किशोर, पृ. 97.

की योजना शुरू की थी । राम उजागर दबंग है वह बिना कोटे के दाखिला ले कर आया है । ऊँच जाति के छात्रों को जो कि दादागिरि करते हैं उनके लिए राम उजागर एक सिर दर्द ही है । पूरी लडाई को वह बाहर की लडाई मानता है और उत्तेजना में वह हिंसा पर उतारू हो जाता है । नीलम्मा नामक वृद्ध और दक्षिण भारतीय छात्रा राम उजागर को अपराजेय मानती है ।

किन्तु राम उजागर के रहते हुए उसके सहपाठी मोहन की आत्महत्या वास्तव में आत्महत्या न होकर एक सामाजिक हत्या है । यह घटना राम उजागर को तहस नहस कर डालती है । वह जानता है कि मोहन मरा नहीं वरन् उसे ऊँची जात के छात्रों ने मरने पर मजबूर किया है । राम उजागर के शव को बाद में उतारने के पश्चात् वह बेहोश हो जाता है । बाद में उसे लगता है कि सारा संस्थान एक कुत्ते मार दास्ता है । अन्तत: असन्तुलित अवस्था में उसे एक वर्ष के लिए संस्थान से अवकाश लेना पडता है । किन्तु बाद में उसे वापस लेने में ऊँची जाति के छात्र एवं अध्यापक आपत्ति जाहिर करते हैं । इसके लिए अनुकूल, नीलम्मा, प्रोफेसर मलकानी जैसे लोग संघर्ष करते हैं, परन्तु अन्तत: राम उजागर भी आत्महत्या कर लेता है । वह स्वयं इसकी व्याख्या देता है -"मेरा जाना स्वेच्छा से है । गवेषणात्मक है । हालांकि उसका प्रतिफल दूसरों में बाँट पाना संभव नहीं होगा ।"[1] वास्तव में उसकी आत्महत्या यहाँ एक अनुष्ठान ही प्रतीत होती है ।

---

1. परिशिष्ट, गिरिराज किशोर, पृ. 130.

परिशिष्ट का केन्द्र पात्र अनुकूल है । अनुकूल बावनराम सुपरवाइज़र का पुत्र है । ऊँची शिक्षा के कारण बिरादरी में उसे महत्व प्राप्त है । आठवीं पास करते ही उसके लिए रिश्ते आने लगते हैं । वह समझदार है तर्क और विवेक से स्थितियों को सुलझाता है । अपने पिता की भाँति अपमान को सहन कर पाना उसके लिए संभव नहीं होता । आई.आई.टी के दाखिले की प्रक्रिया से भी वह घबराता है उसे लगता है कि देश में बातों की मार से दूसरों को चोट पहुँचाने का खेल खेला जाता है । उसे लगता है कि हमेशा बैठा हुआ आदमी नाराज़ होता है खड़ा हुआ आदमी चुपचाप सुनता रहता है ।

कोटे के अन्तर्गत अनुकूल को आई.आई.टी में प्रवेश प्राप्त होता है । पिता द्वारा सारी तैयारियाँ कर दी जातीं हैं । और वह आई.आई.टी.पहुँच जाता है । वहाँ पहुँचकर उसे दो बातें सूझती हैं - पहला यह कि आत्म सम्मान आदमी से भी बड़ा होता है । दूसरा यह कि वक्त देखकर चलना चाहिए । दूसरों की भावनाओं को चोट पहुँचाने से संघर्ष बढ़ सकता है ।

मोहन की आत्महत्या से वह भी काफी अधिक प्रभावित होता है । ऊँची जाति के छात्रों द्वारा फाँसी पर किये गये कमेन्टस सुनकर उसे अरुचि भी हो जाती है । अनुकूल के ऊँची जाति के छात्र व्यंग्य में

"नया गान्धी" कहते हैं । वह अपने लोगों के सम्मान और दायित्व के प्रति जागरूक है । वह इस बात को आवश्यक नहीं समझता कि राम उजागर हमेशा उन सभी की उँगली पकडकर चलता रहे । वह बाबूराम वाल्मीकि से कहता भी है -"अगर यहाँ नहीं रह पायेंगे तो कहीं भी रहना असंभव होगा । हम आगे आनेवाले चैलेन्ज के योग्य भी बनना है और बरदाश्त करना भी सीखना है ।"[1] ऊँची जातवालों के साथ संघर्ष में वे उसके पैर की हड्डी तक तोड डालते हैं पर वह उनकी क्रूरता की जाँच करने के लिए डटा रहता है ।

अनुकूल राम उजागर को भी समझता है और बाबूराम वाल्मीकि के भय में भी वह पलायन देखता है । उसकी दृष्टि में होना सब कुछ नहीं होता है खोना भी .... होता है । राम उजागर की मृत्यु को लेकर आई जाँच रिपोर्ट को वह बिलकुल भी महत्त्व नहीं देता । क्योंकि वह लहू लुहान धरती को अब पुछा हुआ देखना चाहता है ।

खन्ना कमीशनर का बेटा है । चार छः लडके उसके साथ रहते हैं । कोई उसके होटों पर सिगरेट थमाता है कोई उसे जलाता है उसे सेनेट ने दो बार निकालना चाहा पर वह बच कर निकल आया । डीन उसकी कार में घूमते हैं । उनकी नज़र में खन्ना एस.सी.स्टूडेन्टस यूनिट खतम करने के लिए ही पैदा हुआ है । खन्ना से डेरेक्टर भी दबते हैं । अनुसूचितों के नेता की संभावना वह अनुकूल में पाता है और भडक उठता है । अनुकूल को

---

1. परिशिष्ट, गिरिराज किशोर, पृ. 112

वह भद्दे ढंग से सबक सिखाना चाहता है । अनुसूचितों को वह सेवा प्रवृत्त रहने देना चाहता है । ऊँची जात वाले उसे बास कहते हैं और वह अनुकूल जैसे किसी छात्र को मार कर ज़मीन में दबा देने तक का हौसला रखता है । वह बावन राम को भी धमकाता है कि ये लोग अगर रहना चाहते हैं तो रियाया बन कर रहें । वह घटनाएँ झूठ में बदलने की क्षमता रखता है और उसे बदल कर अपने पक्ष में अपवाह की तरह फैलाता है । अनुकूल पर हमला किया परन्तु अपवाह इस प्रकार फैलती है कि अनुकूल ने खन्ना की हत्या करनी चाही थी । वह अनुकूल के लिए आनेवाली चिट्ठियाँ सेन्सर करता है और धमकी भरी चिट्ठियाँ भिजवाता है । यहाँ पर हम देखते हैं कि प्रशासन और छात्र अनुसूचितों के प्रति आसानी से खिलाफ है । खन्ना हमेशा उन्हें पैत्रिक धन्धे की याद दिलाता है । वह जाँच रिपोर्ट के संबंध में अनुकूल के बोलने पर भी स्वार्थी होने का आरोप लगाता है ।

यहाँ राम उजागर मोहन की आत्महत्या को अपने लिए इस्तेमाल करता है । मोहन की आत्महत्या में उच्चवर्ग का हथियार अधिक है । क्योंकि उनके दाँव अधिक है इस कारण इसकी प्रतिशतता भी उच्चवर्ग में अधिक है ।

"राम उजागर" की आत्महत्या इस बात का उदाहरण है कि संघर्ष का अतिवाद भी इस रूप में प्रकट होता है । परन्तु "अनुकूल समगति से संघर्ष करता है और आगे भी संघर्ष करने का इरादा रखता है ।

यहाँ पर शोषण सामाजिक प्रकृति बन गया है, उसको समाप्त करने के लिए एक दीर्घगामी संघर्ष की आवश्यकता है और ऐसे संघर्ष के लिए विस्फोटक प्रवृत्ति की जगह विचारपूर्ण और प्रभावी संघर्ष की आवश्यकता है । "राम उजागर" और अनुकूल दोनों एक ही संघर्ष के दो पहलू हैं । ये गतिरोध की बजाय स्थिति को अधिक स्पष्ट करते हैं । भविष्य की मानसिकता बनाने में ये सहायक भी हो सकते हैं ।

गिरिराज किशोर के ये दोनों उपन्यास सामाजिक अनैतिकता को प्रक्षेपित करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं । प्रशासन तंत्र और उच्चशिक्षा संस्थान भले ही आधुनिक समाज के अंग हैं फिर भी शोषण का वही पुरानी रट उनकी लत भी हैं । वहाँ सामान्य रहे जानेवाले लोगों का कुछ नहीं चलता । उपन्यासकार ने अनुसूचित जाति के पात्रों को इस एक शोषण तंत्र में चरमराते दिखाया है । प्रगति की ओर बढ़ते हुए हमारे समाज के ये उमंग हमें अनेकानेक प्रश्न करने के लिए बाध्य करते हैं ।

मध्यवर्गीय एवं निम्नवर्गीय जीवन स्थितियाँ :-

भारत की आज़ादी के बाद मध्यवर्ग की एक स्वतंत्र वस्तु-निष्ठ वास्तविकता पुनर्गठित हुई । मध्यवर्ग को हम हिन्दी कथा साहित्य के केन्द्र में मान सकते हैं । उच्चवर्ग के समान उठने की इच्छा के बावजूद

आर्थिक खोखलापन उनकी ख्वाहिशों का गला लगाकर घोटता चलता है । दिखावटी मान सम्मान और बड़प्पन का बोध मध्यवर्ग को सदा ग्रसित किये रहता है आर्थिक अभाव, ऊँचे अरमान, बड़प्पन की मिथ्या भावना, मिथ्या प्रदर्शन इन सारे चक्रों में पिसते हुए मध्यवर्ग की अपनी समस्याएँ हैं ।"[1]

दिली एवं दिमागी तौर पर मध्यवर्ग उच्चवर्ग से बिलकुल पिछड़ा नहीं होता है । इस कारण उच्चवर्ग को स्तर की जिन्दगी न जी पाने एवं उनके बराबर न पहुँच पाने का गम और उसकी वजह से हमेशा बेचैनी और ना खुशी मध्यवर्ग में बरकरार रहती है । परन्तु इतना होते हुए भी वह कुछ कर पाने में असमर्थ रह जाता है । तमाम जिन्दगी जूझते रहने के बाद भी अन्ततः एक कुढ़न या संकुचित होती मानसिकता ही मध्यवर्ग की पूँजी रह जाती है ।

मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन परिवेश, उसकी स्थितियाँ एवं उसकी समस्याएँ तथा इन सभी से प्रभावित व्यक्ति की मानसिकता का उद्घाटन गिरिराज किशोर ने अपने कथा साहित्य में किया है । यहाँ पर व्यक्ति तथा उसकी स्थितियों का आँखों देखा हाल नहीं बल्कि कथा द्वारा व्यक्ति के आत्म विश्लेषण और उसके द्वारा स्थितियों को पहचाननेवाली दृष्टि ही दीख पड़ती है ।

---

1. हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, पृ. 34.

"समीकरण" कहानी का रायजादा की मानसिकता का उद्घाटन करती है। रायजादा उच्चस्तरीय संपर्कों के प्रति कुरूचि की सीमा तक हिसाबी है। रायजादा वह व्यक्ति है जो कि ऊँचे संपर्कों के संस्मरण चटखारे लेकर सुनाता है। किन्तु चन्द पैसों की खातिर रिक्शेवाले से किसी भी सीमा तक उतरकर झगडा कर सकता है। रायजादा अपनी पत्नी से कहता है कि -

"यह तो अच्छा हुआ मैं ने दो स्टेशन पहले ही फुस्ट क्लास बदल लिया। थर्ड से उतरता तो शर्म उठानी पडती।"[1]

"शीर्षकहीन" में क्लर्क अपने बचपन के मित्र जोकि अब डिप्टी कन्ट्रोलर है, से आत्मीयता बरतना तो दूर सहज व्यवहार तक नहीं कर पाता है। वह बचपन की दोस्ती की भावना की अपेक्षा अपने में मध्यवर्गीय मानसिकता को प्रबल पाता है। यहाँ पर अफ्सर और क्लर्क जीवन के मध्य एक इतनी गहरी खाई है जिसे शायद बचपन की दोस्ती का एहसास भी पाट नहीं पाता है - "नहीं यार तुम्हारी अफ्सरी लडाने की बात नहीं है। हम लोगों की क्लास ही ऐसी है। हर अफसर खुदा दिखाई देता है।"[2]

मध्यवर्ग की ज़िन्दगी किस प्रकार एक मुँह-फट एवं चुस्त इनसान को दबा और ठण्डा बना देती है। यह पूर्ण रूपेण इस कहानी में व्यक्त है।

---

1. रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 113.
2. वही, पृ. 12.

क्लर्क की पत्नी का स्वभाव इससे कहीं भिन्न ठहरता है । वह अफसर की बेटी है । इस कारण जहाँ वह अपने पति के दब्बू स्वभाव से नाखुश है वहीं अपने पति के मित्र डिप्टी कन्ट्रोलर के प्रति इस कारण आकृष्ट है क्योंकि उनके व्यवहार एवं रुचियों में अफसराना अन्दाज़ है । हर बात पर वह कहती है कि उसके पिता भी ऐसा ही कहते थे या करते थे । वह पति के मित्र का हाथ पकडकर कहती है -"आप नहीं जानते मैं यहाँ किस तरह रहती हूँ । कभी बाबू जी के पास चली जाती हूँ तो वहाँ से लौट कर यहाँ रहना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है । उनकी हर चीज़ याद आती है...... छूना तक । अब आप भी यहीं आ बसे है..... समझ में नहीं आता क्या करूँ । अन्तिम वाक्य उसने बहुत धीमे से कहा और डूब सी गयी ।"[1]

"सोमाली सब पर हावी है" मध्यवर्गीय जीवन के आर्थिक अभाव और स्वप्नों की टकराहट और उससे उत्पन्न खीज लाटरी के टिकटों की खरीद के रूप में प्रकट होती है । कहानी का पात्र रामराव ऊपर से लाटरी के परिणामों से निस्संग दीख पडने पर भी भीतर से आन्दोलित है । यहाँ पर मध्यवर्ग की सुपरिचित मानसिकता को सरलीकृत रूप में न रख कर जटिल रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

कुछ इसी प्रकार की मानसिकता को कार्यालयी संदर्भ में व्यक्त करती है "खरबूजे" नामक कहानी । "खरबूजे" कहानी के अरूण्डले साहब

---

1. रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 30.

जहाँ अपनी पदोन्नति की ऊर्ध्वमुखी यात्रा से सन्तुष्ट है वहीं वे कार्यालय को लेकर अजीब प्रकार के ऊहापोह में रहते हैं । इसी के कारण दफ्तर के कर्मचारियों के प्रति उनका रुख भी कड़ा हो जाता है । वहीं पर चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी पंचम जब तृतीय श्रेणी में पहुँचता है तो उसके द्वारा स्थिति हद तक पहुँचा दी जाती है -

"अस्पण्डले साहब कुर्सी पर गिर पड़े । पंचम पैन्ट के बटन बन्द करता हुआ बाहर निकला गया । दरवाज़े पर लोग इकट्ठा थे । उसे एक हीरो का वेलकम मिला ।"[1]

यहाँ हम देखते हैं कि खरबूजे के समान दफ्तर के कर्मचारी भी रंग बदलते हैं । चाहे क्लर्क पदोन्नति करके अफ़सर बन जाये या चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी पदोन्नति करके क्लर्क बन जाये, बात एक समान ही होती है ।

"क्लर्क" शीर्षक कहानी के मिस्टर सिन्हा भी एक दिन के लिए अफ़ीशियेट करने के प्रस्ताव मात्र से उत्तेजित हो जाते हैं रौब जमाने लगते हैं किन्तु अन्त में स्वयं को निस्सहाय पाते हैं । और फूट-फूटकर रो पड़ते हैं ।

"गाना बड़े गुलाम अलीखाँ का" में एक टेकनिकल असिस्टेंट के माध्यम से मध्यवर्ग के लोगों में हीनता की भावना और लगभग दीनता के

---

1. गाना बड़े गुलाम अलीखाँ का, गिरिराज किशोर, पृ. 39.

करीब पहुँचती नम्रता दीख पडती है । कहानी का केन्द्र पात्र मिस्टर राव अच्छी अंग्रेज़ी न बोल पाने के कारण अपने बास से अपमानित होता है । अंग्रेज़ी बोलनेवालों के प्रति उसके मन में अतिरिक्त श्रद्धा का भाव पैदा हो जाता है -

"मिस्टर राव के लिए प्रोफेसर विलसन के व्यक्तित्व का सबसे प्रबल पक्ष उनकी अंग्रेज़ी थी । प्रोफेसर की अंग्रेज़ी सुनते सुनते वह इस प्रकार भाव विभोर हो उठता जैसे शास्त्रीय संगीत का प्रेमी किसी बडे उस्ताद का गायन सुनकर हो जाता है ।"[1]

"गुनहगार" में मलूक के माध्यम से पब्लिक स्कूल में बच्चों के दाखिले की समस्या को उभारा गया है । गरीब परिवार का महत्वाकांक्षी और तेज बालक मलूक जो कि अत्यधिक संवेदनशीलता भी है इसी कारण अन्तत: मानसिक कुण्ठा और टूटन का शिकार बन जाता है । उच्च मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग के आपसी रिश्ते भी इस कहानी में उजागर होते हैं । हालांकि पूरी व्यवस्था इसके लिए गुनहगार है । परन्तु कहानी का "मैं" जो स्वयं उच्च मध्यवर्ग का है, इसके लिए स्वयं को गुनहगार महसूस करता हैं -

"दफ्तर जाने के लिये निकला तो मैं ने उसे हर रोज की तरह सजा सजाया दरवाज़े पर खडा पाया । उसकी दोनों आँखें सर्चलाइट की तरह मुझ पर पड रहीं थी । मुझे लगा दरवाज़े पर पहुँचते ही मेरा हाथ पकडकर पूछेगा, "अंकल अब मैं क्या करूँ ?"[2]

---

1. गाना बडे गुलाम अलीखाँ का, गिरिराज किशोर, पृ. ९१
2. वही, पृ. 36.

निम्न मध्यवर्ग की मानव स्थितियों को भी गिरिराज किशोर ने बहुत करीब से देखा है और उसे संवेदना के स्तर पर उभारने की कोशिश की है । निम्न मध्यवर्ग के मनुष्यों की समस्याएँ, अभाव जनित विवशताएँ, आदि को मनुष्यता के स्तर पर लाकर सामाजिकता से जोड़ना चाहा है । इन कहानियों में संवेदना अनुभव के साथ जुड़कर पात्रों और स्थितियों को सामयिक और अर्थपूर्ण बनाती है और पूरे खुरदुरेपन के साथ व्यक्त होती हैं ।

"पाँचवा पराठा" शीर्षक कहानी में घर में बरतन माँजनेवाली माँ और बेरोज़गार बाप के दोनों बच्चे बिट्टी और बिट्टू के माध्यम से निम्न मध्यवर्ग की अभावजन्य मानसिकता का चित्रण हुआ है । रोटी से जुड़ी हुई संवेदनाएँ यहाँ पर इतनी तल्ख और उग्र है कि अनजाने ही सही बिट्टी के हाथों उसके भाई को मौत नसीब हो जाती है -

"बता पराठा कहाँ गया ? वह पागलों की तरह चीखने लगी, बोल ..... बोल तू ने मेरा पराठा क्यों खाया ?" वह धीरे से बोला "भूख लगी थी दीदी" बिट्टी को और ज़ोर से गुस्सा आया । वह उसके ऊपर चढ बैठी और गर्दन पकडकर मारने लगी । बिट्टू को रोते रोते खासी आने लगी पर वह रुकी नहीं गर्दन पकडे रही । बापू आ रहे थे । उनके डण्डे की आवाज़ दूर से सुनायी दे रही थी । बिट्टू चुप था, वह उसे छोडकर उठ गयी । उठकर बिट्टू की तरफ देखा । बिट्टू की जीभ थोडी बाहर निकल आयी थी ।"[1]

---

1. गाना बड़े गुलाम अलीखाँ का, गिरिराज किशोर, पृ. 68.

"बंगलेवाले" की अमृति बंगलों में काम करने के लिए केवल इस कारण जाती है कि उसे सर्वेन्ट क्वाटर मिल सके और उसके बच्चों के अच्छा माहौल मिल सके । वह चाहती है कि समान स्तर के बच्चों के साथ रहकर उसके बच्चे गाली गलौच और गन्दी बातें न सीखें । परन्तु अमृति आत्म छलना और विडम्बना का ही शिकार हो जाती है । उसके बच्चों को बंगलेवालों से मात्र असहज माहौल ही मिल पाता है । इस कारण उनमें कुण्ठा पनपने लगती है । उपभोक्तावादी संस्कृति में जीता हुआ मनुष्य यहाँ पर स्वयं को खोता हुआ दीख पडता है ।

"सर्वेन्ट क्वाटरिये" में भी हम देखते है कि सर्वेन्ट क्वाटर में रहनेवाले बच्चों का बंगले में रहनेवाले बच्चों के साथ खेलना उठना बैठना खाना आदि "मैं" और उसकी पत्नी के लिये बहुत बडी समस्या है । दोनों ही बच्चे इस भेद भाव को नहीं समझते । बच्चे साथ बैठकर खाने की जिद करते हैं परन्तु इससे "मैं" तथा उसकी पत्नी के अन्दर की मसोस झुंझलाहट के रूप में प्रकट होती है । "खाना समस्या नहीं थी, उनके अन्दर पनपता समानता भाव समस्या था ।"[1] अन्य के कहने से कि "अगर हमारे पापा भी सर्वेन्ट क्वाटर में रहते तो क्या हमारा भी दाखिला स्कूल में न हुआ होता ?"[2] उसे चपत तक नसीब हो जाती है । यहाँ पर हम देखते हैं कि उच्च मध्यवर्ग का मिथ्याभिमान इस वाक्य को गाली की तरह महसूस करता है ।

---

1. यह देह किसीकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 130
2. वही, पृ. 135.

सुरक्षा की चिन्ता से वह मदरासी नारायण के साथ रहने लगती है । किन्तु

तजरीह देनेवाला बना देती है । यहीं पर विडम्बनाएँ, विसंगतियाँ और तनाव भी इनके साथ जुड जाते हैं । एक पति को छोड दूसरे के घर बैठ जाना, बेटा न जनने पर स्त्रियों के साथ किसी भी हद तक का अत्याचार किया जाना; आदि भारत के निम्न मध्यवर्ग में आम बात है "ईश्वर को यही मंजूर था" कहानी निम्न मध्यवर्गीय जीवन जीनेवाले एक व्यक्ति की विडम्बनापूर्ण स्थिति का चित्रण करती है । रामकरन द्वारा पूरा ध्यान रखने पर भी बेटा न जनने वाली उसकी पत्नी को सास और ननद के हाथों मौत तक पहुँचा दिया जाता है । व्यावसायिक प्रतिष्ठान के चपरासी नुमा कर्मचारी रामकरन की मानसिक अवस्था भी यहाँ पर पूर्ण रूप से व्यक्त होती है । वास्तव में "कोई भी किसी भी वर्ग का व्यक्ति संवेदनशील हो सकता है । उसके ऊपर दो ही प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं या तो वह उसका विरोध करे अगर वह विरोध नहीं करता तो या विरोध करने की क्षमता नहीं रखता तो स्वाभाविक है कि उसकी संवेदना कुण्ठा में बदल सकती है ।"[1] राम करन का विरोध भी हद तक पहुँच कर फूट पडता है -

राम करन ने जलती लकडी निकाली उसकी रोशनी में उसका चेहरा तमतमा उठा । हाथ मे लकडी लिये वह घर की ओर मुड गया । जब तक लोग उसे पकडे उसने वह जलती लकडी पास के छप्पर पर फेंक दी ।[2]

"रिश्ता" कहानी की मनकी को हम देखते हैं - वह निम्न मध्यवर्ग की स्त्री है । मनकी को लगातार अपनी एवं अपने पुत्र की

---

1. सुरेश सर्वार्वते से गिरिराज किशोर की बातचीत, "यह देह किसकी है" का परिशिष्ट, पृ. 2.
2. गाना गडे गुलाम अलीखाँ का, गिरिराज किशोर, पृ. 27.

बच्चों से कौन डरता है कहानी में मनुष्य की उस संवेदना को बचाने की कोशिश की गयी है जो कि उसे नैसर्गिक रूप से प्राप्त है । "कोई अमीर हो या गरीब अपने बच्चों के बारे में वह अतिरिक्त रूप से संवेदनशील होता है ।"[1] सर्वेन्ट क्वाटर के जिम्मी की पत्नी जो बंगले में काम करती है अपने अपाहिज बच्चे के रोने पर भी अगर चली जाती है तो डाँट खाती है और क्वाटर खाली करने की धमकी भी उसे मिलती है । बच्चे को जब काला कुत्ता काट लेता है तो भी मॉं के दौड आने को नखरा मान उन्हें घर से निकाल दिया जाता है -"अगर तुम्हें काम करना है तो करो वरना कहीं और अपना इन्तजाम करो । रोज़ रोज़ के ये नखरे नहीं चलेंगे । लडके को बिगाड दिया है । अब कुकुर कुकुर बकती हो । बच्चों को तो ऐसी चोटें रोज़ लगती रहतीं हैं ।

"वल्द रोज़ी" की रोजी जावानी के दिनों में ही एक बच्चे की माँ है और पति द्वारा परित्यक्ता भी है । अपनी तथा बेटे की सुरक्षा की चिन्ता से वह मदरासी नारायण के साथ रहने लगती है । किन्तु बेटे विकास को जब "मद्रासी" नाम के कारण नौकरी नहीं मिलती तो उसका कुण्ठित आक्रोश चरम सीमा पर पहुँच जाता है और वह चाकू लेकर नारायण पर चढ बैठता है । असुरक्षा की भावना के आतंक से बचने के लिए किया गया प्रयास निम्न मध्यवर्ग के पारिवारिक और सामाजिक संबंधों में अधिक विकृति पैदा करता है । निम्न मध्यवर्ग के अन्तरगत आनेवाले व्यक्तियों की विवशताएँ और अभाव उन्हें और भी अधिक रूप से ज़िन्दगी की ज़रूरतों को

---

1. यह देह किसकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 130.

तजरीह देनेवाला बना देती है । यहीं पर विडम्बनाएँ, विसंगतियाँ और तनाव भी इनके साथ जुड जाते हैं । एक पति को छोड दूसरे के घर बैठ जाना, बेटा न जनने पर स्त्रियों के साथ किसी भी हद तक का अत्याचार किया जाना; आदि भारत के निम्न मध्यवर्ग में आम बात है "ईश्वर को यही मंजूर था" कहानी निम्न मध्यवर्गीय जीवन जीनेवाले एक व्यक्ति की विडम्बनापूर्ण स्थिति का चित्रण करती है । रामकरन द्वारा पूरा ध्यान रखने पर भी बेटा न जनने वाली उसकी पत्नी को सास और ननद के हाथों मौत तक पहुँचा दिया जाता है । व्यावसायिक प्रतिष्ठान के चपरासी नुमा कर्मचारी रामकरन की मानसिक अवस्था भी यहाँ पर पूर्ण रूप से व्यक्त होती है । वास्तव में "कोई भी किसी भी वर्ग का व्यक्ति संवेदनशील हो सकता है । उसके ऊपर दो ही प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं या तो वह उसका विरोध करे अगर वह विरोध नहीं करता तो या विरोध करने की क्षमता नहीं रखता तो स्वाभाविक है कि उसकी संवेदना कुण्ठा में बदल सकती है ।"[1] राम करन का विरोध भी हद तक पहुँच कर फूट पडता है -

राम करन ने जलती लकडी निकाली उसकी रोशनी में उसका चेहरा तमतमा उठा । हाथ मे लकडी लिये वह घर की ओर मुड गया । जब तक लोग उसे पकडे उसने वह जलती लकडी पास के छप्पर पर फेंक दी ।[2]

"रिश्ता" कहानी की मनकी को हम देखते हैं - वह निम्न मध्यवर्ग की स्त्री है । मनकी को लगातार अपनी एवं अपने पुत्र की

---

1. सुरेश सर्वावर्ते से गिरिराज किशोर की बातचीत, "यह देह किसकी है" का परिशिष्ट, पृ. 2.
2. गाना गडे गुलाम अलीखाँ का, गिरिराज किशोर, पृ. 27.

आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा के प्रति चिन्तित है । वह अन्य पुरुषों से शारीरिक संबंध तक के लिए तैयार होती है तो वह शारीरिक सुख के लिये नहीं है बल्कि जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना ही वहाँ पर उसका लक्ष्य होता है । मनकी का पूरा संघर्ष अपने मानसिक रूप से अपंग बेटे को पालने के लिये हैं । मनकी यहाँ पर सेक्स का आनन्द नहीं लेती वरन उसे भी वह एक सिक्के की तरह प्रयुक्त करती है । किसी के घर बस जाने से उसके बेटे को कपड़ा मिल में नौकरी मिल जाने की और उसका ब्याह काज हो जाने की उसे आवश्यक सामाजिक प्रतिष्ठा एवं आर्थिक सुरक्षा मिल जाने की जब संभावना है तो मनकी का इस सिक्के का प्रयोग करना वास्तव में जीने के लिए या जीते जाने के लिए मार्ग का निर्माण करना है ।

उपन्यास दो की नायिका नीमा भी जीवन की आवश्यकताओं के कारण ही एक पति को छोड़कर दूसरे के घर बैठ जाती है और जीवन की आवश्यकताएँ ही है जो दूसरे पति की मृत्यु के बाद पुनः उसे मारने पीटने वाले शराबी पति के पास लौट आने को प्रेरित करती है । लेखक के अनुसार इस प्रकार एक पति को छोड़कर दूसरे के घर बैठ जाना निम्न वर्ग में तो सामान्य बात है वे कहते है -"निम्न वर्ग में यह आम बात है, पर उच्च वर्ग में ऐसा नहीं होता, मेरे यहाँ कि कई औरतों ने ऐसा किया निम्न जातियों में इसे उस तरह नहीं लिया जाता, जिस तरह हम लोग लेते हैं । इनसान की ज़रूरत का वे हमसे अधिक सम्मान करते हैं ।"[1]

---

1. अपने आसपास, गिरिराज किशोर, पृ. 32.

इन उपन्यासों एवं कहानियों में वस्तुपरक वैविध्य है । परन्तु विविधता के बावजूद कुल मिलाकर हमारे आसपास घटित होनेवाली घटनाओं के दस्तावेज़ ही यहाँ पर प्रस्तुत होते हैं । वैविध्य का गिरिराज किशोर के संदर्भ में एक और मतलब है । उनकी दृष्टि इतनी पैनी है कि सभी कुछ कथा में घटित होता है ।

अधिकांश चरित्र जीवन के यथार्थ से ही उभरते हैं । परन्तु इन चरित्रों में और उनकी जीवन स्थितियों में संवेदना के स्तर पर पुन: जीने का प्रयास यहाँ पर दीख पडता है । संवेदना अनुभव के साथ जुडकर जिस प्रकार यहाँ सामयिक एवं अर्थपूर्ण बनती नज़र आती है उसे देखते हुए निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि कल्पना वायवी नहीं है ।

गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में जहाँ निम्न वर्ग के पात्रों को प्रमुखता मिली है वहाँ बेकारी के चित्रण भी मिलता है । उक्त परिदृश्य को गिरिराज किशोर पूरी नँगई के साथ चित्रित करते हैं । भाषा और परिवेश को उसकी गहराई में अनुभव करने का कार्य कथाकार ने किया है जहाँ उन्होंने मध्यवर्गीय टुच्चेपन को विषय बनाकर वहाँ पात्रों की दुहरी मन:स्थिति का अंकन होता दिखा देता है । यह दरअसल आदर्श का चरित्र है । एक प्रकार से अपने जीवन परिवेश में डवाँडोल होते प्रतीत होते हैं । अपने से कुढते, चिढते, अपने से लडते और दूसरों पर अतिक्रमणक से ये पात्र वैविध्य का प्रमाण ही नहीं दे रहे हैं बल्कि ये हमारे समकालीन जीवन की बहुसंख्यक रेखांकित स्थितियों को ही उभार रहे हैं ।

अर्थ के दायरे और मानवीय संबंध

परंपरा से चली आ रही संबंधों की अवधारणा को आर्थिक प्रक्रियाओं ने बहुत अधिक प्रभावित किया है । आर्थिक शक्ति के ह्रास में पारिवारिक संबंध बिखरने लगे । अर्थोपार्जन ही संबंधों की आधारशिला बनता चला गया । भौतिकतावादी मूल्य दृष्टि के कारण व्यक्ति भी आत्म केन्द्रित होता चला गया । संबंधों के मूल में जो राग तत्व या उसके ऊपर अर्थ हावी दीख पडता है ।

जीवन के संघातों से पीड़ित व्यक्ति के लिए अर्थ की महत्ता इतनी बढ गयी है कि वह आर्थिक शक्ति के समक्ष स्वयं को बौना महसूस करने लगा । आज के जीवन में इसी कारण अर्थ तन्त्र को विस्मरित करना नामुमकिन सा हो गया है ।

आर्थिक दबाव से उत्पन्न तमाम हालातों की वजह से निजी और पारिवारिक रिश्तों में लगातार फरक आता गया है । माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी, सन्तान, मित्र आदि सभी संबंध स्वार्थपरता से अनछुए न रह सके । अर्थ के कारण संबंधों के बहते और बिखरते रूपाकारों को गिरिराज किशोर की कहानियाँ और उपन्यास बाखूबी उजागर करते हैं ।

आत्मीय संबंधों के बीच राग तत्व ही विद्यमान रहता है । किन्तु इस राग तत्व पर खींची हुई अर्थ की दीवार मनुष्यों को अजनबी

बनाती है । "वे नहीं आये" एक वृद्ध और बीमार पिता की कहानी है । दो छोटे बेटे पिता के साथ कस्बे में है जोकि बेरोज़गार हैं । पिता के आपरेशन के समय दोनों अपने लिये झूठ बोलकर दो की जगह चार की माँग करते हैं । बहन को इस बात का पता चल जाता है और एक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है -

"बहन कुछ नहीं बोली । पूछा भर,
"कितने रुपये चाहिये ?"
"चार हज़ार" बड़े ने छोटे से कहलाया
"अच्छा, चलो मैं चलती हूँ
वे दोनों ताव खा गये, " हम खा जायेंगे क्या ?"[1]

बड़ा भाई जो कि कमाऊ है, उसके आ जाने पर वही स्थितियों को सम्हालता है । तब भी छोटे भाई बीमारी पर खर्च का रोना रोते हैं । इधर माँ के पूछने पर कि "तुमने दो के चार हज़ार क्यों माँगे ?" वे कहते हैं - "माँग लिए तो क्या हो गया ? वाहवाही भी लूटना चाहे और पैसा मसल-मसल के खर्च करें....... दोनों बात नहीं चलती । हर वक्त उनके आगे ही हाथ फैलाए खड़े रहें ? दो चार सौ रुपये फालतू पड़े रहेंगे तो काम ही आवेंगे ।"[2]

तमाम औपचारिकताओं को निभाते हुए मनुष्य यहाँ अर्थ के संदर्भ में कितना नंगा और कमीना होने की स्थिति में आ जाता है यह

---

1. वल्दरोजी, गिरिराज किशोर, पृ. 108.
2. वही, पृ. 113.

इस कहानी में दीख पडते हैं । अर्थ के दायरे में आकर यहाँ न तो आत्मीयता या रागात्मकता का महत्व रह जाता है और न ही आत्म सम्मान या मूल्य जैसी बातों का । "ठडक" कहानी का श्रीकर रोटी की जुगाड में बाहर जाता है किन्तु वहाँ से निराशा ही उसके हाथ लगती है । श्रीकर की पत्नी इस बात को महसूस करती है कि -"रोटी का मिलना बाहर जाने या अन्दर आने पर निर्भर थोडे ही करता है बाहर जाकर भी आदमी रहेगा तो मुल्क ही में ।"[1] वास्तव में यह अवस्था आज पूरे मुल्क की है । वह महसूस करता है कि - "सबसे बडी चीज़ दुनियाँ में पैसा है पोजीशन है बाकी सब ढकोसला है । सब बकवास है । पैसा और रोब दाब इससे बढकर कोई चीज़ दुनियाँ में नहीं है । जिसके पास पैसा है उसके पास सब कुछ है ।"[2]

अर्थ का प्रभाव दाम्पत्य संबंधों पर भी कम नहीं पडा है । दाम्पत्य जीवन की पारंपरिक अवधारणा यहाँ पर टूटती बिखरती नज़र आती है । "निकरवाला साईस और फ्रॉक वाला घोडा में हम देखते हैं कि पत्नी रीता से कम कमानेवाला पति है । उसकी विडम्बना बेरोज़गार होने से बिलकुल भी कम नहीं है । पति यहाँ पर महज एक क्लर्क है और पत्नी डिप्टी सेक्रेट्री । पत्नी का विचार है कि -"आज व्यक्तिगत संबंधों का भी आर्थिक महत्व अधिक है । अगर मैं आपसे छः गुना कमाती हूँ तो छः गुना बडी हूँ ।...... ."[3]

---

1. हम प्यार कर लें, गिरिराज किशोर, पृ. 28.
2. वही, पृ. 41
3. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 47

पत्नी की उपेक्षा और उदासीनता पति को छेदती है । अपमान का बोध उसके अवचेतन में तल्खी देता है । यहाँ "मैं" और पत्नी रीता के बीच का "कॉम्प्लेक्स" एक रिक्तता का निर्माण करता है । तीसरे व्यक्ति नागरथ का आगमन वहाँ हो जाता है । यहाँ आर्थिक स्थिति पति और पत्नी के बीच के संबंधों की टूटन के लिये उत्तरदायी हो जाती है ।

"चिड़िया घर" में जहाँ आज की ज़िन्दगी के टुच्चेपन और खोखलेपन को एक नये परिवेश में प्रस्तुत किया गया है वही रोजगार दफ्तर की ही एक अफ़सर है, उनका व्यक्तित्व हमारे आज के समाज में एक नौकरी पेशा स्त्री की स्थिति के एक रूप का सूचक है । मिसेज रिजवी अच्छी खासी-कमाने वाली स्त्री है । परिस्थितियों के साथ समायोजन की प्रक्रिया ने उसे जहाँ एक ओर कुछ दुनियादार बनाया है वही कुछ हद तक पागलपन भी उसमें आ गया है । उच्च अधिकारी स्मिथ के साथ वह अपने संबंधों को अच्छे से अच्छा बनाये रखने को वह प्रयत्नशील रहती है । वह मिस्टर स्मिथ की कृपापात्र है और शायद हम-विस्तर भी । दूसरी ओर हम देखते हैं कि वह पुरुषों का एक हरम बनाने की बात करती है । अलग अलग कामों के लिए अलग अलग शौहर हों तो बड़ी सुविधा रहे -"एक होम देखे, दूसरा फॉरेन रिलेशन्स को देखरेख करे, तीसरा प्रोटोकाल का ख्याल रखे और चौथा एन्टरटेन करे ।"[1]

उसने एक अपढ़ देहाती लतीफ मियाँ से शादी कर ली है । लतीफ मियां की हालत घर में किसी नौकर से बेहतर नहीं है । अफसर के पद

---

1. चिड़ियाघर, गिरिराज किशोर, पृ.

पर आसीन अपनी कमाऊ पत्नी से ततीफ करता है साथ ही पत्नी के अफसर होने पर उसे कभी कुछ गर्व भी होता है और पति के रूप में वह दुखी भी होता है। सामाजिक संबंध, विशेषकर स्त्री पुरुष संबंध यहाँ पर निरर्थक प्रतीत होते हैं।

"कठपुतली" कहानी में हम देखते हैं कि दो सौ रुपये कमानेवाला पति और सात सौ रुपये कमानेवाली पत्नी है। पत्नी नौकरी तथा माँ की भूमिकाएँ एकसाथ निभाना चाहती है परन्तु निभा नहीं पाती है। आया ही वहाँ पर माँ और बच्चे के बीच का सेतु है। किन्तु जब आया बच्चे का दूध और बिस्तर आदि अपने बच्चे को देने लगती है रीता के क्रोध की सीमा एक दिन टूट जाती है। परन्तु वह चाहते हुए भी कुछ नहीं कर पाती। "आधी रात के समय जब बच्चा सो गया..... तो उसके दिमाग ने फिर वही सवाल उठा दिया - आखिर वह एक ज़िन्दगी को क्यों नहीं छाँट लेती ? उसके व्यक्तित्व की चादर के नीचे दबे हुए सब यत्न नग्न रूप से उभर कर नाचने लगे। नौकरी छोडने में असमर्थ वह दो सौ रुपये कमानेवाले पति के घर में सात सौ कमाने का साधन थी। उसके नौकरी छोडकर घर में चल आने पर सब कंगाल हो सकते थे।"[1] अंततः वह समझौता कर लेती है और यह समझौता उसकी मज़बूरी की हद होता है।

बहुचर्चित कहानी "रिश्ता" में भी माँ और पुत्र के संबंध को नये कोण से हम देखते हैं। यहाँ पर माँ मनकी और पुत्र गिरधारी के

---

1. नीम के फूल, गिरिराज किशोर, पृ. 71.

बीच संबंधों की औपचारिकता नहीं बल्कि बेटे के प्रति मातृत्व की भावना रखनेवाली मनकी अपने बेटे की आर्थिक सुरक्षा के प्रति ही अधिक चिन्तित है । वह अन्य व्यक्ति के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने को भी इसलिए तैयार होती है तो वह शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति, अपनी तथा गिरधारी की आर्थिक सुरक्षा ही उसका उद्देश्य है । वह गिरधारी से कहती भी है -"उसके घर बैठ जाने से तुझे कपडा मिल में नौकरी मिल जायेगी...... कल दोपहर उससे तयकर लूँगी ।"[1] यहाँ पर संबंधों की भावुकता नहीं । माता और पुत्र का वह पारस्परिक रूप भी नहीं । इन सभी से बढकर आर्थिक सुरक्षा को ही मनकी तरजीह देती है । "मनकी का पूरा आर्थिक संघर्ष है अपने मानसिक रूप से अपंग बेटे को पालने के लिए । वह सेक्स में आनन्द नहीं ले रही है बल्कि उसे सिक्के की तरह इस्तेमाल कर रही है ।"[2]

उच्च शिक्षा, अच्छी नौकरी और आर्थिक स्वतंत्रता के बावजूद संबंधों की दराहत को एवं योतना को भोगनेवाली स्त्री "तीसरी सत्ता" में मिलती है । तीसरी सत्ता सामान्य अर्थ में एक त्रिकोणात्मक उपन्यास है किन्तु यह परंपरागत त्रिकोणात्मक उपन्यासों से कदाचित् भिन्न भी है । यहाँ पर पति मदन और पत्नी रमा जो कि डाक्टर है के बीच में रामेसर की उपस्थिति को पारिवारिक संदर्भों के संदर्भ में देखा जा सकता है । अप्रत्यक्ष रूप से रामेसर का परिवार भी प्रभावित होता है । डाक्टर रमा के

---

1. रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 149.
2. सुरेश सर्वावर्त के साथ गिरिराज किशोर का साक्षात्कार, परिशिष्ट, यह देह किसकी है, पृ. 191.

अस्पताल में रामेसर चौथी श्रेणी का कर्मचारी है और इसके अलावा वह एक मोटर भी चलाता है । रमा के पुत्र बिन्नू और रामेसर के बीच मित्रता का कारण यह मोटर ही है । रामेसर की पत्नी का इलाज परिचय के कारण रमा कुछ अधिक सावधानी से करती है और रामेसर जहाँ इस उपकार से स्वयं को दबा अनुभव करता है वहीं रमा की डाक्टर के रूप में अपने कार्य के प्रति निष्ठा और चरित्र की अभिजात गरिमा गाँव से आये देहाती रामेसर को आकृष्ट भी करती है । रमा का पति शुरू में तो मोटर के कारण इस संबंध के संदर्भ में कुछ नहीं कहता था । परन्तु बाद में यह शंका में बदलने लगता है । वही मदन जो कि नौकरी के संदर्भ में बाहर जाते समय अपने परिवार को रामेसर के संरक्षण में छोड जाता था वह अब अप्रत्याशित रूप से घर पहुँचकर रमा और रामेसर के संबंधों की जासूसी करता है, बच्चों से जासूसी करवाता है । परिवार के लोगों चाचा, माँ और भाई की सहानुभूति भी मदन को ही मिलती है । रामेसर के प्रति रमा का आकर्षण जो कि मानवीय व्यवहार की परिधि में आता था अब पति और अन्य लोगों की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप दूसरा रूप लेने लगता है । रमा कहती है - "कभी कभी पराया आदमी भी अपने प्यार और त्याग के कारण अपने आपको माने जाने की सीमा के अन्दर ले आता है ।"[1]

अपनी माँ के सामने रमा मदन और रामेसर को लेकर तुलनात्मक रूप से जो बात कहती है वह जहाँ मूल्यों के संघर्षों को इंगित करता है वहीं परंपरागत मूल्य दृष्टि के निषेध का आग्रह भी बन जाता है । रमा कहती है -"आप लोग आखिर मुझसे किस जन्म का बदला ले रहे हैं कोई माँ बनकर, कोई पति बनकर, कोई चाचा बनकर, कोई सन्तान बनकर । एक

---

1. तीसरी सत्ता, गिरिराज किशोर, पृ. 113.

छोटा सा आदमी जो आपके या मेरे रास्ते में कहीं नहीं आता, अगर मेरा साथ दे रहा है तो आप लोगों की नज़रों में नीच और पतित है । यही नहीं उसके साथ मैं भी पतित हो गयी हूँ । आपकी नज़रों में वही महान है जो मेरे सीने पर बैठकर इन छोटे छोटे बच्चों के सामने मेरी इज्ज़त लेने को उतारू था..... चूँकि वह पति है । ..... यही है आपके मूल्य ।"[1] परिवार के सभी लोग मदन का इकतरफा वक्तव्य सुनकर इस पारिवारिक बिखराव को रोकने के लिए उसके साथ है किन्तु यहाँ भी अकेले रमा ही है जो वास्तविकता को जानती है । मदन के अश्लील आरोपों का उत्तर देती हुई स्वावलम्बी रमा कहती है -

"अगर ये इतना ही एकछत्र और एकात्मक अधिकार चाहते थे तो एक पढ़ी लिखी खुद्दार महिला के साथ शादी करने की बजाय इन्हें किसी स्त्री को खरीद लेना चाहिए था कि उसे ताले में बन्द करके रखते । मैं एक डाक्टर हूँ, वैसे भी आज़ादी की साँस लेने के लिए एक जिन्दा औरत हूँ । पेशे के हिसाब से मेरे लिये कुछ भी वर्जित नहीं मिलना-जुलना, बात करना, आना-जाना । अगर किसी के साथ बात कर लेना उसके साथ सोना है तो ठीक है मैं यह काम हर किसी के साथ करती हूँ ।"[2] इन तमाम रचनाओं के माध्यम से आज के जीवन में अर्थ और पद की प्रबलता और उसके समक्ष शिथिल होते हुए संबंधों को गिरिराज किशोर व्यक्त करते हैं । समकालीन संदर्भ में मानव जीवन में अधिकाधिक रूप से व्याप्त होते चले जानेवाले आर्थिक दायरे को एवं उससे व्याप्त होने वाली विषमताओं को गिरिराज किशोर की ये रचनाएँ व्यक्त करती हैं । अर्थ की धुरी पर सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन के आ टिकने के कारण मानव स्थितियों में काफी तब्दीली यहाँ पर दीख पड़ती है । अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए मनुष्य किसी भी मूल्य की तिलांजली देता नज़र आता है । हर राग तत्व पर अर्थ के हावी हो जाने के कारण सामाजिक एवं पारिवारिक स्थितियों में यान्त्रणा को झेलनेवाला मनुष्य ही लेखक की चिन्ता के केन्द्र में दीख पड़ता है ।

---

1. तीसरी सत्ता, गिरिराज किशोर, पृ. 134-35
2. वही, पृ. 168.

<u>वैज्ञानिक क्षेत्र की असंगतियाँ</u>

विज्ञान और प्रौद्योगिकी की संस्थान से सम्बद्ध होने के कारण गिरिराज किशोर की रचनाओं में यह परिवेश पूर्ण समग्रता के साथ अभिव्यक्त हुआ है । इस प्रकार की रचनाओं में हम देखते हैं कि कथ्य के स्तर पर समय और संवेदना के नवीनतम यथार्थ की अभिव्यक्ति हुई है ।

समकालीन रचनाशीलता की मुख्य समस्या अवरुद्धता और अमानवीयता से मुक्ति की समस्या है । मानवीय संवेदना में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के हस्तक्षेप के कारण अमानवीयता के नये नये षड्यंत्र जन्म ले रहे हैं । इससे मानवीयता के रास्ते में नये नये खतरे सिर उठा रहे हैं । आज देश काल का परिप्रेक्ष्य व्यापक हो रहा है और साथ ही मानव के सुख-दुःख, आशाएँ, आकांक्षाएँ, ईर्ष्या-स्पर्धा, अन्तरद्वन्द्व एवं बर्हिद्वन्द्व नये प्रभावों से प्रेरित हो रहे हैं । विजित और विजेता के संबंध भी अधिक रहस्यमय और निष्करुण हो चले है । वास्तव में यह समस्या साम्राज्यवादी देशों के शक्ति विस्तार और उन्माद की है । इनकी शक्ति की सापेक्षता में गरीब देश लगातार जर्जर और निरुपाय तथा असुरक्षित होते चले जा रहे हैं । मनुष्य और कच्चे माल में संभवतः यहाँ कोई अन्तर नहीं रह जाता । समस्त उपलब्धियों के बावजूद विज्ञान लगातार मनुष्य के रागतत्त्व को सोखता चला रहा है ।

विज्ञान के संदर्भ में व्यक्ति की ही नहीं वरन संपूर्ण मानव जाति की संकटपूर्ण स्थिति का चित्रण गिरिराज किशोर के उपन्यास

"अन्तर्ध्वंस" में हुआ है । मनुष्य जब अपनी परिमिति के बाहर की भी शक्तियों का लालच करने लगता है तो यह लिप्सा उसे मानव भी नहीं रहने देती है । भौतिक अन्वेषण में तो वह लगातार उलझता जाता है परन्तु अपनी धरती से ही नही वरन् अपने आत्मीय जनों यहाँ तक कि परिवार, पत्नी एवं बच्चों से भी दूर होता चला जाता है, और अन्ततः वह मानव होने की स्थिति में भी नहीं रह जाता है। विज्ञान का बाहरी एवं विध्वंसक रूप तो विभिन्न रूपों में प्रत्यक्षतः हमारे सामने आया है । परन्तु अन्दर ही अन्दर भी वह किस प्रकार मानव का ध्वंस कर डालता है यही तथ्य "अन्तर्ध्वंस" में अभिव्यक्त हुआ है । यहाँ मानव के अन्तःकरण का और मानवीय संबंधों का अन्तरध्वंस है, परन्तु साथ ही साथ इस संकट से बच निकलने के प्रति लेखक कहीं आशावादी भी है, यही सोच है जो लेखक मन मोहन के माध्यम से व्यक्त करते है - "इसलिए नहीं कि तुम अपने आप को डिह्यूमनाइज कर लो । मानवीय संबंधों को बुझा दो । तुम्हें अब तय करना होगा कि तुम इसी रास्ते पर चलकर आगे बढ़ोगे या मानवता की ओर लौटोगे ।"[1]

विज्ञान की दुनियाँ में भी एक प्रकार का अन्धविश्वास ही है जो व्याप्त दिखाई पड़ता है । शायद यही कारण है कि विज्ञान की दुनियाँ से मनुष्य दूर होता चला जा रहा है । मानव के द्वारा एक ऐसी दुनियाँ का निर्माण किया जा रहा है जहाँ पर अन्य तो सभी अभिप्सित वस्तुएँ हैं किन्तु मनुष्य का कहीं दूर-दूर तक पता नहीं है ।

"अन्तर्ध्वंस" का केन्द्र पात्र डा. दीपक पचौरी, जैनिटिक्स पर रिसर्च करने के लिए पोस्ट डाक्टरल फैलोशिप लेकर अमेरिका जाता है ।

---

1. अन्तर्ध्वंस, गिरिराज किशोर, पृ.

प्रारंभ में दो वर्ष के लिए भी अपने देश से अलग रहने में तकलीफ का अनुभव करता है । परन्तु अपने देश, अपने परिवार एवं अपने बच्चों के लिए मोहासक्त रहनेवाला यह भावुक वैज्ञानिक धीरे धीरे तब्दील होने लगता है । उसे अपने देश के प्रति ममता और दायित्व बोध अन्तत: हास्यास्पद लगने लगता है । देश का यह होनहार वैज्ञानिक अमेरिका की प्रयोगशाला में खरीद लिया जाता है । प्रारंभ में ही वहाँ के चालाक वैज्ञानिक डा॰ मु दीपक से कहते हैं -

"जिस दिन तुम आये, मेरे पर्सनल कम्प्यूटर ने भी मुझे बता दिया था कि तुम मतलब के आदमी हो । ...... मैं तुम्हें, यानि तुम्हारी योग्यता को खरीदना चाहता हूँ । उसके लिए अधिक से अधिक मूल्य देने को तैयार हूँ ।"[1]

प्रारंभ में न कहने के बावजूद बाद में दीपक पचौरी डा॰ मु के प्रोजेक्ट में शामिल होता है। आरंभ आर्थिक विवशता के कारण ही होता है । अन्तत: वह उसमें इतना रम जाता है कि उसे मृत्यु की ओर बढ़ते अपने पुत्र तक की चिन्ता नहीं रहती है ।

डा॰ मु का सिद्धांत कहता है कि "अगर कोई उपकरण ज़रूरी होता है तो उसे या तो फेब्रिकेट किया जाता है या फिर किसी भी मूल्य पर उपलब्ध किया जाता है ।"[2] और दीपक के रूप में वह अभीप्सित उपकरण अंतत: उन्हें हासिल हो जाता है । दीपक के लौट जाने की बात तो अब

---

1. अन्तर्ध्वंस - गिरिराज किशोर - पृ. 112
2. वही - पृ. 167

दूर रही । रुग्ण देश को याद दिलानेवाले सभी प्रसंगों से अब वह छुटकारा पाना चाहता है । अन्त में उसकी स्थिति यह है कि वह कहता है कि अब मैं सिर्फ उसी जीव के बारे में सोच सकता हूँ जिसकी परिकल्पना डा. सू ने मेरे मस्तिष्क में भर दी है ।"[1]

"अन्तध्वंस" में कथा को कहने वाला पात्र "सर" है । सर के माध्यम से गिरिराज किशोर ने रचनाकार के अन्दर की व्यथा को भी प्रस्तुत किया है अर्थात् यहाँ पर इस तथ्य को सामने लाने की कोशिश की गयी है कि रचनात्मकता से अलग रहकर वैज्ञानिक सिर्फ विज्ञान या प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों पर गर्व कर सकता है । परन्तु रचनात्मकता के खतम होने के बाद तो मानवता के प्रति उसकी प्रतिबद्धता भी समाप्त हो जाती है । संभवत: रचनात्मकता से दूर हो जाना ही वास्तव में विज्ञान के अन्तरध्वंस की पूरी त्रासदी है ।

प्रौद्योगिकी संस्थान में रचनात्मक जीवन केन्द्र से लेखक के जुड़े होने के कारण ही संभवत: उनके तथ्य परक अनुभवों का पूरा संसार उपन्यास के माध्यम से उभरता दीख पड़ता है । परन्तु उपन्यास में कहीं भी भावुकता नहीं है बल्कि संवेदनशीलता के साथ इन विडम्बनाओं से गुज़रने का एहसास ही दीख पड़ता है ।

उपन्यास में जहाँ वैज्ञानिक दीपक पचौरी का बदलता रूप दीख पड़ता है वहीं पर राघवन की व्यावहारिकता भी है। डा. राय जैसे वैज्ञानिक भी है, जिनका ओछापन अपनी चरम सीमा पर दिखाई पड़ता है। किसी भी मूल्य पर, किसी भी टुच्चेपन पर उतरकर वे विदेश का ग्रीन कार्ड हासिल करते रहना चाहते हैं। प्रोफेसर सु भी एक वैज्ञानिक ही है जो प्रतिभाओं का उपयोग माध्यम के रूप में करते हैं। दूसरी ओर वैज्ञानिक मैनमोहन (मनमोहन) है जो कि हावभाव व पारिवारिक रिश्तों से अमेरिकी है, भारत आ पाना उसके लिए संभव नहीं। उसकी प्रतिभा को ग्रीन कार्ड किया जा चुका है। परन्तु वह भीतर से भारतीय है। भारत की मिट्टी में भी अमेरिका को "माईकन्ट्री कहकर पुकारने के लिए वह विवश है। यही उसकी विडम्बना है। लुप्त होती जाती मानवीय संवेदनाओं का उसे दुख है। महत्वाकांक्षा की पूर्ति के पाखिक उन्माद से वह दीपक को बचाना चाहता है और उसके परिवार की भी रक्षा करना चाहता है। दीपक के बच्चे के प्रति उसे सहानुभूति है, वह दीपक से कहता है -"इस बच्चे को अपना देश चाहिये... .... अकेले नहीं तुम दोनों के साथ।"[1]

अन्तत: प्रोफेसर सु के लिए दीपक पचौरी एक उपयोगी उपकरण सिद्ध हो जाता है। उपन्यास के अन्त में हम देखते हैं कि "एक कई सिलवटों में फैला आदमी..... आँखें पलकों के नीचे दबी थीं, हाथ इतने लंबे थे कि शायद एक छोटा-मोटा हाथी उसकी बाहों में समा जाये........ आवाज़ सुनाई दी..... दीपक इस डेड।.... जैसे टेप लगा हो। वह

---

1. अन्तर्ध्वंस - गिरिराज किशोर - पृ. 114

आवाज़ उसके अन्दर से आ रही थी । प्रोफेसर सु रिमाट कन्ट्रोल द्वारा उसे समेट रहे थे..... मन मोहन अवाक खड़ा था । प्रोफेसर सु ने आकर हाथ मिलाया । "थैंक्यू मैन मोन.... हम सफल हो गये , बीस्ट इज़ आउट आफ सेव । दीपक हैज प्रूव्ड टु बी ए गुड मीडियम......।"[1] दीपक पचौरी जैसे होनहार वैज्ञानिक का यह परिवर्तन ही विध्वंस की भयंकरतम स्थिति है । यहाँ लेखक की दृष्टि मात्र फैन्टसी तक सीमित नहीं रहती बल्कि चिन्तन को बाध्य करती है । देश भर की होनहार प्रतिभाओं एवं वैज्ञानिकों के लिए ही नहीं वरन इनका निर्यात करनेवाली संस्थाओं एवं सरकार के लिए भी यह स्थिति चिन्ताजनक हो सकती है ।

इधर विज्ञान को मानव कल्याण से जो जोड़कर ऊँची-ऊँची बातें की जाती हैं । किन्तु विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बड़े बड़े संस्थानों के कार्यों की अंतरंगता में प्रवेश करके दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि यहाँ भी बड़े बड़े वैज्ञानिकों के बीच षड्यंत्र, मूल्यहीनता और स्वार्थपरायणता और एक दूसरे को पछाड़ने की होड़ में कुछ भी करने को, किसी भी स्तर पर नीचे उतरने को तैयार मनोवृत्ति से भरा दूषित वृत्त ही नज़र आता है । "कोरी भौतिक प्रगति यानि यान्त्रिकता से मानव चेतना का गुणात्मक ह्रास होता है । एक भावनाहीन, स्वार्थग्रस्त, दक्ष और वस्तुओं का गुलाम आदमी पैदा होता है । वह होड़ में जीता और मरता है । उसका अन्त:करण भूखा, कुण्ठित, अशोधित, "अनएक्सप्लार्ड" रह जाता है । तमाम उपलब्धियों और निजी स्वार्थों के प्रति वैज्ञानिकों के कैलकुलेटिव रवैये के बीच

---

1. अन्तर्ध्वंस - गिरिराज किशोर - पृ. 136

सामान्य जीवन को अनदेखा करने का एक उपक्रम विज्ञान के क्षेत्र में दीख पडता है । इसके विभिन्न पहलू गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में उभरते हैं । वे इन पहलुओं का नक्शा भर तैयार नहीं करते बल्कि इस नक्शे में खोये खोये हुए सामान्य जीवन की तलाश ही करते हैं ।

"विज्ञानी" विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत ऐसे लोगों की कहानी है जो अपनी व्यक्तिगत उपलब्धियों के लिए रात दिन तरह तरह के षड्यन्त्रों में लिप्त हैं । एटोमिक एनर्जी कमीशन के महानुभव जो दो दिन के लिये आये हुए थे उन्हें अपने घर ले जाने में अम्बराव, वेंकट और रामलिंगम जो कि वैज्ञानिक है होड लगी है । सभी अपनी अपनी स्वार्थ सिद्धि चाहते हैं । रामलिंगम इस कार्य के लिये अपने बेटे का झूठा जन्मदिन तक मनाता है परन्तु वेंकट व अम्बाराव पीछे नहीं -"ऐसी दुधारी गाय को कौन अकेला छोडता है वे लोग रामलिंगम के घर इसलिए जल्दी पहुँच गये । कहीं वह जल्दी पहुँच जाय और रामलिंगम उसे बाल्टी लेकर दुह ले ।"[1] बडे अधिकारियों को डिनर देना, अच्छी शराब की व्यवस्था करना, संस्थान की ऊँची कुर्सी या विदेश भ्रमण के लिए गलीज शर्तों के साथ समझौता करना आदि इन तथाकथित वैज्ञानिकों की नियति के अंग बन गये हैं ।

"अन्वेषण" शीर्षक कहानी में दूसरे के शोध को चुराकर उसे अपना लेना या शोधकार्य का अस्वीकारना और मूल प्रश्नों को दरकिनार

---

1. वल्दरोज़ी, गिरिराज किशोर, पृ. 29.

करते हुए तथाकथित "साइंस पेपर" बनाने की चिन्ता को ही वैज्ञानिकों के लक्ष्य के रूप में उभारा गया है। परन्तु मुत्तुस्वामी जैसे वैज्ञानिक को भी एक छोटा सा प्रश्न सकते में ला देता है -

"आज जब हम लोग हाल में बैठे इनसान की ज़िन्दगी को न्यूक्लियर मेगनेटिक रेजोनेन्स के माध्यम से दीर्घ और सुखद बनाने का मनसूबा बान्ध रहे हैं। कल्पना कीजिये कि उस सर्वशक्तिमान जीवन तत्व उस हाल से एकाएक चहलकदमी करता बाहर चला जाये तो क्या होगा? लोग जिस में बैठे होंगे रह जायेंगे।"[1]

यहाँ अन्वेषण का महल अंत में पल भर में ही भर-भराकर गिर जाता है।

"सौदागर..... हिप हिप हुर्रे" कहानी प्रौद्योगिकी संस्थान से सम्बद्ध विद्यार्थियों अध्यापकों की मानसिकता को तीव्रता के साथ उभारती है। संस्थान एक नियम बनाता है कि विद्यार्थी एक सीमा तक ही ऑफर स्वीकार कर सकते हैं। इस कहानी के बारे में कहानी के आरंभ में ही एक टिप्पणी है -"इस गरीब देश में कुछ ही शिक्षा संस्थाएँ ऐसी है जो इतनी, महान है कि वध सेवा योजक स्वयं चलकर आते हैं। जनता के पैसों पर चलने वाले आई.आई.टी जैसे संस्थान देश के लिए कितना कर पा रहे हैं इस सत्य को भी बड़े ही व्यंग्यात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है। इन संस्थानों से निकलने वाले उत्कृष्ट विद्यार्थी पैसे और सुख की खोज में विदेश चले जाते हैं और ऐसा करने के पीछे इनका तर्क कितना हास्यास्पद है -"एक गाँव से दूसरे गाँव जाने की तरह कहीं भी जाना संपूर्ण इनसानियत के हक में होता है।"[2]

---

1. वल्दरोज़ी, गिरिराज किशोर, पृ.39.
2. वही, पृ.62.

इस देश में पले बढ़े वैज्ञानिकों का विदेश जाकर भौतिकता की उपलब्धियों को पाने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझने और प्रतिभा से पलायन करने पर तीखा व्यंग्य है ।

"यन्त्रमानव" में मानव विज्ञान के समक्ष प्रश्न करता है कि विज्ञान क्यों है । किसके लिये हैं । कहीं ऐसा तो नहीं कि हम विज्ञान के हाथों अपनी मनुष्यता का वस्त्र उतार कर यन्त्र-मानव बनते जा रहे हैं । जीवन के शाश्वत मूल्यों एवं प्रश्नों से टकरानेवाली यह कहानी विचार करने को प्रेरित करती है । "यह अनुसंधान हमें उस युग में ले जायेगा वहाँ हम अपने से अधिक यन्त्र मानव को प्राप्त करने की स्थिति में होंगे - वह हमारा मित्र और बन्धु होगा, सहयोगी होगा, व्यक्तिगत सहायक और परिचायक होगा ।"[1]

आरंभ मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है । किन्तु धीरे धीरे यन्त्र पर मनुष्य के अधिकार की जगह मानव पर यन्त्र का अधिकार होने लगता है । तथाकथित विज्ञान के युग में यन्त्रों के लोक में मानव भी मानव न रह कर मशीन के रूप में परिवर्तित होता है जहाँ मानव सहज आकृति तो उसके पास होती है किन्तु मानव सहज संवेदनाएँ लुप्त हो जाती है । इस स्थिति में मूल्य, परंपरा या मनुष्यता से जुड़े किसी भी प्रश्न का उसके लिये कोई महत्व नहीं रह जाता । मनुष्य का जीना और मरना यान्त्रिक है और उसकी उपलब्धियाँ भी निरा यान्त्रिक ही है ।

---

1. वल्दरोज़ी, गिरिराज किशोर, पृ. 78.

जहाँ हम आज के युग को यन्त्र-युग कहते हैं और उसमें जीनेवाले मनुष्य की स्थितियों पर विचार करते हैं वहीं मानव की संवेदना पर घर कर गयी यान्त्रिकता भी विचारणीय हो जाती है । संवेदना की यान्त्रिकता का यह पहलू अपेक्षाकृत अधिक खौफनाक प्रतीत होता है ।

सर्वग्रासी यान्त्रिकता ने आधुनिक मानव के सम्मुख अचिंत्य संभावनाओं एवं खतरों के द्वार खोल दिये हैं । वस्तुत: यदि देखा जाये तो पूँजीवादी एवं साम्यवादी समाज की बुनियादी समानता में भी यान्त्रिकी का आधार दीख पड़ता है । इस बात में कोई सन्देह नहीं कि प्रकृति पर विजय पाने में यान्त्रिकी ने मानव की काफी मदद की है । सुख और समृद्धि की ओर बढ़ती सभ्यता के विकास में भी यान्त्रिकी सहायक रही है । परन्तु संघर्ष का वास्तविक बिन्दु तो यह है कि यान्त्रिकी किसके लिये हैं, श्रमजीवियों, के लिये या परजीवियों अर्थात् पूँजीपतियों के लिये ? यान्त्रिकी के इसी खतरे को संवेदनशील रचनाकार गिरिराज किशोर बहुत ही गहराई से महसूस करते हैं । यन्त्र जहाँ एक दैत्य की भाँति अनेकों भारी काम अपने आप कर लेता है, वहीं वह अनेकों श्रमजीवियों को बेकार भी कर देता हैं । यान्त्रिकी जहाँ प्रकृति का शोषण करती है वहीं वह मानव को भी कल-पुर्जे या यन्त्र के रूप में परिवर्तित कर डालती है ।

गाँव की धरती को कारखाना बनाने के लिए शहरी लोगों द्वारा हड़प लिये जाने तथा गाँव का शहरीकरण किये जाने की प्रक्रिया के फैन्टसी के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है गिरिराज किशोर के उपन्यास "इन्द्र सुने" में

गाँव की साधारण जनता पर शहर के पूँजीवादी लोग पहले तो अपना प्रभाव डालते हैं और अन्ततः गाँववालों की ज़मीन हड़पकर उसमें तथाकथित देवलोक अर्थात् कारखाने की स्थापना करते हैं । बैलों की घुँघरूओं की आवाज़ की जगह अब गाँव में मशीनों का शोर ही सुनाई देता है । गाँव की मिट्टी पर रहनेवाले मनुष्य जो कभी अपनी टुकड़ी भर ज़मीन के लिए भी मरने कटने को तैयार थे अब वही कारखाने की मशीनों से जूझते हैं । इस देवलोक के वासी अर्थात् कारखाने के मालिक ही उनके लिए अब देवता हैं तथा इस ज़मीन के असली हकदार किसान की सन्तानें अब इन देवताओं के चरणों में ही स्थान खोज पाते हैं । क्योंकि अब उनके लिये सवाल पेट पालने और जिन्दा रह पाने का हो जाता है ।

वस्तुतः गिरिराज किशोर ने यहाँ यान्त्रिकी एवं पूँजीवादी व्यवस्था के गठबन्धन और उससे उत्पन्न आतंक और अराजकता का चित्र यहाँ प्रस्तुत किया है । फैन्टसी शिल्प का प्रयोग इस तथ्य को उभारने में पूर्णतः सहायक भी सिद्ध होता है ।

वर्गों का विभेद वस्तुतः पूँजीवादी व्यवस्था की देन है । यान्त्रिकी वर्ग विभेद की इस व्यवस्था को और भी अधिक पुष्ट करती है । "इन्द्र सुने" में हम देखते हैं कि गाँव की धरती पर यान्त्रिकी का प्रवेश होता है । गाँव जो कि मृत्युलोक था उसे देवलोक बना देने की परिकल्पना है किन्तु उस विशेष भूखण्ड पर बने "देवलोक" की चहार दीवारी में प्रवेश मृत्युलोक के निवासियों के लिए प्रवेश निषिद्ध है । पूँजीवाद ने अपने स्वार्थ के लिए

मनुष्य और मनुष्य में विभेद पैदा किया । वर्गों का निर्माण किया और कदम कदम पर आदमी को बाँटा । इसी पूँजीवादी व्यवस्था के साथ यान्त्रिकी भी अंतरंग रूप से जुड़ी हुई है । आम कहा जानेवाला आदमी या श्रमजीवी वर्ग ही इस व्यवस्था के तले निरन्तर कुचला जा रहा है । "इन्द्र सुने" में भी हम देखते हैं कि कुछ खास लोग ही देवलोक के सर्वेसर्वा हो गये हैं और नीचे के लोग लगातार उनकी ठोकरें खाते हैं । सामान्य स्थितियों में जीनेवाले मनुष्य की आत्मा का दमन अन्याय एवं अत्याचार के माध्यम से कर दिया जाता है । वह स्वयं ही शोषण के दुरूह चक्रव्यूह में निरन्तर फँसता चला जाता है ।

छल एवं शोषण तथा यन्त्र के इस आतंक को "इन्द्र सुने" में अत्यधिक समर्थ रूप से प्रस्तुत किया गया है । एक खास व्यक्ति जिसे गाँववाले सहराती कहते हैं, उसके द्वारा गाँववालों से छल करके उनकी ज़मीन हड़प ली जाती है और उसी ज़मीन पर देवलोक स्थापित कर दिया जाता है । गाँव के लोगों को बाध्य किया जाता है कि वे देवलोक पर निर्भर रहें । और यहीं देवलोक के लोगों द्वारा मृत्युलोक वासियों के शोषण की प्रक्रिया यहाँ उभरती हैं । नये नये जनवादी नारों के बावजूद भी यान्त्रिकी पर जनाधिकार की स्थापना न हो सकी और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में उच्चवर्ग ही लगाता लाभान्वित होता गया । समूह वर्ग ने संभवत: भोगवादी संस्कृति का प्रचार ही किया । "इन्द्र सुने" में किसान अब अपनी धरती के मालिक नहीं रहे है वे अपनी धरती पर फैलते जा रहे शहर को देख रहे हैं । क्योंकि खेत अब रहे ही नहीं इस कारण न तो हल बैलों का कोई महत्व रहा और न ही उसमें काम करनेवाले मनुष्यों का । इन किसानों के जवान बेटे अब मशीनों पर कार्य कर

रहे हैं और अपना खून पसीना एक कर रहे हैं । इस प्रकार यान्त्रिकी सभ्यता और विकास के नाम पर गाँव मर रहा है । गाँव की मृत्यु यहाँ पर संवेदना की मृत्यु है । गाँव के मरने का अर्थ है लोगों के भीतर आदमी की मौत, सत्यप्रेम, श्रद्धा आदि मानवीय मूल्यों की मौत ।

यान्त्रिकी द्वारा सर्वनाश की प्रक्रिया दीर्घ है । यान्त्रिकी का आविष्कार बुद्धि द्वारा होता है । परन्तु इसके प्रयोग का अधिकार व्यवस्था के संचालकों के हाथ लगता है । संचालक यदि सही अर्थों में मनुष्य है अर्थात् अपने निजी स्वार्थ के भयंकर लोभ से वह ऊपर उठा हुआ है । तब तो यान्त्रिकी के इस सर्वनाश से मुक्त हुआ जा सकता है । परन्तु मानवात्मा के अभाव में वे अपने अहम द्वारा उसका सर्वनाश कर बैठते हैं ।

विज्ञान और तकनीकी के बढ़ते कदमों से हम विकासशील या विकसित होने का दावा तो करते हैं किन्तु विज्ञान हो या तकनीकी - ये किसके लिये हैं ? यह प्रश्न चिन्ह संवेदनशील व्यक्ति के लिये बहुत ही महत्व रखता है । "समृद्ध समाजों के संवेदनशील युवक प्रगति शब्द से चिढ़ते हैं क्योंकि कोरी भौतिक प्रगति यानि यान्त्रिक प्रगति से मानव चेतना का गुणात्मक ह्रास होता है । एक भावनाहीन स्वार्थग्रस्त, दक्ष और वस्तुओं का गुलाम आदमी पैदा होता है । वह होड़ में जीता मरता है । उसका अन्तःकरण भूखा कुंठित और अशोधित {अनएक्सप्लोर्ड} रह जाता है ।"[1] मानव की नियति

---

1. यान्त्रिकी और संवेदना, समकालीन सिद्धांत और साहित्य, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 49.

और अधोगति का चित्रण करनेवाला लेखक यहाँ पर यन्त्र संदर्भ में आदमी की खोज करता है । विज्ञान, तकनीकी, या यान्त्रिकी के विकास और उसके परिणामों पर विचार करते लेखक की चिन्ता के केन्द्र में आज के मानव की स्थिति ही है । इन तमाम स्थितियों पर गहराई से सोचते हुए गिरिराज किशोर मानव के अस्तित्व और उसकी रक्षा पर विचार करते हैं और यहीं पर उनकी दृष्टि की समकालीनता दृष्टिगोचर होती है ।

गिरिराज किशोर की साहित्य संबंधी धारणा यहाँ पर साहित्य एवं साहित्यकार के कर्म की आन्तरिकता में घटित होनेवाले मौलिक बदलाव से विच्छिन्न नहीं है । बल्कि उसी का प्रतिफल है । गिरिराज किशोर का कथा साहित्य मानवीय स्थिति की समझ और पहचान की ओर अधिकाधिक उन्मुख है । इसे समझने के लिए वे किन्हीं रूढ एवं सुनिश्चित विचार सारणियों की ओर प्रवृत्त नहीं होते हैं । उनकी समझ और पहचान व्यक्ति की धुरी एवं समाज के धरातल पर टिकी नज़र आती है । बाहरी यथार्थ भीतर की ओर स्थानांतरित हुआ है और भीतरी सच्चाई प्रसंगों के साथ इस प्रकार मेल खाती है कि व्यक्ति और समाज के परिदृश्यों में कोई विभाजन रेखा नहीं है ।

तेज़ी से बदलते समाज के रोये रेशे को उसकी असलीयत में पकडना गिरिराज किशोर की कथा दृष्टि रही है । आसपास के जीवन की झलक मात्र प्रस्तुत नहीं करते हैं । बल्कि उनका कथा साहित्य आसपास की आबोहवा से पूरी तरह मिला हुआ है । जीवन की अंतरंगता में गुज़रनेवाला माहौल गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में है । इसी कारण ये सच के प्रामाणिक दस्तावेज़ ठहरते हैं ।

चौथा अध्याय

गिरिराज किशोर के कथा साहित्य का राजनैतिक परिप्रेक्ष्य

रचनात्मक लेखन की बुनियाद संवेदना की गहनता होती है और संवेदना का स्वरूप ही रचना की कसौटी बनता है । "सचेतन व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया में अपने काल की नब्ज को पकड़ता है । अपने युग यानि अपने, बुखार की जाँच करता है, कारणों पर सोचता है ।"[1] मनुष्य जहाँ अपनी दैनंदिन आवश्यकताओं और जीने की अनिवार्यताओं से जुड़ता है वहीं किसी न किसी बिन्दु पर वह समकालीन राजनीति से भी जुड जाता है । समकालीन कथाकार अपने समय को उसमें जीने वाले मनुष्यों के माध्यम से पकड़ता है । अर्थात् मानवीय जीवन की समग्रता ही यहाँ पर लेखक का अभीष्ट है । राजनीति को एक अलग इकाई के रूप में ग्रहण करना यहाँ संभवतः उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि राजनीति भी इस जीवन परिवेश में दैनिक जीवन का एक अंग ठहरती है । वस्तुतः कोई भी साहित्यकार समकालीन राजनीति से उदासीन नहीं रहता है या रह नहीं पाता है । जब तक राजनीति का गठबन्धन सत्ता के साथ रहेगा तब तक मनुष्य के साथ भी वह जुड़ेगी । उसके कई आयाम हो सकते हैं । सामाजिकता के अन्तर्गत होनेवाले अमानवीय प्रसंग, पूँजीवादी संस्कृति के पक्ष तथा देशीय और अन्तर देशीय फासिस्ट शक्तियों के पक्ष आदि लिये जा सकते हैं । किन्तु यह आवश्यक नहीं होता है कि राजनीतिक कहलानेवाली तमाम रचनाओं में इनमें से कोई न कोई पक्ष सामने आये । इनमें से किसी एक पक्ष का किंचित इशारा ही ऐसी रचनाओं के राजनैतिक परिदृश्य को विचारणीय बना देता है ।

सामान्य तौर पर साहित्यकार की राजनैतिक असम्बद्धता को

---

1. समकालीन साहित्य और सिद्धांत, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पृ. 15.

नकारते हुए समग्र दृष्टिकोण, अतिवादिता से युक्त लगता है । किन्तु राजनीति के व्यापक अर्थ को लेने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कोई भी साहित्य अपने समय की राजनीति से अछूता नहीं रह सकता है । राजनीति और साहित्य का यह संपर्क प्रत्यक्ष होता है या अप्रत्यक्ष यह अलग बात है ।

साहित्य के राजनैतिक संदर्भ का अर्थ साहित्य द्वारा राजनीति का अनुगमन नहीं होता है । जब साहित्यकार वाद विशेष का अनुसरण कर लेता है तो रचना राजनीति की अनुचर मात्र बनकर रह जाती है । यहाँ पर रचना प्रचारात्मक हो जाने के साथ साथ अल्पजीवी भी हो जाती है । इसी कारण राजनीति जब रचना के दायरे से बाहर हो जाती है तो साहित्य में राजनैतिक संदर्भ की बात सन्दिग्ध हो जाती है और साहित्य भी अपने स्तर से गिर जाता है । ऐसा साहित्य राजनैतिक कार्य को भले ही प्रेरणा दे सकता हो परन्तु समकालीन परिस्थितियों में जीनेवाले मानव की स्थिति का उद्घाटन नहीं कर सकता ।

साहित्यकार का राजनीति के प्रति उदासीनता का रुख भी दर असल उससे असंपृक्त होने की अपेक्षा उससे संपृक्त होने की सूचना अवश्य देता है "जो कहते हैं कि वे साहित्यकार हैं उन्हें राजनीति से कुछ लेना देना नहीं, वे वास्तव में उदासीन नहीं होते हैं, उनकी उदासीनता राजनीति के प्रति नकारात्म प्रतिक्रिया मात्र है ।"[1] साहित्यकार की अपेक्षाओं की कसौटी पर जब राजनीति खरी नहीं उतरती तो वह उदासीन हो जाता है । कभी वह उदासीनता उस विवशता से भी पैदा होती है जो साहित्यकार सत्ता के समक्ष अनुभव करता है ।

---

1. साहित्य और सामाजिक मूल्य, डा. हरदयाल, पृ. 37.

राजनीति से व्यावहारिक स्तर पर जुड़े हुए व्यक्ति की दृष्टि देश और काल दोनों में सीमित होती है । उसका ध्यान सबसे पहले प्राप्त सत्ता को बनाये रखने अथवा अप्राप्त सत्ता को प्राप्त करने पर केन्द्रित होता है । संभवत: इसी कारण साहित्य और राजनीति के बीच जो संबंध बनता है वह असंतोष का ही होता है । " रचनाकार राजनैतिक "एक्टिविस्ट" नहीं । उसका विद्रोह किसी सत्ता के बदलने के लिए नहीं बल्कि प्रत्येक सत्ता को चुनौती देने से है ।"[1] स्थितियों के प्रति यही असन्तुष्टि गिरिराज किशोर की रचनाओं में उभरती है ।

गिरिराज किशोर की रचनाओं का प्रमुख क्षेत्र राजनीति ही है वे स्वयं राजनीति में उतर कर तो नहीं आये परन्तु अपने जीवन के प्रारंभिक दिनों से राजनीतिज्ञों से उनके ताल्लुकात अवश्य रहे हैं । उनका बचपन और युवावस्था राजनीतिज्ञों के बीच ही गुजरे हैं । यूँ तो समकालीन रचनाकारों में अन्य भी है जिन्होंने राजनीति का चित्रण किया है परन्तु राजनैतिक संबंधों में वह सूक्ष्मता और प्रामाणिकता जो गिरिराज किशोर की रचनाओं में मिलती है अन्यत्र शायद ही दीख पड़ती है ।

गिरिराज किशोर राजनैतिक संदर्भों को जीवनानुभव का अंश स्वीकारते हैं । राजनैतिक संगठन तथा राजनैतिक परिवेश को अपने कथा साहित्य में स्थितियों की आवश्यकतानुसार गिरिराज किशोर प्रयुक्त करते हैं । वे मानते हैं कि "हमारे देश की यह विडम्बना है कि राजनीति हमारी ज़िन्दगी का हिस्सा

---

1. साहित्य और विद्रोह, देवेन्द्र इस्सर, पृ. 15.

नहीं बन पायी है अभी तक, जहाँ तक कह सकें ये सही है ये गलत ।[1] हमारे यहाँ सामान्य वर्ग अलग है और उसका राजनीति के साथ कोई संबंध नहीं है । वर्गों के बीच की यह खाई लेखक को सदा खटकती है और इसे पाटने का प्रयास उन्होंने अपनी रचनाओं में किया है । लेखक के अनुसार वही समाज राजनीति में पूरी हिस्सेदारी करता है जो उसकी पहचान रखता है ।

राजनीति को जब एक अलग अनुशासन के साथ जोडते हैं और देखते हैं तो उसमें अनेक मूल्यवान और प्रामाणिक सिद्धांत उपलब्ध होते हैं । किन्तु जब इसी राजनीति को सत्ता से जोडकर देखते हैं तो उसका दूषित वृत्त भी स्पष्ट होता दिखाई देता है । और उस समय राजनीति मूल्यहीनता, षडुयंत्र, अमानवीयता, स्वार्थ परायणता आदि का उदाहरण बन जाती है । सत्तामूलक राजनीति का यह रूप आधुनिक काल में एक विरोधाभास मात्र नहीं है । आधुनिक काल में इस कारण यह विसंगति पूर्ण लग रही है कि राजनीति के नारों और राजनीति की वास्तविकता में ज़मीन और आसमान का फरक है । राजनीति का यह दूषित वृत्त कहीं व्यवस्था को घेरे है और कहीं शैक्षणिक क्षेत्रों को । कही एक दुष्चक्र के रूप में स्वयं उलझा है तो कहीं अमानवीयता के असंख्य प्रसंगों को समेटे हैं, कहीं पूँजीवाद के साथ अपना गठबन्धन किये हुए हैं । ये सभी स्थितियां गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में हमें दीख पडती है और साथ ही इन तमाम स्थितियों के बीच पिसता समकालीन मनुष्य भी ।

<u>राजनैतिक सत्ता और पूँजीवाद का गठबन्धन :-</u>

राजनीति को यदि व्यापक दृष्टिकोण में देखा और परखा

---

1. साक्षात्कार, के.के.नैय्यर से हुई बातचीत, पृ.75. अंक-152, संपादक प्रभाकर श्रोत्रिय, अगस्त 1992.

जाये तो हम पाते हैं कि वह कभी भी अपने आप में स्वतंत्र नहीं है । कहीं गहराईयों में राजनीति सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण एवं जीवन से सशक्त रूप में जुडती है । मानवीय संसक्ति एवं नैतिक बोध को मूल्य युक्त एवं पुष्ट राजनीति के लिए अनिवार्यताओं के रूप में स्वीकार किया जा सकता है । पुष्ट समाज का व्यापक एवं बृहद संकल्प और मनुष्य मात्र के विकास की संभावनाएँ राजनीति के अभीप्सित पहलू हैं । किन्तु इन सभी संकल्पों के बावजूद भी असंख्य अवांछित एवं अस्पृहणीय स्थितियों का समावेश भी राजनीति में हो जाता है । और सामाजिक स्थितियाँ इनसे अछूती नहीं रह जाती हैं ।

बदलती राजनैतिक स्थितियाँ और टूटता सामन्ती ढाँचा : "लोग"

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व तक की भारत की सामाजिक एवं राजनैतिक पृष्ठभूमि से सीधा साक्षात्कार करानेवाला गिरिराज किशोर का उपन्यास है लोग । सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों की जड़ें यहाँ पर पीछे की ओर दूर तक फैली हुई नज़र आती हैं । तत्कालीन हलचलों, परिवर्तनों एवं प्रतिक्रियाओं की अनुगूँज "लोग" में मिलती है । लोग के पात्रों के संदर्भ में बताते हुए गिरिराज किशोर कहते हैं कि "मेरा संघर्ष उपन्यास में दो तीन स्तरों पर था ।एक स्तर यह था जो ज़माना गुज़र रहा है, जिसके लोग, आज ऐसा वक्त आ गया है कि, देखने को नहीं मिलते । उन लोगों की ज़िन्दगी को कैसे पकडा जाये ? और जो आनेवाले आधुनिकतावादी लोग है उनके सामने इस तस्वीर को कैसे रखा जाये जिस को मैं ने अपनी आँखों से बदलते हुए देखा है । यह बदलाव का जो ज़माना था, मुझे कहीं न कहीं लगता है कि बदलाव मेरे अन्दर हुआ है और अपने अन्दर होने वाले बदलाव को मैं कैसे जल्दी से जल्दी अर्थवत्ता दे कर प्रस्तुत कर सकूँ, यह मेरा बहुत बडा संघर्ष था ।"[1]

---

1. गिरिराज किशोर, लोठार लुट्से, लोग, एक प्रश्नोत्तर

अँग्रेज़ी शासन ने अपनी सत्ता की शक्ति को शक्तिशाली बनाने के लिए भारत के प्रभावशाली वर्ग अर्थात् ज़मीन्दारों के साथ एक प्रकार का गठबन्धन स्थापित करके उन्हें अपने प्रति निष्ठावान् और वफ़ादार बना लिया था। विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों के कारण चाहे वे पदवी के हो या पदोन्नतिय के या किसी अन्य प्रकार के पुरस्कार प्राप्त करने हेतु, तथा कथित प्रतिभाशाली वर्ग स्वयं को अँग्रेज़ों की सेवा में बनाये रखता था। इस रवैय्ये को अपनाने के कारण देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील रह कर संघर्ष करनेवाले लोगों का मनोब ये हमेशा गिराते रहे। एक ओर अहिंसा और असहयोग को अपना कर संघर्ष करनेवाले लोग थे जिनका नेतृत्व गाँधीजी कर रहे थे। हिंसा या क्रान्ति के माध्यम से स्वतंत्रता चाहनेवालों का समर्थन गाँधीजी को प्राप्त नहीं था। किन्तु दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् वादे के अनुसार भारत का स्वतंत्र होना लगभग तय था। स्वतंत्रता के लिए होनेवाले आन्दोलनों का यह निर्णायक समय था। भारत-पाकिस्तान की माँग को बढ़ावा देने और अपने हितों की संभावनाओं पर विचार करने से भी अँग्रेज़ यहाँ पर नहीं चूके।

संक्रमण के इस दौर में अँग्रेज़ों के पुराने वफादार और खैरख्वाह ने हवा का रुख देख कर कांग्रेस का साथ पकड लिया था। क्योंकि इसी में उनके हित और भविष्य की सुरक्षा थी। किन्तु हुकूमत के इन वफादारों में से कुछ लोग अँग्रेज़ों से इतने अधिक घनिष्ठ संबंध रखते थे कि देश की स्वतंत्रता और अँग्रेज़ों के यहाँ से चले जाने की पूर्ण संभावनाओं को जानकर भी वे अब तक अपने मन की तहों में देश की स्वतंत्रता के सत्य को अपना नहीं पा रहे थे। देश में जब नयी सामाजिक प्रवृत्तियाँ और नयी शक्तियाँ आकार ग्रहण करती जा रही थीं उस

समय वह अभिजात वर्ग जो अब तक अंग्रेज़ों से जुड़ा था, स्वयं को पंगु अनुभव करने लगा था । यह हीनता उन्हें आर्थिक और सामाजिक दोनों ही स्तरों पर अनुभूत हो रही थी । इस नयी तब्दीली से इस वर्ग के "लोगों" के मन में तमाम आशंकायें जन्म ले रहीं थी, जैसे मूल्यहीनता की, संस्कार हीनता की उच्छृंखलता, विघटन आदि की आशंकायें उनके मन में घर कर रहीं थी । "अंग्रेज़ों का जाना उस पूरे वर्ग के व्यक्तित्वहीन हो जाने की सूचना थी ।"[1] इसी प्रकार के लोगों की विभिन्न स्थितियाँ "लोग" में अभिव्यक्त हुई हैं ।

द्वितीय महायुद्ध में इंग्लैंड की जीत पर लोग रावतपुर के राय साहब यशवन्तराय को बधाइयाँ देने के लिए आते हैं । मिठाईयाँ बाँटती हैं । इंग्लैंड की जीत की खुशी का उत्सव राय साहब यशवन्त राय के यहाँ जिस प्रकार से मनाया जाता है वह वस्तुतः अंग्रेज़ सरकार के प्रति उनकी भक्ति के अनुरूप ही है । रात्रि के समय जीत की खुशी में क्लब में डिनर का आयोजन किया जाता है । ऐसे मौके पर भी राय साहब अपना धर्म नहीं छोड़ते और कलाई किये हुए गिलास में शरबत पीते हैं । किन्तु इस दिन किसी अंग्रेज़ के द्वारा राय साहब को शराब पिलाकर उनके धर्म-भंग करने की बात इस प्रकार की जाती है कि "आम और कलक्टर साब, राय साब का बाजू पकरेगा, मिसेज स्मिथ एण्ड मिसेस ब्राउन वन-बाय-वन राय साब का माउथ में वाइन पोर करेगा ।"[2] इसके जवाब में राय साहब अपने शरीर को हिलाकर इस प्रकार कहते हैं कि - "जब मैं इस तरह करूँगा, आप दोनों तो ज़मीन देखेंगे, एण्ड बोथ स्वीट लेडीज़ विल बी इन माई लैप ।"

---

1. लोग, भूमिका, गिरिराज किशोर
2. लोग, गिरिराज किशोर, पृ. 20.

अंग्रेज़ मेमों के प्रति राय साहब के हल्के मज़ाक को कप्तान मिस्टर स्मिथ अपना अपमान समझता है । उस समय तो वह अपना क्रोध दबा जाता है । रूलिंग क्लास का काम्प्लेक्स मिस्टर स्मिथ को हिन्दुस्तान के किसी व्यक्ति को बराबरी का दर्जा नहीं देने देता है चाहे वह कितना ही वफादार व्यक्ति क्यों न हो । राय साहब पर स्मिथ का यह क्रोध बना रहता है । बाद में राय साहब की गाड़ी ब्राउन की कोठी में नहीं घुसने दी जाती है । बलपूर्वक घुसा दिये जाने पर घोड़ियों को पीटकर भगा दिया जाता है । इसमें राय साहब का पोता घायल हो जाता है । इस अपमान से राय साहब बौखला उठते हैं और स्मिथ पर रिवाल्वर तान लेते हैं । किन्तु ब्राउन के बीच में आने से स्थिति कुछ सम्हल जाती है । बाद में भी स्मिथ राय साहब की ज़मीन्दारी में रहनेवाले लोगों को लगातार परेशान करता रहता है । राय साहब अपने साथियों को लेकर कमीशनर से स्मिथ की शिकायत करने जाते हैं । बाद में एक दावत के मौके पर कमीशनर स्मिथ एवं राय साहब का हाथ मिलवाकर उनकी शत्रुता को समाप्त करने के लिए कदम उठाते हैं ।

भारत पर शासन करने के लिए अंग्रेज़ों को निश्चित रूप से इस प्रबल वर्ग की आवश्यकता थी । किन्तु उसके पश्चात उन परिस्थितियों में जब भारत की आज़ादी लगभग निश्चित हो गयी थी और वे दिन करीब आ गये जब कि हुकूमत बदलनी थी, इस अवसर पर अंग्रेज़ों को इन वफादारों की आवश्यकता नहीं रह गयी । अंग्रेज़ भी अब राय साहब यशवन्तराय या उनके वर्ग की अपेक्षा कांग्रेस या मुस्लिम लीग को अधिक महत्त्व देने लगे । दूसरी ओर वह जनता जो अपने ऊपर इनका दबदबा मानती थी और अदब करती थी वह जनता भी इनकी उपेक्षा करने लगी । यहाँ तक कि प्रत्यक्ष अपमान भी होता था।

ऐसे स्थिति में तथा कथित अंग्रेज़ों के वफादार वर्ग की स्थिति किंकर्तव्य विमूढ सी थी ।

बीस वर्ष से राय साहब यशवन्त राय ही मुन्सिपैलिटी के चेयरमैन पद को अलंकृत करते रहे हैं । किन्तु अब राजनीति का रुख बदल गया है । इस कारण उन्हें चुनाव में हार का सामना करना पडता है । राय बहादुर जगदीश शरण, खान बहादुर, इकरामुल हक और उमरासिंह की संगठित शक्ति का सामना करने के लिए राय बहादुर साहब के पुत्र तथा उनके हितैषी शराब से लेकर वेश्यावृत्ति तक का सहारा लेते हैं । किन्तु सभी कुछ व्यर्थ सिद्ध होता है "नाइटहुड" के लिए अपने साथ इकरामुल हक का नाम भेजे जाने पर राय साहब अत्यधिक दुःखी होते हैं । कर्ज से लदे होने पर भी वे और अधिक कर्ज लेकर गवर्नर से मिलने जाते हैं किन्तु बदलती हुई इन परिस्थितियों में उन्हें निराशा ही हाथ लगती है ।

परिवार के लोगों के ऊपर और परिचितों के ऊपर एवं मित्रों की मण्डली में जिस राजा साहब का मान सम्मान और प्रतिष्ठा अन्य किसी से भी बढ़कर थी और जिस यशवन्त राय का व्यक्तित्व सभी पर छाया रहता था वही यशवन्त राय समय के इस परिवर्तनशील चक्र में पडकर स्वयं अपने व्यक्तित्व को ढीला और कमज़ोर महसूस करने लगते हैं । ये सारी स्थितियाँ जहाँ उनके लिये अवाँछित है वहीं अप्रत्याशित भी । इन परिस्थितियों की उलझन एवं खीज को वे नौकरों एवं परिचितों पर उतारते हैं । उन्हें लगता है

कि हर कोई उनके विरुद्ध कोई न कोई षड्यंत्र कर रहा है । राय साहब की भाँति जो अन्य लोग अंग्रेज़ों के वफादार बने रहा करते थे वे अवसरानुकूल अपने को बदल लेते हैं और कांग्रेस की आड में अपनी स्थिति को बनाये रखते हुए व्यावहारिक होने का परिचय देते हैं । किन्तु राय साहब इस अवसरवादिता को स्वीकार न कर पाने के कारण टूट से जाते हैं । अंग्रेज़ों के रोब और रुतबे की आड में पलनेवाले राय साहब उनका साया अपने ऊपर से हटते ही असहाय अवस्था में आ जाते हैं ।

क्लब के बाहर साईसों एवं ड्राइवरों की बातों से तथा टाउन पार्क में बैठे हुए लोगों की बातों से उस समय का परिवेश और भी स्पष्ट होता जाता है । राय साहब यशवन्त सिंह तो उपन्यास के केन्द्र में है उनके साथ देवा, देवा की पत्नी, काका, घर का नौकर, दीना तथा अन्य, कुवर किशोरी रमण राधिकानाथ चतुर्वेदी, जोशीजी आदि के माध्यम से भी सामाजिक और राजनैतिक घटनाएँ उभरती है ये सारी स्थितियाँ राय साहब के साथ सदैव उनकी छाया की भाँति रहनेवाले पोते की स्मृतियों के माध्यम से सामने आती हैं ।

स्वतंत्रता पूर्व की उभरती जन शक्ति के संकेत को भी उमरासिंह इकरामुल हक, डा. चन्द्रा जैसे लोगों में देखा जा सकता है । चमार होने के कारण उमरासिंह को कुचलने की कोशिश भी कम नहीं की जाती है । गान्धीजी की कोशिशों का निरर्थक सिद्ध करने की कोशिश करनेवाले लोग तो थे ही परन्तु इन प्रयासों को अर्थहीन और खोखला मानते थे ये अंग्रेज़ी सत्ता के वफादार ज़मीन्दार

वर्ग के लोग । राय साहब यशवन्तराय और अमर सिंह जैसे लोगों के साथ जन सामान्य में भी उस समय ऐसा वर्ग था । गाँधीजी के सत्याग्रह के बारे में यशवन्त राय का कहना है -"महात्मा का बाना पहनकर सियासत की लड़ाई लड़ना बेईमानी है..... हिन्दुस्तान ऐसा देश है किसी के सामने महात्मा के आ जाने का मतलब उसकी मज़बूरी होती है । या अगर महात्मा जी के इस जनाना धर्म के सामने सरकार घुटने टेक गयी तो मेरी नज़रों से वह भी गिर जायेगी ।"[1]

यहाँ तक कि आज़ादी मिलने के बाद भी यशवन्त राय यह स्वीकार नहीं कर पाते कि आज़ादी गान्धी की बदौलत या सत्याग्रह की बदौलत मिली है और न ही वे यह स्वीकार कर पाते है कि अंग्रेज़ सरकार ने हार मानी है - वे कहते हैं "अंग्रेज़ों का अपने आप मुल्क छोड़कर चले जाना गान्धीजी की जीत है ? किस मुँह से गाँधी उसे जीत मानेंगे ।........... शिकार के बाद शेर को लौटते देखकर अगर जंगल के जानवर ये समझे कि शेर हमारे डर से लौट कर जा रहा है तो इसमें शेर का क्या कसूर ।"[2]

इन तमाम वक्तव्यों में जहाँ अंग्रेज़ों के प्रति अन्ध भक्ति का भाव प्रकट होता है वही उससे भी कहीं अधिक भविष्य की असुरक्षा की चिन्ता का भाव है । सत्ता के साथ तथा कथित वर्ग का जो गठ बन्धन था वही

---

1. लोग, गिरिराज किशोर, पृ. 68
2. वही, पृ. 129.

गठ बन्धन वस्तुतः इनकी शक्ति थी और सुरक्षा भी था । अब उस गठ बन्धन के टूट जाने पर उन्हें अपना पूरा भविष्य आशंकामय प्रतीत होता है । यशवन्त राय की कमज़ोरी संभवतः यही है कि उन्होंने अपने आपको अंग्रेज़ी शासन और उस कौम से न केवल इरादतन बाह्य तौर पर जोड़ा बल्कि मानसिक रूप से भी जोड़ बैठे । इसी कारण वे अगली हुकूमत के साथ अगला गठबन्धन न बना सके और इसी के अभाव में ढहते प्रतीत होने लगे ।

नीदरसोल द्वारा कांग्रेस ज्वाइन करने की बात कहने पर भी वह इस कटु यथार्थ को अनदेखी कर जाते हैं । उन्हें सबसे अधिक चिन्ता इसकी है कि "ज़मीन्दारों की क्या स्थिति होगी ।.......हम लोग भी थैले लटकाये सड़कों पर घूमा करेंगे । नौकरों के सौ-सौ साल पुराने घरों से कहना होगा आप लोग अपना इन्तजाम करें ।"[1] इसका आभास उन्हें अपनी गिरती आर्थिक स्थिति से हो जाता है । अन्त में गवर्नर मिलने के पश्चात् ही उन्हें पूर्ण रूप से इस बात का एहसास होता है कि समय बहुत अधिक बदल चुका है ।

देश की संक्रमणशील परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के लोगों, वर्गों की भूमिका जहाँ स्पष्ट होती है वहीं हम देखते हैं कि हर समय या हर काल में पूँजीवाद का गठबन्धन सत्ता के साथ बना रहता है और दोनों ही एक दूसरे को पुष्ट करते हैं । तत्कालीन संयुक्त प्रांत के पश्चिमी जिले के एक भाग से संबंधित यह उपन्यास अप्रत्यक्ष रूप से समूचे देश की स्थितियों की ओर संकेत करता है । रावतपुर के राय साहब यशवन्तराय जिन परिस्थितियों से गुज़र रहे थे

---

1. लोग, गिरिराज किशोर, पृ. 130.

ठीक वैसी ही स्थिति हर राय साहब की थी । उपन्यास के संदर्भ में बताते हुए गिरिराज किशोर स्वयं कहते हैं कि ये स्थितियाँ एक सामन्ती परिवार से जुड़े होने के कारण उनके लिये जानी पहचानी हैं । "मेरा एक ऐसा परिवार था जिसको थोडा बहुत सामन्तवादी कहा जा सकता है । तो उस परिवार में मैं ने उसका अवक्षय भी देखा था और उसको एक समान जनक रूप में भी देखा था । उन लोगों की कुछ सनके थी, कुछ मान्यताएँ थीं, कुछ संघर्ष थे वे कहीं न कहीं अहम का परंपराओं का और एक रूप अपनी सीमाओं से निकलने का ज़्यादा बडा संघर्ष रहा । इसके पात्र जैसे बाबा है, वो एक ऐसे व्यक्ति हैं जो एक खास तरह के atmosphere में, वातावरण में पले बड़े हुए हैं और उसके बाद उसी रूप में वे चलना चाहते हैं । जो परिवर्तन सामाजिक क्रान्ति के रूप में कांग्रेस के माध्यम से या किसी और माध्यम से हो रहे थे उसके साथ वह चल पाने में अपने आप को असमर्थ पा रहे थे । यही कारण था कि उन्होंने अंग्रेज़ों को अपने समाज से अधिक महत्व दिया । उन अंग्रेज़ों को जो लोग मानते थे, उन्होंने उनको अपने जीवन में ज्यादा महत्व दिया और उस महत्व से अपने अलग कर पाने की असमर्थता में वे उनके साथ अधिक देर तक जुड़े रहे ।"[1] इससे अलग हटकर उन लोगों की बात अलग ठहरती है जिन्होंने अपने आपको सुरक्षा के उद्देश्य से कांग्रेस के साथ जोड लिया था । ऐसे लोगों की संख्या कदापि कम नहीं है । किन्तु यशवन्तराय जैसे लोगों में अंग्रेज़ों द्वारा अपमानित होकर भी उनके प्रति यह विश्वास बना रहा कि - "अंग्रेज़ जैसी समझदार कौम दुनियाँ में कोई नहीं ।"[2]

"लोग" जहाँ द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति तक की सामाजिक एवं राजनैतिक स्थितियों का उद्घाटन करता है जो कि

---

1. गिरिराज किशोर, साक्षात्कार से, "लोग" : एक प्रश्नोत्तर
2. लोग, गिरिराज किशोर, पृ. 128.

इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, साथ ही स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की संभावनाओं पर भी प्रकाश की हल्की किरण फेंकता है । यही कारण है कि इस उपन्यास को हमें आज के समूचे परिवेश से काट कर देखने की आवश्यकता नहीं है । समय के साथ बदलने वाले रवैय्ये और स्वार्थ के लिए टूटने जुडनेवाले गठबन्धन यहाँ बारीकी से उभरते हैं । इसी कारण यह प्रामाणिक और विश्वसनीय भी जान पडते हैं ।

सामन्तवाद और परिवर्तनशील शक्तियों का द्वन्द्व : "जुगलबन्दी"

"जुगलबन्दी" भी सामन्ती व्यवस्था के चरमराने की कथा प्रस्तुत करनेवाला उपन्यास है । स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता के उपरांत ज़मीन्दारों की मानसिकता और उनके जीवन की अंतरंग स्थितियों का चित्र उपन्यास में मिलता है साथ ही यह उपन्यास अगली पीढी की मानसिकता को भी गहराई में उतर कर प्रस्तुत करता है । पीढियों की मानसिकताओं का यह अन्तर जहाँ राजनैतिक स्तर पर स्पष्ट दीख पडता है वहीं सामाजिक और पारिवारिक स्तर भी इस अन्तर से अछूता नहीं है ।

भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के चन्द वर्षों पूर्व के कालखण्ड के परिप्रेक्ष्य में टूटते हुए भारतीय सामन्त वर्ग के चरित्र और उनकी नियति को "जुगलबन्दी" में विषय के रूप में अपनाया गया है । अंग्रेज़ शासक वर्ग से अपनी नियति को अन्तिम रूप से जोड कर देखनेवाले ज़मीन्दार वर्ग के प्रतिनिधि शिवचरण सिंह ही उपन्यास के केन्द्र में है । शिवचरण सिंह जी के जीवन में

कुछ दुर्घटनाएँ एक साथ घटित होती हैं - उस अँग्रेज़ी सत्ता को जो कि शिवचरण जी की आस्था का निर्बाध केन्द्र है । शिवचरण बाबू "वार फण्ड" के लिए पचास हज़ार रूपये की रकम देने में असमर्थ पा रहे हैं । यह स्थिति जहाँ उन्हें स्वयं अपमानजनक लग रही है वहीं पर क्योंकि समय परिवर्तन शील है और अँग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष जारी है, इस कारण सरकार के सन्देह की यातना को भी वे भोग रहे हैं ।

वार फण्ड के लिए पचास हज़ार का प्रबन्ध करने के लिए शिवचरण बाबू अपने पुत्र बीरू को मेरठ भेजते है । सफर के दौरान जहाँ बीरू स्वयं गोरे सिपाहियों द्वारा अपमानित होता है वहीं एक गरीब भिखारिन पर गोर सिपाहियों द्वारा किये गये सामूहिक बलात्कार के दृश्य को आँखों के सामने स्पष्ट रूप से देखने के कारण वह अपना मानसिक सन्तुलन खो बैठता है और उसकी स्थिति अपाहिज सी हो जाती है ।

इन परिस्थितियों में वार फण्ड का चन्दा न दे सकने के कारण बन्दी की नियति तक वे पहुँच जाते हैं । इस कैद से मुक्ति पाने के लिए उन्हें अपनी बहू के जेवर रखने पडते है । रेडियों व अखबारों पर अगले दिन निकलवा दिया जाता है कि "हुकूमत-ए-बरतानियाँ के निहायत खैरख्वाह दोस्त कुवर शिवचरण ने "वार-फण्ड" में अपने घर के सब जेवरात दे दिये । कुर्बानी की यह मिसाल अपना सानी नहीं रखती ।"[1]

---

1. जुगलबन्दी, गिरिराज किशोर, पृ. 93.

एक रात की सजा काटकर आनेवाले शिवचरण बाबू को जहाँ सरकारे-ए-बरतानियाँ के और अपने बीच के खोखलेपन का एहसास होता है वहीं अब वे कांग्रेस के साथ जुड़ने की स्थिति में भी नहीं रह जाते हैं । वे कहते है- "बहू के जेवर देकर छूटा हूँ । अमानत थे । पर सह हजम करके मुझे सरकार ने अपना दोस्त मान लिया । तब से लगने लगा, मैं इस जमाने को दूसरी नज़र से देख रहा हूँ ।"[1]

दूसरी तरफ शिवचरण बाबू का अवैध पुत्र चतर सिंह "वार-फण्ड" में रुपये नहीं जमा करता है । इस कारण कांग्रेसी घोषित कर दिया जाता है । और यहीं से चतर सिंह कांग्रेसी बनकर उन्नति के पथ पर अग्रसर होता है। और शिवचरन बाबू अपनी अंग्रेज़ परस्ती के कारण भारत की आज़ादी को असह्य स्थिति मान बैठते हैं ।

अंग्रेज़ परस्त इस ज़मीन्दार, शिवचरण बाबू की दशा भी ऐसी है कि अंग्रेज़ों के अपने विरुद्ध होने पर भी स्वयं अंग्रेज़ों के विरुद्ध नहीं आ पाता है । अंग्रेज़ों के भारत छोड़ने पर जहाँ सारे देश में खुशी की लहर दौड़ती है वहीं शिवचरण बाबू के लिए यह स्थिति असहनीय है ।

एक ही दौर में यहाँ पर दो पीढ़ियाँ एक साथ उभरती हैं । एक शिवचरण बाबू की पीढ़ी जोकि अंग्रेज़ी सरकार के प्रति अतिरिक्त

---

1. जुगलबन्दी, गिरिराज किशोर, पृ. 127.

रूप से निष्ठावान है और उस कौम की भक्त भी । दूसरी पीढ़ी यहाँ पर चतर सिंह और बीरू की है जिसमें संभवत: शिवनाथ भी शामिल नज़र आते हैं । अपने साथ हुई दुर्घटना और चारों तरफ के माहौल का परिचय प्राप्त पाने के पश्चात् बीरू को बदलती परिस्थितियों की वास्तविकता का आभास पहले ही मिल जाता है । वह स्थितियों को पहचानता है इसी कारण कहता है - "लडाई चल रही है..... अब कोई रूपया नहीं फँसाना चाहता । कांग्रेस ज़ोर बान्धे है । सब टूटी नाँव में बैठे हैं ।"[1]

किन्तु शिवचरण बाबू विश्वयुद्ध में अंग्रेज़ों की सहायता करना अपना फर्ज़ समझते रहे । उनका विचार है कि लडाई खतम हो जाने के पश्चात् जब हुकूमत ठण्डे दिमाग से सोचेगी कि टेढे वक्त कौन काम आया तो उनका नाम सर्वोपरि आयेगा । इसी कारण वे जान की परवाह न करके हुकूमत की मदत करने को तैयार हो जाते हैं ।

जहाँ अब छोटे बडे अनेक व्यक्ति गाँधीजी का गुणगान करने लगे हैं वही शिवचरण बाबू गाँधीजी के नाम मात्र से भी क्रोधित हो उठते थे- "कौन है गांधी महात्मा ? वायसराय या गवर्नर ? इन लोगों को पता नहीं कौन बता देता है इनके नाम । ये लोग अपना नाम तो कर ही रहे हैं, इन बेचारे गरीबों की ज़िन्दगी खराब करने पर भी आमादा है ।"[2]

---

1. जुगलबन्दी, गिरिराज किशोर, पृ. 157

2. वही

किन्तु एक रात की सजा काट लेने के बाद उनके विचारों में परिवर्तन आता है और वे कहते हैं - "अब मेरे लिए इज्जत का मतलब बदल गया है । वह हमारे रखे नहीं रखी जाती । कल शाम तक जो शिवचरण था । उसे मैं वहीं छोड आया । अब मैं कुछ नहीं रहा । तुम आकर देखो तो शिवचरण कमीश्नर के उसी टेन्ट में बुझी अंगीठी के पास राख की तरह पडा होगा । अगर मैं ढूँढकर फिर जिलाना चाहूँतो वह नहीं जी सकता ।"[1]

शिवचरण बाबू के विचारों में परिवर्तन तो अवश्य आता है परन्तु नयी स्थिति के अनुसार स्वयं को ढालना उनके लिये नामुमकिन सा है । वे इस बात को स्वीकार नहीं कर पाते कि "कुछ दिनों में मुल्क आज़ाद हो जायेगा....... कउन्सिल हाउस और जिन इमारतों की सीढियों पर अंग्रेज़ चढते उतरते थे (या फिर अभी हैं) वहाँ कुछ दिनों में वे लोग खडे रहा करेंगे जो जुलूसों में भौंका करते हैं ।" अंग्रेज़ परस्ती के कारण उनका विश्वास यही है कि लोग देश को चला नहीं पायेंगे । अंग्रेज़ वापस आ जायेंगे ।

अंग्रेज़ों के द्वारा लडाई का खर्च - नवाबों, ज़मीन्दारों एवं रईस वर्ग के लोगों पर डाल दिया गया था और "वार फण्ड" के नाम पर धन राशि का संग्रह भी उन्होंने किया । सत्ता यहाँ अपना संबंध सदैव ऐसे लोगों से रखती है जो पूँजीपति है । जो संबंध दोनों ने आपस में बनाये है उनमें धन न देने पर उसे एक प्रकार के छीन कर भी उसे कुर्बानी का नाम दे दिया जाये तो वह विश्वसनीय बन जाता है । क्योंकि तथा कथित ज़मीन्दार वर्ग हर कीमत पर ईनाम और सम्मान का भी भूखा रहता है ।

---

1. जुगलबन्दी, गिरिराज किशोर, पृ. 92.

जुगलबन्दी में चतर सिंह "वार फण्ड" का पैसा न जमा करने के कारण जब कांग्रेसी घोषित कर जेल में डाल दिया जाता है तो वहाँ पर कांग्रेसियों की वास्तविकता का भी उद्घाटन होता है । इस वास्तविकता से समझौता कर पाना भी चतर सिंह को मुश्किल लगता है । जहाँ अंग्रेज़ों द्वारा वार फण्ड के नाम पर पैसा वसूल करना, न देने पर कांग्रेसी घोषित कर जेल भेजना या रेल में जगह न देना, भारतीय स्त्रियों के साथ बलात्कार करना वास्तविकता हैं वहीं पर कांग्रेसियों द्वारा थोडे से त्याग के बदले अनुपम सुख भोगों की चाहत भी वास्तविकता ही है । वे जेल के नियमों को तोडते है - स्वयं अपने ऐशो आराम के लिए । बात बात में वे अपने को राजनैतिक कैदी कहकर अधिकारियों को डाँटते हैं और ए-क्लास की सुविधाएँ चाहते हैं । गान्धीजी के द्वारा बताए सादे जीवन का अनुसरण तो वे मज़बूरी में करते हैं । डा. चरण और सुमत बाबू अनशन उस समय समाप्त कर देते हैं, जब उन्हें ए-क्लास की सुविधाएँ प्राप्त हो जाती हैं । राजकुमार जैसे लोग है जो कि लाठी-चार्ज के समय तो छिप जाते हैं परन्तु बन्दी बनकर आ जाते हैं । जेल में उनके लिये शराब से औरत तक उपलब्ध है - ये सारी सुविधाएँ इस कारण कि वे राजनैतिक, कैदी है । इन सुविधाओं को वे अपना हक मानते हैं । किन्तु संभावनाएँ जो सच्चाई की तरह झलकती है उन्हें स्पष्ट करता हुआ चतर सिंह कहता है - "यह कुर्बानी इन लोगों की दौलत बन जायेगी चाचा जी । ये लोग उस कुर्बानी के मोह से जिन्दगी भर जुडे रहेंगे । आगे चलकर भी एक दूसरे के खिलाफ भूख हडताल करेंगे ।"[1]

उधर बीरू अंग्रेज़ सिपाहियों द्वारा की गयी खौफनाक हरकत का चश्मदीद गवाह बन कर अपाहिज हो जाता है । सिपाहियों का वह

---

1. जुगलबन्दी, गिरिराज किशोर, पृ. 162

अत्याचार अगर समूची अँग्रेज़ जाति द्वारा भारत की जनता पर किये जा रहे अत्याचार का द्योतक है तो बीरू की अपाहिज अवस्था भी समूचे मुल्क के लोगों की अवस्था है । बीरू कहता है - "अँग्रेज़ों को देखकर हम को लगता है जब तक ये मुल्क में रहेंगे हम और बीमार हो जायेंगे । हमारे हाथ जबान सब टाँगों की तरह हो जायेंगे । पता नहीं कितने लोगों को हमारी इनकी वजह से हमारी तरह ज़िन्दगी बसर करनी पड़ रही है ।"[1]

कुँवर शिवचरण में भी ज़मीन्दारी आभिजात्य है फिर भी उनके व्यक्तित्व में मानवीय स्पन्दन का जो अंश मिलता है उसे देखते हुए वह व्यक्ति स्वीकरणीय हो जाता है । बहू के साथ सद्व्यवहार, बहू जी के साथ स्थापित संबंध की मानसिकता, बिछुड़े हुए बच्चे के प्रति सहानुभूति ये सभी उनके चरित्र में मानवीयता की झलक देते हैं । किन्तु युग की परिवर्तित परिस्थिति में उनकी लाचारी भी प्रकट होती है - "मैं तो कबूतर की तरह आँखें बन्द करके वक्त के पंजों का इन्तज़ार करता हूँ । हालाँकि दोनों तरफ से आँख बन्द करना मुश्किल होता है ।"[2]

समय के साथ चलने की ताकत इस अँग्रेज़ परस्त ज़मीन्दार को नहीं मिल जाती है । इस कारण वे स्वयं चरमराकर टूट जाते हैं और अंत में आत्म हत्या करने पर विवश हो जाते हैं । वे न तो स्वयं नए ज़माने के साथ जुड़ पाते हैं और न ही अपने पुत्र बीरू को चलने दे पाते हैं । फलतः

---

1. जुगलबन्दी, गिरिराज किशोर, पृ. 157
2. वही

बीरू भी अपाहिज होने की स्थिति में आ जाता है। किन्तु उनकी अवैध सन्तान चतर सिंह न केवल समय के साथ चलता है बल्कि तेज़ी से बढ़कर सफलता की मंजिल पर चला जाता है। सभाओं में अब चतर सिंह की जगह जहाँ पहली पंक्ति में है वहीं शिवचरण बाबू को तीसरी पंक्ति में बैठने का संकेत कर दिया जाता है जिसे वे स्वीकार नहीं कर पाते हैं। फिर भी वे बहूजी से कहते हैं - "चतर चल सकता है उसे तो चलने देना चाहिए। कदमों को जब चलने की आदत नहीं होती तो इनसान यही सोचा करते हैं कि वह राह गलत है वह नहीं। इसी सोचने में वक्त निकल जाता है।"[1] अन्ततः उन्हें प्रतीत होने लगता है कि नई पीढ़ी ही समझदार है जिसने अवसर के अनुरूप अपने आप को बदल लिया है।

किन्तु इन तब्दीलियों के बीच जनता की स्थिति में शायद ही कोई अन्तर आया है। स्वतंत्रता पूर्व अंग्रेज़ों के अत्याचार भारतीय जनता बरदाश्त करती थी और अब सत्ता का हस्तान्तरण हुआ है। और जिनके हाथों अब सत्ता के रहना है वे तो आरंभ से ही अपने स्वार्थों और सुखभोगों की ही चिन्ता में है तो "आगे कौन हवाल ?" का सवाल स्वाभाविक रूप से उठ खड़ा होता है। अंग्रेज़ों का रईसों के साथ गठबन्धन था, उन लोगों के साथ गठबन्धन था जो अपना प्रभाव रखते हैं। कांग्रेस भी इस रवैय्ये को ही पूर्ण रूप से अपनाती है। शासन वास्तव में सत्ता और पूँजीवादी संस्कृति की जुगलबन्दी है। चाहे जिस दौर का शासन हो, जिसका शासन हो। यह जुगलबन्दी तो चलती ही रहेगी। सत्ता लोलुपता से जुड़ी तमाम चालों और

---

1. जुगलबन्दी - गिरिराज किशोर - पृ. 171

कोशिशों से राजनीति का इतिहास भरा पड़ा हुआ है । जिन मूल्यों के लिये संघर्ष होते हैं वे मूल्य तो संघर्ष के साथ ही तिरोहित हो जाते हैं और मूल्यहीनता ही बरकरार रह पाती है । इस कारण अक्सर देखा जाता है कि राजनीतिक दृष्टि के साथ सत्तावादी स्थिति और मानवीयता का विघटन स्वतः जुड़ जाते हैं । इस दृष्टि से देखा जाये तो राजनीति का वर्तमान और भूत सब एक ही ठहरते हैं ।

राजनैतिक स्थितियों एवं सामन्तवाद के बदलते चेहरे : "ढाई घर"

"ढाई घर" उपन्यास जिसे कि साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया, इसमें एक ओर पराधीनता के युग में उत्पन्न व्यवस्था और नवजागरण का चित्र है तो दूसरी ओर स्वतंत्रता के बाद जन्मे नये मूल्यहीन संदर्भों एवं असन्तोष के साथ युवा मन के विद्रोह का धरातल उभरता है । अनेक घटनाओं के द्वारा चित्रित जीवन के अनेक पहलुओं को चित्रित करके गिरिराज किशोर ने इसी बीच संबंधों के तेज़ी से बदलते क्रम संदर्भों को भी निरूपित किया है । एक प्रकार से देखा जाये तो ढाई घर को "जुगलबन्दी" का रचनात्मक विकास भी कहा जा सकता है । ढाई घर की भूमिका "यह उपन्यास क्यों" में गिरिराज किशोर कहते हैं कि "जब मेरे सामने बिशन भाई का यह प्रस्ताव आया कि मैं जुगलबन्दी जैसा ही उपन्यास लिखूँ तो ऐसा नहीं कि मैं यह समझा न हूँ कि इस वाक्य में व्यंजना क्या है, लेकिन न जाने क्यों वह वाक्य ज्यूँ का त्यूँ मेरे दिमाग में उतर आया । मेरे अन्तरमन में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ - क्या वास्तव में "जुगलबन्दी" में सब कुछ कहा जा चुका है, उसके अलावा कुछ नहीं कहना । लगभग ऐसा ही प्रश्न तब भी उठा था जब लोग लिखने के बाद

जुगलबन्दी लिखने की बात दिमाग में आयी थी ।"[1] समय के सभी आयामों तक पहुँच पाने की जिज्ञासा लेखक के इस वक्तव्य में दृष्टिगोचर होती है । संभवतः सभी आयाम इसमें संकेतित न भी हो पायें, हो फिर भी यह कहना कदापि अनुचित न होगा कि "ढाई घर" एक व्यापक समय की कथा है और समय की असंख्य संक्रमणशील स्थितियाँ इसमें उभर कर सामने आती हैं ।

"ढाई घर" की कथा स्वतंत्रता पूर्व के तथा पश्चात् के राय परिवार के दो भिन्न बिन्दुओं के बीच की कडी बने हुए भास्कर राय द्वारा आत्म कथात्मक शैली में कही गयी है ।"1857 के विद्रोह के बाद अंग्रेज़ और वफादार जमीन्दार एक दूसरे के काफी करीब आ गये । बागी ज़मीन्दारों को बेदखल किया गया और वफादार ज़मीन्दारों को और करीब लाने की कोशिश की गयी । अंग्रेज़ अपने लिए एक हिमायती वर्ग का निर्माण करना चाहते थे जो उनके शासन का मज़बूरी से समर्थन करता रहे । उन्होंने इसके लिए ज़मीन्दारों को प्रोत्साहित करना शुरू किया । ज़मीन्दार उनके शासन के सबसे शक्तिशाली रखवाले बन गये । 1857 के विद्रोह की असफलता ने यूँ भी उन्हें नपुंसक और डरपोक बना दिया था वे अंग्रेज़ परस्त होते गये । अन्दर से रूढिवादी बने रहे, पर रहन सहन में अंग्रेज़ों की नकल करने लगे । दिन में पाँच बार दाढी बनाने लगे । सूट-बूट-हैट संस्कृति के अनुयायी बन गये पर उनका सामाजिक और नैतिक दृष्टिकोण पहले की तरह संकुचित रहा । वे दोहरा जीवन जीने लगे । इस कारण उनके जीवन में, जीवनशैली में तरह तरह के अन्तर विरोध पैदा होते गये और वह अन्दर ही अन्दर खोखले होते गये ।"[2] "ढाई घर" का

---

1. यह उपन्यास क्यों [ढाई घर की भूमिका], गिरिराज किशोर
2. टूटती परंपरा : टूटते लोग, सत्यकाम, समीक्षा 1991.

केन्द्र पात्र जहाँ एक ओर घटित घटनाओं का रोचक रीति से विवरण देता है वहीं तटस्थ दृष्टि से उनका विश्लेषण भी प्रस्तुत करता है । उपन्यास एक ओर पराधीनता के समय में व्यवस्था तथा उभरती जागरण लहरों का चित्र प्रस्तुत करता है वहीं पर स्वतंत्रता के बाद जन्मे नये मूल्यहीन संदर्भों को भी प्रस्तुत करता है । अनेक घटनाओं द्वारा चित्रित जीवन के अनेक पहलुओं को प्रस्तुत करते हुए कथाकार इसी बीच तेज़ी से बदलते जा रहे संबंधों के संदर्भ को भी प्रस्तुत किया है ।

"ढाई घर" के केन्द्र में एक राय परिवार है जिसके मुखिया हैं हरी राय या बड़े राय । बड़े राय को अपनी तथा परिवार की प्रतिष्ठा का ध्यान हमेशा बना रहता है । हरी राय पूरे परिवार को अपने अनुसार चलाना चाहते हैं किन्तु यह अन्त तक संभव नहीं हो पाता है । स्वतंत्रता के पश्चात् बहुत से परिवर्तन आने लगते हैं । लोगों का विपरीत आचरण, बेटे अरूण और भाईयों का बदला हुआ व्यवहार उन्हें अत्यधिक आघात पहुँचाता है और वे स्थिर नहीं रह पाते हैं । मनुष्यता का भाव यद्यपि उनमें था फिर भी युग के परिवर्तन के साथ मिटते हुए अपने वंश को देखते हुए दुखी अवस्था में वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं ।

बड़े राय के दूसरे भाई कृष्ण राय स्वार्थी एवं अहंकारी होने के साथ अमानुषिक प्रवृत्ति के भी हैं । अपनी पत्नी पर वे बाँझ होने का आरोप लगाते है जिसे वह अन्य पुरूष के माध्यम से गलत साबित कर स्वर्ग सिधार जाती है

तत्पश्चात् कृष्ण राय एक दूसरी जाति की स्त्री से विवाह कर लेते हैं । वे न अपने परिवार के प्रति ईमानदार रह पाते है न तो नौकरी के प्रति वफादार रह पाते हैं और न ही जमीन्दारी को ही चलाने में समर्थ हो पाते हैं ।

तीसरे भाई राघव राय प्रारंभ में प्रगतिशील विचारों एवं उदार प्रकृति के दीख पड़ते हैं । निसन्तान होने के कारण बड़े राय के दूसरे पुत्र अरूण को गोद ले लेते हैं । बाद में अरूण के जीवन और उसके विकास मात्र को ध्यान में रखते हैं और बड़े राय के प्रति उनका रूख भी काफी हद तक उपेक्षापूर्ण हो जाता है । भास्कर बड़े राय का पुत्र है । राय कुल के गौरव को अपने में समेटने का प्रयत्न करता यह पात्र तत्कालीन स्थितियों में अहंकारवश न तो कुछ पढ पाता है और न हीं अनुगामी होने के कारण कुछ बन पाता है । भास्कर के तीन विवाह हुए - पहली पत्नी भयंकर रूप की बीमारी से ग्रस्त थी । दूसरी पत्नी कला से दो सन्तानें सोना और रघुवर हुए । तत्पश्चात् वह भी चल बसी । तीसरी पत्नी सारंगा कम उम्र की होने के साथ-साथ कम अकल की भी थी । जहाँ कला, क्रांतिकारी जगन की बहन होने के कारण सदैव बन्धन की विरोधिनी और स्त्री चेतना की समर्थक थी वहीं सारंगा संकुचित मनस्थिति के कारण अनेक समस्याएँ खडी करती थी । इन सभी के बीच भास्कर राय का स्वतंत्र व्यक्तित्व बन नहीं पाता हैं । वह न तो बड़े राय का अनुगामी बन सामन्ती मूल्यों को सम्हाल पाता है और न ही नये नये मूल्यों के बहाव में अपने परिवार पर अंकुश लगाने में समर्थ हो पाता है ।

बड़े राय की पुत्री रानी का जीवन ससुराल में कठिनाइयों एवं यातनाओं से भरा है । लगभग यही स्थिति भास्कर राय की पुत्री सोना

की भी होती है । यद्यपि राय परिवार की लडकी का नौकरी करना परिवारवालों के लिए असह्य है फिर भी सोना पढ लिख कर अपने पैरों पर खडी होती है ।

रघुवर को प्रारंभ से ही सामन्ती तौर तरीके उचित नहीं लगते हैं । प्रगतिशील विचारधारा रखनेवाला वह चिन्तनशील युवक जब स्वतंत्रता के बाद जगन मामा के बहाने मन्त्रियों का सामन्ती रूप और स्वार्थी प्रवृत्ति को देखता है तो उसका विद्रोह फूट पडता है ।

बडे राय की प्रतिष्ठा धीरे धीरे झुकती चली जाती है । जीवन के अन्तिम दिनों में वे बिलकुल ही लाचार स्थिति में पहुँच जाते हैं, और वे कहते हैं -"परन्तु मैं तुम्हारा भविष्य नहीं अतीत हूँ - पसन्द करो या ना करो पर उसे स्वीकारना हर एक की मजबूरी है ।"[1] ज़मीन्दारी प्रथा में अनेक विकृतियाँ रही है जमीन्दारी सदैव ही पूँजीवादी सभ्यता पर ही आधारित रही है और सत्ता का गठबन्धन भी हमेशा से पूँजीवाद के साथ रहा है । "ढाई घर" की कथा के मूल में भी इसी गठबन्धन की और उसके टूटने-जुडने की ही कथा है । स्वयम् गिरिराज किशोर ने यह माना है कि यह एक लम्बी उठानवाली टूटी-फूटी कथा है जो एक समाज से दूसरे समाज में बदलते संबंधों को रेखांकित करती है ।[2] "ढाई घर" में हरीराय और अंग्रेज़ सरकार के लोगों के साथ के

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ.
2. यह उपन्यास क्यों {ढाई घर की भूमिका}, गिरिराज किशोर

घनिष्ठ संबंध विस्तारपूर्वक दिखाये गये हैं । जिले के प्रतिष्ठित अफसरों के साथ हरी राय के घने संबंध है, उनके मजिस्ट्रेट होने तक की बात उठती है । ये संबंध मात्र ज़मीन्दारी के प्रभुत्व का एक हिस्सा नहीं हैं । बड़े राय अंग्रेज़ों के साथ उठते बैठते हैं वे उनकी क्लब के सक्रिय सदस्य है । उनके साथ ब्रिज खेलते हैं । जमीन्दारी और अफसरशाही का जो गठबन्धन है उस गठबन्धन से उभरी पूँजीवादी संस्कृति यहाँ उभरकर सामने आती हैं ।

हरी राय का बेटा भास्कर राय, अपने एक तरह के आशिक किशन बाबू जो अपनी हरकतों के लिए शहर भर में बदनाम थे - उन्हीं के चक्कर में पडकर बदनामी झेलता है । पण्डित रामदीन के लड़के जानकी राम के द्वारा फिकराकशी करने पर वह उसे चाकू मारकर घायल करता है । सहपाठी ब्राह्मण लडके का कत्ल करने के प्रयास की यह घटना मिस्टर वुड, मिसेस वुड और मिस्टर डिक के हाथों इतनी सामान्य ढंग से दबा दी जाती है कि राय परिवार की इज्जत पर किसी भी प्रकार की आँच नहीं आने पाती है । यह सत्ता के साथ जमीन्दारी के गठबन्धन के कारण ही संभव हो पाता है ।

यहीं पर दूसरी ओर गठबन्धन का एक दूसरा पक्ष भी उभर कर सामने आता है । अश्व वैसे शक्ति का पैमाना होते हैं । जमीन्दारों की तो अपनी अश्व शक्तियाँ कभी प्रशस्तियाँ प्राप्त करती रही है । बड़े राय को वेलर नस्ल का घोडा बहुत प्यारा था । पहले जो जार्ज नाम का घोडा उन्होंने एक अंग्रेज़ से खरीदा था, उन्हें बहुत प्रिय था, पर बेटी रानी के पति ने अपने विवाह के समय हथिया लिया था । जब वेलर नस्ल का उनका सबसे प्रिय घोडा था सफेदा । इतना उमदा किस्म का घोडा था सफेदा कि देखनेवाले देखते रह जायें ।

एक बार हरी राय की गिग कलक्टर की मेम साहब की गाडी से भिड जाती है और गाडी उलट जाती है, गिग भास्कर राय चला रहा था और घोडा "सफेदा" उस समय बिगडा हुआ था । मेम साहब को चोट आ गयी । घटना इतनी ही थी परन्तु राय साहब के अस्तबल से सफेदा की चोरी हो जाती है और खुनी बाग में उसकी लाश गोलियों से भुनी हुई पायी जाती है । यहाँ न हरी राय कुछ कर पाते हैं और न परिवार के कोई सदस्य । इस घटना में हम देखते हैं कि ज़मीन्दारी और सत्ता को अफसरशाही का गठबन्धन कहीं किसी गहराई तक पहुँचनेवाला नहीं अपितु मात्र सतही संबंध है । अर्थात् ब्रिटिश सल्तनत के लोग तभी लगातार जमीन्दारों का पक्ष लेते हैं । जब मामला ज़मीन्दारो और अपने ही देश की जनता के बीच में हो । इससे जमीन्दारी प्रथा भी बरकरार रहती है और लोगों में सत्ता का भय भी बना रहता है । सत्ता के ऊपर बुरी नज़र पडने का शक मात्र भी अगर पैदा हो जाये तो सलतनत जमीन्दारी को उडा देने के लिए तैयार रहती है ।

जमीन्दारी के उत्कर्ष और पतन की कथा है ढाई घर । इसी के साथ ब्रटीश सरकार के सत्ता विस्तार की कथा आरंभ में है तो बाद तक आते आते उसके अंत को भी हम देखते हैं । जहाँ आन्दोलन की घटनाओं की सूचना बीच बीच में हैं वहीं स्वतंत्रता प्राप्ति की स्थितियाँ भी पूर्णतः उभरी हैं । अधिकार के प्रभुत्व एवं दूसरों को शोषित करने की साजिश को यदि जमीन्दारी से जुडी संस्कृति की निजता मान लें तो भी राय परिवार के पतन के साथ इस संस्कृति का अंत कदापि नहीं हो जाता । स्वतंत्रता के बाद विकसित नयी अफसरशाही और उसके साथ जुडे हुए अधिकार केन्द्रों की सूचना भी हम उपन्यास में पाते हैं । प्रभुत्व एवं शक्ति भी हम देखते हैं कि सदैव सत्ता केन्द्रित रही है । सत्ता के परिवर्तन के अनुरूप वह भी बदलती है । इसी कारण ढाई घर की परिणति उसी परिवर्तन की वैचारिक प्रश्नाकुलता के साथ

होती है । इस परिवर्तन की प्रतीति हरी राय के पौत्र रघुवर को होती है । इस कारण कि -"तब आदर्श मूल्य हुआ करते थे, अब मूर्खता हैं ।"[1] वे जगन बाबू जिन्होंने कभी अपने आपको गान्धी जी के रंग में रंगलिया था वही कहते हैं कि आदर्शवाद में कुछ नहीं रखा है । शायद देश को आदर्शवाद की नहीं अवसरवाद की आवश्यकता है ।

रघुवर अच्छे पद पर है तो वह भी जगन बाबू के संपर्क से प्राप्त सही अवसर के कारण । रघुवर को स्वयं प्रतीत होता है कि धीरे-धीरे सारा माहौल उसी पुराने माहौल में बदलता जा रहा है । जगन बाबू की वह सरकारी कोठी हवेली में बदल जाती है, मोटरें घोडा गाडी में बदल गयीं मोटर ड्राइवर के काले और फत्तू साईस नज़र आने लगे । बडे राय के खाकी वर्दीवाले चपरासियों की जगह उन लाल मखमली ड्रेस वाले चपरासियों ने ले ली । जो सबसे अधिक आश्चर्यजनक लग रहा था वह जगन बाबू के समान पद बडे राय का आ खडा होना था । बडे राय सामन्त थे और जगन बाबू आज़ादी के दीवाने । ऐसा साम्य एक प्रतीकार्थ को जन्म देता है । आज़ादी की दीवानगी अब सामन्ती शक्ति में परिवर्तित हो जाती है । यही बात जब रघुवर को कचोटती है तो वह उन्माद की अवस्था में कह उठता है -

" गान्धी मर गया, पर बडे राय जिन्दा हो गये, अमर फल पा गये । मैं उन्हीं का बीज हूँ । पहचान सको तो पहचानो ।"[2]

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 395
2. वही, पृ. 399

उपन्यास में यह तथ्य बहुत धीरे धीरे प्रकट होने दिया गया है कि सामन्तवादी यातनाओं से बाहर निकलकर लोकवादी समाज रचना में दाखिल होने पर भी उनसे छुटकारा आज तक नहीं मिल सका जिनको लेकर आज़ादी की लडाई लडी गयी थी । अंग्रेज़ों से देश छुडाया गया तो आगे भी यही कहा जा सकता है कि दूसरों ने दबोच लिया । जिनके माध्यम से यह बडा परिवर्तन जिस बडे मकसद के लिए हुआ वे फिर भी वहीं बने रहे जहाँ वे पहले थे और बिचौलियों ने रंग बदलकर उन सबको अपने हाथों में ले लिया जि लोक को सौंपना था । जगन बाबू का बडे राय की भाँति हो जाना कोई इत्तिफाक नहीं है वह दर असल एक फरेब का खुलासा ही है जिसे देखते हुए य स्पष्ट होता है कि - "यह सब ब्रिटिश राज के सामने की सजावट थी । बर अपनी कुर्सी पर उन्होंने खादी के कवर चढवा लिये हैं ।"[1]

उपन्यास के प्रारंभ में कथा कहने वाले भास्कर राय का रूप, बडे राय का पुत्र का था और अब वह रघुवर का पिता है । न तो पुत्र के रूप में कुछ कह पाया न ही अब पिता के रूप में कुछ कह पाने में स यहाँ यह प्रतीक भारत के आम आदमी की स्थिति का द्योतक है । भास्क राय महसूस करता है कि रिश्ते बदल जाने से आदमी नहीं बदलता है । आज़ाद हुआ । लेकिन लोग तो वही रहे, भले ही वे ब्रितानी सम्राट कं से जनतंत्र के जनक या भाग्य विधाता बनने की यात्रा तय कर चुके हों । भी दरोगा आकर डंडिया देता था । अब भी डंडिया देता है बस अ इतना ही है कि जब वह ताज का नौकर था अब जनतंत्र का, यानि ह आपका नौकर - कहो तो सुनता नहीं । तब बच्चे अंग्रेज़ी स्कूल में उनक

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 398

उपन्यास में यह तथ्य बहुत धीरे धीरे प्रकट होने दिया गया है कि सामन्तवादी यातनाओं से बाहर निकलकर लोकवादी समाज रचना में दाखिल होने पर भी उनसे छुटकारा आज तक नहीं मिल सका जिनको लेकर आज़ादी की लड़ाई लड़ी गयी थी । अंग्रेज़ों से देश छुड़ाया गया तो आगे भी यही कहा जा सकता है कि दूसरों ने दबोच लिया । जिनके माध्यम से यह बड़ा परिवर्तन जिस बड़े मकसद के लिए हुआ वे फिर भी वहीं बने रहे जहाँ वे पहले थे और बिचौलियों ने रंग बदलकर उन सबको अपने हाथों में ले लिया जिसे लोक को सौंपना था । जगन बाबू का बड़े राय की भाँति हो जाना कोई इत्तिफाक नहीं है वह दर असल एक फरेब का खुलासा ही है जिसे देखते हुए यही स्पष्ट होता है कि - "यह सब ब्रिटिश राज के सामने की सजावट थी । बस अपनी कुर्सी पर उन्होंने खादी के कवर चढ़वा लिये हैं ।"[1]

उपन्यास के प्रारंभ में कथा कहने वाले भास्कर राय का रूप, बड़े राय का पुत्र का था और अब वह रघुवर का पिता है । न तो वह पुत्र के रूप में कुछ कह पाया न ही अब पिता के रूप में कुछ कह पाने में समर्थ है यहाँ यह प्रतीक भारत के आम आदमी की स्थिति का द्योतक है । भास्कर राय महसूस करता है कि रिश्ते बदल जाने से आदमी नहीं बदलता है । "मुल्क आज़ाद हुआ । लेकिन लोग तो वही रहे, भले ही वे ब्रितानी सम्राट की पूजा से जनतंत्र के जनक या भाग्य विधाता बनने की यात्रा तय कर चुके हों । तब भी दरोगा आकर डंडिया देता था । अब भी डंडिया देता है बस अन्तर इतना ही है कि जब वह ताज का नौकर था अब जनतंत्र का, यानि हमारा - आपका नौकर - कहो तो सुनता नहीं । तब बच्चे अंग्रेज़ी स्कूल में उनकी भाषा

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 398

पढ़ते थे अब अपने स्कूल में पढ़ते हैं । .... पोशाक बदल जाने से मानसिकता यानि व्यक्ति नहीं बदलता ।¹ इस प्रकार लोकतांत्रिक मानसिकता की कलाई को गिरिराज किशोर ने पूरी पक्की कार्यवाही कर लेने के बाद खोली है ।

गिरिराज किशोर के इन तीनों उपन्यासों लोग, ढाई घर एवं जुगलबंधी में हम सामन्ती ढाँचे के चरमराने की पीडा से भरे पात्र जहाँ मिलते हैं वहीं समस्त बाढ से सत्ता के राजनीति के गठबन्धन भी मिलता है । तीनों ही उपन्यासों में ऐसे प्रसंग मिलते हैं जहाँ पर हम देखते हैं कि अंग्रेज़ी शासन किस प्रकार अवसर आने पर इन सामन्तों के प्रति अति अमानवीय हो जाता है जिन्होंने अंग्रेज़ी सत्ता के कगूरे को गिरने से हमेशा बचाये रखा । लोग में राय साहब की घोडियों को बुरी तरह पीटना और उनके पोते को घायल करना, जुगलबन्दी में शिवचरण बाबू को हवालात में रखा जाना हो या गाडी के अनजाने में मेम की गाडी से टकरा जाने की सजा के रूप में राय साहब के प्रिय घोडे, सफेदा को गोलियों से भून दिया जाना ये सभी प्रसंग लगभग अमानवीयता की पराकाष्ठा पर पहुँचते हैं । इन सभी के बावजूद भी सत्ता से अपने आपको जोडे रखने की मानसिकता में कहीं न कहीं अपनी स्थिति को बनाये रखने की चिन्ता ही है । इन तमाम विषयगत समानताओं के बावजूद एक खास बात इन तीनों उपन्यासों के संदर्भ में यह देखी जा सकती है । इन उपन्यासों में पात्र ही नहीं बदले हैं बल्कि स्थितियाँ और संदर्भ में बदले हैं । 'लोग' एक बच्चे की दृष्टि से देखा गया है । यहाँ टिप्पणी तो नहीं । किन्तु यह भी एक काल की कथा है । जुगलबन्दी में सामन्तवादी और परिवर्तनशील शक्तियों का द्वन्द है । ढाई घर तीन पीढियों की कथा है तथा स्थितियों का मानवोचित विश्लेषण है, चाहे वह सांप्रदायिकता हो या स्त्रीयों को

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 400.

स्थिति या "ब्यूरोक्रेटस" का पतन । नये शासकों के दृष्टिकोण का बदलना और नयी पीढ़ी की किं-कर्तव्य-विमूढ़ सी अवस्था भी इसमें देख पड़ती है । ढाई घर में हम इस बात को समझ सकते हैं कि किस प्रकार से सामन्तवाद आज भी जीवित है ।

दुर्भाग्यवश सामन्तवाद का दूषित पहलू युवा वर्ग की मानसिकता का भी हिस्सा बन गया है । अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपनी सीमा के भी बाहर जाने की प्रवृत्ति वास्तव में सामन्तवाद की ही देन है । उपभोक्तावाद भी इसमें सहायक है । राजनैतिक दलों में भी हवाई जहाज़ों और कारों की यात्राएँ भी होड से होती है । यह सभी कुछ सामन्तवादी मानसिकता की ही देन है । जब उपभोक्तावाद का दबाव बढ़ता है तो विघटन अवश्यंभावी है । इसी सत्य को काल सापेक्षता में प्रस्तुत करते हैं ये तीनों उपन्यास ।

कहानियों की राजनैतिक दिशाएँ

राजनैतिक दुष्चक्र

राजनैतिक संदर्भों को जीवनानुभव का अंश स्वीकारनेवाले लेखक होने के कारण गिरिराज किशोर ने राजनैतिक परिवेश को अपनी रचनाओं में स्थितियों के अनुसार प्रयुक्त किया है । यहाँ पर सामान्य वर्ग को भी राजनीति से अलग रखने के बजाय उन्हें भी राजनैतिक संदर्भों में पूरी हिस्सेदारी करते हुए हम देखते हैं । क्योंकि "वही समाज राजनीति की पहचान कर सकता है जो उसमें पूरी हिस्सेदारी करता है ।"[1] इसी के कारण राजनैतिक संदर्भों की पहचान

1. के.के.नैयर से हुई बातचीत, साक्षात्कार

गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में दीख पडती है । कुछ इशारे भर कर देने से कोई भी रचना राजनैतिक नहीं हो पाती है । जीवन की अदूरदर्शिताओं को देश के स्तर पर या फिर प्रादेशिक स्तर पर दिखाना होता है । और इसी कसौटी पर गिरिराज किशोर का कथा साहित्य खरा उतरता दीख पडता है ।

"पेपरवेट" शीर्षक कहानी में राजनैतिक बोध मानवीय स्थितियों के साक्षात्कार के रूप में अभिव्यक्त हुआ है । पार्टी के अन्यायपूर्ण रवैय्ये का विरोध करनेवाले मृणाल बाबू मुख्य मंत्री शिवनाथ बाबू के द्वारा मन्त्रि पद पर नियुक्त कर दिये जाते हैं । एक वर्ष तक मृणाल बाबू विभाग के लिये पूरी ईमानदारी के साथ काम करते हैं । किन्तु एक वर्ष बाद मुख्यमंत्री के विदेश से लौट आने पर अपने विभाग की तब्दीली स्वयं उनकी समझ में नहीं आती है । विभाग के कार्यों में भी एक अजीब परिवर्तन आ रहा है । जो भी फाईल माँगी जाती पता चलता मुख्य मन्त्री के पास है । सचिव को पूछते थे वह भी मुख्य मंत्री के पास गया हुआ होता है ।[1] अन्तत: उन्हें पता चलता है कि औद्योगिक बस्तीवाला मामला जिसे वे सुलझाना चाहते थे, उसे बुरी तरह उलझा दिया गया है । यहाँ एक खास तौर से बनायी गयी स्थिति में वे फिट कर दिये जाते हैं । वे जनता के समक्ष अपने मन्त्रि पद की अर्थशून्यता नहीं स्पष्ट कर सकते थे -"लोग कहेंगे, विधान भवन में तो बडा शोर मचाता था .... काम करने का वक्त आया तो दुम कटा कर लँडा शेर बन गया । इस बात का प्रचार इस रूप में भी किया जा सकता है कि त्याग पत्र माँगा गया ।[2] राजनैतिक दुष्चक्र में घुटती हुई अन्तरात्मा के टूटने के टेटने की अभिव्यक्ति यहाँ पर हुई है । व्यावहारिक जीवन में ईमानदारी और आदर्श किस प्रकार नाकामयाब

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 106.

2. वही, पृ. 111

हो जाते हैं इसी को यहाँ पर एक प्रामाणिक अनुभव के रूप में अभिव्यक्त किया गया है -"उन्होंने {मृणालबाबू ने} मेज़ पर रखे पेपरवेट को उठा लिया और ज़ोर से घुमाने लगे । अपनी उँगलियों के ज़रा से "ट्विस्ट" पर पेपर वेट का घूमते रहना देखकर वे समझ नहीं पाये । इस क्रिया को क्या संज्ञा दी जाये इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कि किसी भी तात्कालिक उत्तेजना मात्र का बयान नहीं किया गया बल्कि राजनैतिक बोध के तिलमिला देनेवाले एहसास के रूप में और छटपटाहट भरे विचार तंत्र से युक्त मनुष्य के नियति पथ को मृणाल बाबू के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है ।

"सत्तासीन राजनीति स्थिरता की पक्षधर होती है और जो राजनीति सत्तासीन नहीं वह भी अस्थिरता तभी तक चाहती है जब तक उसे सत्ता प्राप्त न हो सके ।"[2] और हम देखते हैं कि सत्ता में अपना अस्तित्त्व बचाये रखने के लिए राजनेता विपक्ष से ही नहीं बल्कि अपने दल के उन नेताओं से भी त्रस्त रहते हैं जो कि असन्तुष्ट होते हैं । और वे इस प्रकार के असन्तुष्ट नेताओं से बचने का उपाय सोचते हैं ।

"नया चश्मा" कहानी राजनैतिक क्षेत्र में गिरते मूल्यों एवं कुर्सी को तज़रीह देनेवाले नेताओं की खुदगर्जी को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं । उपन्यास के विरुद्ध विधान सभा भवन में गरजनेवाले विधायक शिव भी भाई की

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 114
2. साहित्य और सामाजिक मूल्य, हरदयाल, पृ. 39.

आवाज़ मुख्य मंत्री द्वारा मन्त्रिपद का लालच दिये जाने के बाद स्वतः ही शान्त हो जाती है । इस प्रस्ताव को सामने रखे जाने के तुरन्त बाद ही शिव जी भाई का सोचने का नज़रिया तक बदल जाता है । कुछ देर पहले वे लान में मुख्य मंत्री के पैर छूनेवालों को परिहास की दृष्टि से देखते रहे थे किन्तु इस प्रस्ताव को रखने के बाद - "शिवजी भाई यन्त्रवत् उठ खड़े हुए, उन्होंने सोचना चाहा, मुख्य मन्त्री के चरण छूना ठीक होगा । लेकिन कुछ भी सोच पाने के पहले ही वे झुक गये ।"[1] बढ़ी चढ़ी बातें करनेवाले विधायक यहाँ पर पालतू बनकर रह जाते हैं । मुख्य मंत्री के घर से लौटने वाले शिवजी भाई अब पुराने शिवजी भाई नहीं रह जाते । वे मन्त्रीपद की सुविधाओं के स्वप्नों में खोये अपना चश्मा भूल आते हैं । जिसे लेने जब वे पुनः लौटते हैं तो मुख्य मन्त्री को फोन पर कहते सुनते हैं -"एक डोज़ काफी है । अब छः महीने तक नहीं बोलेगा ।"[2] शिव जी भाई भी तब नया चश्मा खरीदने की बात सोचकर लौट पड़ते हैं । राजनैतिक संदर्भों में आई मतलब परस्ती और खोखलापन यहाँ पर स्पष्ट जाहिर होते हैं ।

"मन्त्रिपद" कहानी राजनैतिक स्वार्थों के किये चली जाने वाली चालों का पर्दाफाश करती है । किसी भी बड़े कार्य का श्रेय अपने ऊपर लेने और उसके बल पर राजनीति में अपना स्थान बनाने के लिए नेता या मन्त्रि वर्ग के लोग जो नाटकीय व्यवहार करते हैं तथा जो चालें चलता हैं उसी की अभिव्यक्ति "मन्त्रिपद" में हुई है ।

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 43.
2. वही, पृ. 44.

मन्त्रिपद से मुक्ति के बाद भी पण्डित जी जानते हैं कि मन्त्रिपद सोना है । साथ ही वे कहते हैं कि "इस पर सर्दी गर्मी का असर पडता है यह हवा में उड सकता है ।"[1] एक बार मन्त्रि पद से मुक्ति के बाद भी पुन: वे राजनीति में अपना स्थान बनाने के लिये प्रयत्नशील हैं । अपने नाटकीय व्यवहार और प्रधानमंत्री से अपने ताल्लुकातों की चर्चा करके वे अपनी जनता को हमेशा अभिभूत बनाए रखना चाहते हैं । इस प्रभा व मण्डल में पश्चिम के नेता रेवर कर जी को भी वे समेटना चाहते हैं । यहाँ बैंकों के राष्ट्रीकरण का श्रेय वे अपने ऊपर लेना चाहते हैं । इसके लिये वे अनेक चालें चलते हैं । पाँच सौ रुपये उनके द्वारा रेवरकर जी को जबरदस्ती थमा दिये जाते हैं और वे कहते हैं कि जनता को सरकार के प्रति शुक्र गुज़ार होना चाहिए वे रेवरकर जी से कहते हैं - "आप घूम घूमकर लोगों से कहिये कि वे तार भेज भेजकर इसका स्वागत करें ।"[2] और अन्त में वे यह भी कह देते हैं कि तार उन्हें ही भेजे जायें । मन्त्रिपद के लिये लोलुप एक स्वार्थी नेता की सर्वांगीण तस्वीर यहाँ पर उभरती हैं ।

समकालीन संदर्भ में नैतिकता को नज़रन्दाज़ करते हुए, अनुकूल परिस्थितियों में यथा साध्य अपना स्वार्थ अधिक से अधिक साध लेने या प्रतिकूल परिस्थितियों में सामंजस्य स्थापित कर अपना हित मात्र प्राप्त कर लेने वाली एक कला के रूप में उभरती है इन रचनाओं में राजनीति की तस्वीर । राजनीति के इन विशिष्ट वर्गों के बीच की होड को दिखाते समय वास्तव में

---

1. हम प्यार कर लें, गिरिराज किशोर, पृ. 30.
2. वही, पृ. 35.

उसका परिणाम भुगतनेवाला समकालीन मनुष्य ही गिरिराज किशोर की चिन्ता का विषय है ।

अमानवीयता के प्रसंग

जहाँ पर मनुष्य के मोहभंग की बात उठती है वहाँ आज के संदर्भ में मोहभंग का संबंध व्यक्तिन्मुख उदासीनता या तद्जनित दार्शनिकता से भी नहीं है । इन मानव स्थितियों के संदर्भ में राजनैतिक स्थितियाँ किंचित् भी अपवाद नहीं हैं । राजनैतिक माहौल मूल्यहीन खोखला और दूषित होता गया जनता के लिए रोजमर्रा आवश्यकताओं के उपाय जुटाना तो दूर की बात थी । परन्तु आश्वासनों की घूँटी तो निरन्तर पिलायी जाती थी । समकालीन दौर में आकर राजनीति का दबाव परिवेश पर गहरा होता गया । पूरे देश के ऊपर राजनीति का गहरा किन्तु अमानवीय प्रभाव छाया रहा । इसकी सशक्त अभिव्यक्ति गिरिराज किशोर ने की है ।

मानव स्थितियों में जीनेवाले मनुष्य के साथ सहस्थिति का एहसास समकालीनता की अनिवार्य शर्त है । इसी कारण यह आवश्यक हो जाता है कि कथाकार में राजनैतिक संदर्भों की गहरी पहचान हो । गिरिराज किशोर स्वयं राजनीति में उतर कर नहीं आये न ही वे मानते हैं कि विचार धारा को अपनाने के लिए किसी पार्टी विशेष की सदस्यता की आवश्यकता है ।[1] किन्तु राजनैतिक संदर्भों की गहरी पहचान गिरिराज किशोर में दीख

---

1. अपने आस पास - में संकलित साक्षात्कार, संपादक बलराम, पृ. 31.

पडती है । के.के.नैय्यर से हुई अपनी बातचीत में वे कहते भी हैं - मेरा बचपन राजनीतिज्ञों में गुज़रा और वे उस ज़माने में भी परेशान करते थे क्योंकि मुझे लगता था कि जिस प्रभा से वे आये हैं वहाँ आकर उनका रास्ता बदल गया है । चूँकि मेरी उनके त्याग और संघर्ष के बारे में एक परिकल्पना थी । इसलिए ये बदलाव उनका सत्ता पर देखता मुझे भिन्न लगा । जब लेखक को कुछ भिन्न नज़र आये तो वह बेचैनी बन जाती है, और बेचैनी लेखन के अलावा कहाँ व्यक्त होगी ।"[1]

संभवत: इसी कारण हम देखते हैं कि राजनैतिक रंगत का कथा साहित्य तो हर दौर में लिखा गया है । राजनैतिक स्थितियों में एक सूक्ष्मता का और गहनता का अनुभव गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में मिलता है ।

निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए मन्त्रियों द्वारा किये जा रहे ढोंग पर प्रकाश डालती है "लाशें" शीर्षक कहानी । जनता और जनतंत्र की दुहाई देनेवाले मन्त्री जगदीश बाबू और गणेश बाबू आतंक वादियों के द्वारा बच्चों की हत्या को लेकर चिन्तित तो है परन्तु इस चिन्ता के केन्द्र में समीपस्थ चुनाव की समस्या ही है -

"हम लोगों का न लेना न देना कहाँ मौत हुई कौन मरा । चुनाव हमारा भिण्डी हुआ जा रहा है ।"

---

1. साक्षात्कार, अंक-152, अगस्त 1992, सं. प्रभाकर श्रोत्रिय

जनता के लिए जब कोई बात उठाई जाती है तो वे बातें मन्त्रियों द्वारा युक्तिपूर्ण ढंग से अनसुनी कर दी जाती हैं । और उन्हें यदि किसी चीज़ से मतलब है तो केवल अपने स्वार्थ से । कलक्टर द्वार जब फोन पर पाँच लाख रुपये मुआवजे की बात कही जाती है तो गणेश बाबू कहते हैं - "क्या ..... ऽ ..... सुना नहीं । मैं जगपत बाबू को देता हूँ ।"[1]

और जगपत बाबू भी फोन हाथ में लेकर कुछ नहीं सुना का बहाना बना कर फोन रख देते हैं । वे कहते हैं "इतना भी नहीं समझता कि हम जो सुनना चाहते हैं वही तो सुनेंगे ना - वह थोड़े ही सुन लेंगे जो ये लोग सुनना चाहते हैं ।"[2]

इसी प्रकार मन्त्रियों द्वारा जब मुख्य मंत्री को फोन मिलाकर मुआवजे की बात की जाती है तो वहाँ पर भी यही हाल होता है । वे भी अपना स्वार्थ साधने के लिए यही चाल चलते हैं -

"मुख्य मंत्री बार बार यही कह रहे थे -"ज़ोर से बोलिये, आवाज़ बिलकुल नहीं आ रही है । मैं स्वयं ही आता पर यहाँ बुरी तरह से फँसा हुआ हूँ । आप मेरी तरफ से जाकर उनके घरवालों को सान्त्वना दे दीजिये ।"[3]

"वीर गति" शीर्षक कहानी में चूहा, तीसरा आदमी और मालिक के प्रतीकों के द्वारा राजनीति के दुष्चक्रों एवं उसमें पिस जानेवाले मनुष्य की स्थिति और उसकी दुर्गति के अमानवीय पहलू को उजागर किया है ।

---

1. यह देह किसकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 59.
2. वही, पृ. 66
3. वही, पृ. 66.

राजनीति में होड ईर्ष्या और उच्च से निम्न की ओर पडनेवाला दबाव जो साधारण जनता के लिए बरदाश्त के बाहर हो जाते हैं । नेताओं के कान भरने की प्रवृत्ति, किसी भी साहसपूर्ण कार्य या महत्वपूर्ण कार्य का श्रेय अपने प्रिय जन को दिलाने की मानसिकता, ये सभी बातें चूहे को मारने की एक घटना के माध्यम से उजागर की गयी हैं -

"वह तीसरा आदमी उसके [मालिक के] कान में कुछ कह रहा था -
"देखिए वह भागते हुए भी आपकी तरफ पीठ किये हैं । इससे बड़ी धृष्टता और क्या हो सकती है । जहाँ तक और व्यक्तियों का सवाल है वे तो आपके ही हुकुम पर उसे घेरने के खयाल से आपकी ओर पीठ करके भागने के लिए मजबूर हैं ।"[1] राजनीति में उच्च पदासीन व्यक्तियों को सदैव ही यह कामना रहती है कि हर कोई उनके दबाव में रहे । और यह दबाव सोपानगत रूप से बना रहता है । दबनेवाला अपने दबाव को कम करने के लिए अपने से नीचे वाले पर दबाव ढकेलता है । अन्ततः निम्नतम सोपान पर मौजूद व्यक्ति ही होता है जो इस अमानवीयता का शिकार बनता है -

"वे चूहे इस प्रकार की आशा नहीं करते हैं कि वह चूहे दान तक जा कर बिना उसके अन्दर प्रविष्ट हुए लौट जायेगा । चूहा है तो उसे बिना किसी हील-हुज्जत चूहे दान में जाना चाहिए ।"[2] इस दबाव से बचकर निकलना भी व्यक्ति के लिए संभव नहीं होता है । अन्ततः अनेक दबाओं को महसूस करता हुए इस अमानवीय स्थिति का शिकार होना उसकी नियति बन जाती है ।

"घोडे का नाम घोडा" में भी प्रतीकात्मक रूप से लेखक

---

1. जगतारनी तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 14.
2. वही, पृ. 20.

सत्ता के दबाव पर प्रकाश डालता है । निरन्तर पड़नेवाले दबाव के कारण साधारण व्यक्ति का स्वाभिमान नष्ट कर दिया जाता है और साथ ही उसकी मज़बूरी का फायदा उठा कर राजनीति में उसे खेल का मोहरा बना लिया जाता है । यहाँ घोड़े और नथ के प्रतीकों को लेकर प्रतीकात्मक रूप से लेखक और राजनीतिज्ञों के रिश्ते को अभिव्यक्त किया गया है -

"मैं जरा सी भी हुक्म उदूली कर दूँ या इधर मुड़ने की बजाय उधर मुड़ जाऊँ, तो शायद टुकड़े-टुकड़े करके फिंकवा दें । पर मैं इस सबके बावजूद अपनी पीठ उसकी सवारी के लिए हमेशा कसे रहता हूँ ।"[1]

छोटे नन्थू, बड़े नन्थू और बड़े से बड़ा आदि के रूप में विभिन्न पंक्तियों पर मौजूद नेताओं की ओर भी इशारा किया गया है । इनमें से प्रत्येक अपने से छोटे पर दबाव डालता है ।

सामान्य मनुष्य या लेखक के लिए दबाव युक्त इस स्थिति से उबर पाना भी संभव नहीं हो पाता है । उसके अपने स्वाभिमान को भले ही ठेस पहुँचती रही हो परन्तु उसके बावजूद उस स्थिति से गुज़रना भी उसके लिए नागवार गुज़रता है -

"मेरा मन अलफ होने को करता है । मन क्या करता है, पर कुछ नहीं हो पाता साज खराब होने का डर, मलिक के गिर जाने का अन्देशा ऊपर से अच्छा खाने की चाह । अच्छा खाने की चाह बुरा खिलाती है ।"[2]

---

1. जगत्तारनी तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 29.
2. वही, पृ. 29.

"तिलिस्म" कहानी भी प्रजातंत्र की विडम्बना को ही उभारती है । जनता द्वारा चुने गये जन प्रतिनिधि चुने जाने के पश्चात् जनता की पहुँच से दूर हो जाते हैं । जन प्रतिनिधि या जनसेवक कहे जानेवाले राजनैतिज्ञों ने अपने चारों ओर एक बड़ा सा तिलिस्म खड़ा कर रखा है । साधारण जनता कभी भी उसे पारकर उन तक नहीं पहुँच पाती है । हमारे मुल्क की यह बदकिस्मती रही है कि हर नेता ऊँचाई पर पहुँच कर नीचे से कट जाता है । संसद सदस्य बन जाने पर नेता घोषणा करता है कि वह जनता से और अधिक जुड़ गया है । परन्तु सच्चाई यही रहती है कि प्रजातंत्र में जनता की स्थिति मात्र सीढ़ी के समान है । जिस पर पाँव रखकर नेता अपनी मंजिल पर पहुँच सके । "तिलिस्म" कहानी का विश्वनाथ गाँव के स्कूल में मास्टरी की खाली जगह पर अपनी नियुक्ति के लिए जब जिले के विधायक सीता बाबू से सिफारिश करवाने के लिए उन्हें लेकर विधायक भवन पहुँचता है और सीता बाबू उसे बरान्दे में बिठाकर अन्दर चले जाते हैं, तो विश्वनाथ को लगता है कि विधायक भवन में कुर्सियों पर विराजमान व्यक्तियों के साधारण जनता के प्रति दृष्टिकोण में उपेक्षा के अलावा कुछ नहीं है -"उन पर पाँच फुस फुसानेवाले व्यक्तियों में से ही एक से पूछा "पी.ए..... नहीं नहीं वैयक्तिक सहायक कहाँ हैं ? उस आदमी ने कुछ इस तरह विश्वनाथ को तरफ देखा जैसे किसी बाजारू गाय ने आकर, उसके कुर्ते का कोना चबाना शुरू कर दिया ।"[1] विश्वनाथ को विश्वास नहीं होता कि यही विधायक भवन है जहाँ बैठकर सारे प्रदेश के भाग्य का फैसला होता है । विधायक भवन पहुँचकर विश्वनाथ को लगता है कि "सीता बाबू और उसके बीच की डोर टूट गयी है ।

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 70.

2. वही, पृ. 74.

गिरिराज किशोर यहाँ पर इस निर्ममता को हमारे सामने लाते हैं कि किस प्रकार जनता पर सहानुभूति व्यक्त करनेवाले नेता किस प्रकार यह सहानुभूति का ढोंग रचते हैं और उनकी तकलीफों से कोसों दूर चले जाते हैं ।

दिखावटीपन का तन्त्र

राजनीति जब अंतरंगता में नैतिक बोध से कट जाती है तो उसमें जुडने वाली अवांछित एवं अस्पृहणीय स्थितियों में एक बहुत बडा पहलू दिखावटीपन का होता है । और इसी कारण हम देखते हैं कि राजनैतिक तंत्र अपने दिखावे और नखरेबाजी के साथ आम आदमी को प्रभावित करने की नयी नयी चालें चलता है । प्रत्येक दल या दल के नेता अपनी क्षमता की अपने आदर्शों की दल-शक्ति की झूठी तस्वीर जनता के सामने रखते हैं किन्तु वास्तविकता यही होती है कि इनमें खोखलेपन के सिवा कुछ भी नहीं होता है । इस दिखावटीपन के पीछे परस्पर लगनेवाली होड भी कारण रूप में वर्तमान है । राजनैतिक संदर्भ में इस दिखावटीपन को उभारने का प्रयास गिरिराज किशोर की कहानियों में किया गया है ।

"वी.आई.पी." शीर्षक कहानी में जहाँ एक ओर राजनैतिक क्षेत्र में की जानेवाली आदर्शपूर्ण बातों और बडे-बडे नेताओं के खोखलेपन को जाहिर किया गया है । वहीं पर दूसरी पंक्ति के नेताओं का प्रतिनिधि चरित्र भी उद्घाटित हुआ है जो कि पहली पंक्ति के नेताओं की कुर्सी अपने कन्धे पर उठाए रहते हैं और उसी से अपना दब दबा कायम रखते हैं ।

वी.आई.पी. कहानी का केन्द्र पात्र राय जादा जो दूसरी पंक्ति का नेता है और हर बात में बाबूजी अर्थात् मुख्य मंत्री का दृष्टांत देता है और उनकी हर बात में नकल करके अपना तथा मुख्यमंत्री तथा अपना दबदबा कायम रखता है । जहाँ एक ओर मुख्यमंत्री अपनी टोपी सहलाते हैं वहीं ये दूसरी पंक्ति के नेता भी अपनी टोपी को सहलाते रहते हैं । अहिंसा के सिद्धांत के पीछे यहाँ चाकू और रिवाल्वर है वही मुख्यमंत्री का आदर्श देते हुए तीस वर्ष की आयु में ही "वाणप्रस्त" का आदर्श बखाननेवाला तथा कथित व्यक्ति रात होने पर टुच्चेपन पर उतर आता है । मुख्य मंत्री का चरित्र भी किंचित भिन्न नहीं है । स्वयं इस नेता की बातों से इसका भी पता चल जाता है - "उसने अपनी पत्नी से कहा -"अरे तुम क्या बात करती हो ? बाबू जी भी ऐसा करते थे । साल छः महीने में कोई फरक नहीं पडता हैं ।" मुझे बीच की बात सुनाई नहीं दी । लेकिन वह फिर बोला "तुम क्या जानों बडे लोगों का क्या तरीका है .... कह कर वह हँस दिया । हँसने की आवाज़ काफी देर तक बनी रही ।"[1]

"चीख" कहानी जहाँ मन्त्रियों के दबदबे और धमकियों पर प्रकाश डालती है वही हम देखते हैं कि भाषणों के एवं जनता के प्रश्नों के लिए दिये गये जवाबों में जो खोखलापन है उसे भी कहानी उजागर करती है । "मत संगम" के कार्यक्रम के प्रसारण के लिए आनेवाले मन्त्रि महोदय की ओर से कार्यक्रम शुरू होने के एक घंटा पहले तक केन्द्र निर्देशक से सवाल किये जाते हैं कि "बताईये आप मन्त्रीजी से क्या अपेक्षा रखते हैं ?"[2]

---

1. रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 102.
2. यह देह किसकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 150.

"उन्हें किस तरह की तैयारी करनी चाहिए ?"[1]
"मन्त्रि जी को एम्ब्रेसमेन्ट - यानि - यानि - असुविधा नहीं होनी चाहिए ।"[2]
पूर्व सूचना के अभाव में पूछे गये सवालों का जवाब बकायदा न दे पाने के कारण मन्त्रि महोदय केन्द्र निर्देशक तथा अन्य कर्मचारियों पर खिन्न हो जाते हैं । और उसके खतरे से वे उन्हें आगाह भी कर देते हैं । रिकार्डिंग के बाद केन्द्र निर्देशक पर ज़ोर डाला जाता है कि "आज की बात चीन के दौरान राष्ट्र-आत्मा शब्द का बहुत बार प्रयोग हुआ है । ऐसी किसी भी चीज़ का बार बार प्रयोग जो इस्तेमाल में नहीं आती है । प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है । उन्होंने कहलवाया है कि उस शब्द को न रहने दिया जाये ।"[3]

यहाँ पर राष्ट्र आत्मा शब्द के अवमूल्यन को दिखाते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि परिस्थितियों में अवमूल्यन कितना बढ गया है । इन "अवमूल्यन की परिस्थितियों में ध्यान देने की मूलत: बात यह है : यह नहीं कि भाषा का अवमूल्यन हो रहा है, यह कि जब हम ऐसे समाज में आ जाते हैं, तब हम शोषण करनेवाले के सामने निरस्त्र हो जाते हैं । जब तक संस्कृति की एक समग्र भावना बनी रहती है तब तक भाषा का अवमूल्यन नहीं होता है । जहाँ हम संस्कृति और समाज को दो भागों में बाँट लेते हैं, एक का दूसरे के साथ शोषण का रिश्ता हो जाता है वहाँ से भाषा का अवमूल्यन शुरू हो जाता है क्योंकि समाज का बडा हिस्सा छोटे हिस्से का शिकार हो जाता है और बडे हिस्से की भाषा भी छोटे हिस्से के मुहावरे का

---

1. यह देह किसकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 154
2. वही, पृ. 154
3. वही, पृ. 156.

शिकार हो जाती है । इसलिए अगर हमें इस स्थिति का इलाज करना है तो वहाँ उस जड में जाकर कठिनाई को देखना चाहिए । पूरी संस्कृति का अवमूल्यन होता है । इसलिए भाषा का अवमूल्यन होता है ।[1] इसी अवमूल्यन के संदर्भ को यहाँ उठाया गया है । राजनीतिज्ञों के संवाद में होनेवाली अर्थहीनता और उसे लेकर उनमें बनी रहनेवाली भयातुरता को यहाँ पर उभारा गया है -

"लेखक और राजनीतिज्ञ दोनों शब्दों का पेशा करते हैं । लेखक का शब्द के के साथ अर्थ से भी नाता होता है । दूसरे को अर्थ से कोई लेना देना नहीं होता है ।"[2]

"दिखावटीपन" की यह प्रवृत्ति आज व्यापक रूप से चारों ओर फैली हुई दीख पडती है । यह वास्तव में संस्कृति के अवमूल्यन का ही एक पहलू है । राजनैतिक क्षेत्र में इसके मूल में व्याप्त कारण परस्पर होड है । और इसी के कारण राजनैतिक तंत्र मानवीयता से बिलकुल विच्छिन्न हो जाता है और नैतिकता के लिये यहाँ कोई महत्व नहीं रह जाता । इन तमाम स्थितियों में प्रत्यक्ष दीख पडनेवाले पात्र तो राजनीति से सीधे संबद्ध लोग है परन्तु दिखावटीपन को इन चालों की परिणति को भोगनेवाला समकालीन मानव ही है और वहीं इन कहानियों के केन्द्र में विद्यमान है ।

---

1. स्रोत और सेतु, अज्ञेय, पृ. 91.
2. यह देह किसकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 154.

राजनीति का दूरवर्ती नियंत्रण

आधुनिक युग में युद्ध की राजनीति के असंख्य रूप हैं, जो उसके पुराने रूपों से भिन्न और कई गुना शक्तिशाली भी है। अधुनातन हथियारों का संकलन और ऊपर सधे हुए हाथों का नियंत्रण उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी राजनीति का तौर-तरीका है। अपने प्रबुद्ध और वर्चस्व को साबित करना उसका लक्ष्य है तथा सब को अपने अधीन में करना उसका संकल्प है। आर्थिक संपन्नता और वैज्ञानिक मेधा ने साम्राज्यवादी शक्तियों के लिए मार्ग सुगम कर दिया है। साम्राज्यवादी राजनीति का प्रभुत्व इस कारण से उत्तरोत्तर बढ़ता गया है और राजनीति का यह स्वरूप इतना विकृत है कि उसके सामने मानवीयता का कोई पक्ष टिकता नहीं है। इस प्रकार राजनीति आधुनिक दौर में अपने प्रभुत्व के कारण दूसरी ज्ञानराशियों को अपने अधीन में कर के जीवन की तमाम दिशाओं पर अपना दूरवर्ती नियंत्रण [रिमोट कन्ट्रोल] बनाये रखती है। इसलिए उसका बाह्य रूप इतना सरल लगता है और वास्तविक रूप हमेशा छिपा रहता है।

नये नये हथियारों और उनसे जुड़े हुए प्रौद्योगिकी विकास ने साम्राज्यवादी अन्धी दौर को और तेज कर दिया है। यह कहना बेहतर होगा कि प्रौद्योगिकी ने साम्राज्यवाद के सामने अपना सिर झुका लिया है। विपुल संपत्ति मानव संसाधन और मेधा का उपयोग पूरी तरह से हथियारों के संकलन के लिए हो रहा है। उनकी विनाशकारी शक्ति और तबाही से परिचित होते हुए भी उसकी रफ्तार कम होने की बजाय तेज़ होती जा रही है। शक्ति का यह संचय राजनीति की बढ़न का एक अच्छा-खासा नमूना है।

राजनीति बढती रहना ही चाहती है । विस्तृति पाना चाहती है । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना वर्चस्व बढाती रहती है ।

गिरिराज किशोर का लघु उपन्यास असलाह राजनीति के साम्राज्यवादी शक्ति को अभिव्यंजित करनेवाला है । इसकी रचना अन्य उपन्यासों से भिन्न होने के कारण साम्राज्यवादी अनैतिकता का कोई स्पष्ट चित्र इस में प्राप्त होता नहीं है । बाह्यतंग यह उपन्यास अमरी नाम के एक व्यक्ति की जीवनी के समान है । उसके बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक जीवन का वर्णन रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है । रोचकता वर्णन शैली की ही विशेषता नहीं है, बल्कि पात्र परिकल्पना और विशिष्टता से भी संबंधित है । परन्तु सभी मनोकामनाएँ व्यक्तिगत धरातल तक सीमित नहीं है । रोचकता पैदा करने में उसकी कामनाओं का भी योगदान है ।

उपन्यास के आरंभ में अमरी छोटा सा लडका है, जिसने अपने पिताजी के जो दारोगार है पिस्तौल को उठाया और उससे खेलने की जुर्रत की । उस खतरनाक खेल के अंजाम से अपरिचित बालक अमरी खूब पिटता है । भले ही दूसरे दिन दारोगा ने पटाकेबाज पिस्तौल ला दिया । फिर भी वह प्रसन्न नहीं होता । बालक अमरी हथियार से प्रेम करनेवाला है । हथियार उसका सपना बन जाता है । खतरनाक हथियार ने उसको मोह लिया था जिसके कारण उसका बाल मन भी खिलौने में आनन्दित नहीं हो पाता है । उपन्यास के आरंभ में ही

अमरी की पात्र विशिष्टता का बोध होता है । हथियार प्रेम ही उसकी विशिष्टता है । बचपन में असलाह देखने को सुविधा मिलने पर वहाँ उसका ऐसा मन लग जाता है कि वह भूल नहीं पाता -

"अमरी के चेहरे से बिलकुल नहीं लग रहा था कि वह सुन रहा है । सिर्फ देख रहा था । उसकी आँखों में तरह तरह के रंग आ जा रहे थे । वे सब इतने सजीले थे कि अमरी का चेहरा तमतमा रहा था । दर असल जो खास बात थी वह यह थी कि उसे लग रहा था कि वे सब हथियार उसकी ओर मुखातिब है । वह उन्हें देखे या यह सब सुनें जो कानों में उंडेला जा रहा था । यह बात शायराना लग सकती है, पर थी हकीकत ।"[1]

उपन्यासकार ने उसके हथियार प्रेम को अजीब हरकत के रूप में प्रस्तुत करता है । एक रोचक प्रसंग अमरी की कौमारावस्था में घटित होता है । चन्दा नामक लडकी के साथ उसका प्रेम है वह अपनी प्रेमिका के साथ रोज़ चाँदमारी के मैदान में कौजिये की करामात देखने के लिए जाता है । संयोगवश वहाँ वह कर्नल साहब से भी परिचित होता है । प्रेमिका को अपने निकट पाकर भी वह नये नये हथियारों के संसार में अपने आप को डुबाता रहता है । इससे उसका प्रेम संबंध टूट जाता है । उसने खुल्लम खुल्ला घोषणा की कि - "बस्तीवाले मूर्ख है, दीवानें हैं - वे क्या जाने हथियारों का रोमांस कितना सात्त्विक है । उनको प्यार करना कितना बडा आदर्श है । हथियारों के प्यार के मुकाबले इन्सानी प्यार एवज में कितना कुछ चाहता है ।"[2] विचित्रता इस बात में है

---

1. असलाह, गिरिराज किशोर, पृ. 17.

2. वही, पृ. 30.

कि प्रेम संबंध के टूटने में वह डरता नहीं है । हथियारों से उसका प्रेम बढ़ता है । पेशे के रूप में उसे मास्टरी मिलती है । विरोध करने के बावजूद उसकी शादी होती है । इसलिए प्रथम रात्रि के अवसर पर ही उसे अपनी ब्याहता से यह कहना पड़ता है कि - "वह हँसता / उसे {पत्नी को} बहकाता, "एक दिन आएगा, तुम मानव मात्र की माँ होगी जब ये सब सलामी देते हुए तुम्हारे सामने से निकलेंगे तो आकाश तक तुमसे ईर्ष्या करेगा ।"[1]

यह एक व्यक्ति के व्यवहार का वर्णन न होकर साम्राज्यवादी मानसिकता का वर्णन है । साम्राज्यवादी नीति में पागल राजनीति का मालिकाना अन्दाज़ ही यहाँ हमें प्राप्त होता है - " असरी जानता हो या न जानता हो, लोग उसे हथियारों की दुनिया का दादा मानने लगे थे । बिना लड़े-भिड़े और बिना खून-खराबे की राजनीति में उतरे हुए भी उसे "तैमूर" समझा जाने लगा था । लोग उधर से गुज़रते थे और यदि वह अपने तख्त पर मौजूद भी नहीं होता था तो उसके जूतों को सलाम करके आगे बढ़ते थे ।"[2]

× × × ×

"अगर उन्होंने यह सोचना चालू कर दिया कि उनके अपने हथियारों के अलावा अन्य हथियारों से भी उनका रिश्ता क्यों नहीं बनता तो वे भटक जायेंगे । वे इस पूरी व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं । इस तरह की व्यवस्था में सोच और विरोध का कोई स्थान नहीं । अगर वे ये सोचते हैं कि उनका पिता उन्हें तहस-नहस करके मिट्टी में मिला सकता है तो

---

1. असलाह, गिरिराज किशोर, पृ. 63.
2. वही, पृ. 71.

स्वाभाविक है कि उनका सबसे ज़्यादा वक्त और दिमाग पिता को दुश्मन करार देने में और उससे बचने या उसे मात देने में गुजरेगा । उसने तरकीब निकाली । उनकी सुख-सुविधाएँ तो बढ़ाई ही, साथ ही आदर्शों के प्रति उनकी आस्था को और उकेर दिया । यथार्थ के साथ बनने वाले रिश्ते को कमज़ोर करने के तरीके लागू किये । निश्चिन्तता में वृद्धि की । काम और परेड के कार्यक्रमों को सघन कर दिया । असरी ने इस बात को समझा कि उनके ऊपर किसी भी तरह का दबाव बढ़ाकर सोचने का अवसर देना व्यवस्था को तहस-नहस करना होगा । सोचने का काम उनका नहीं, उसका है । हर एक सोचेगा तो समस्याओं का जंगल उग आयेगा । समाधान ढूँढे नहीं मिलेगा । उन्हें अपने आपको दिमाग तक न ले जाकर हाथों-पैरों तक महदूद रखना है । ऊपर उठने का मतलब धमाका। व्यवस्था का तहस-नहस । क्योंकि उस हालत में वे किसी भी सीमा तक जा सकते हैं । सोच का कोई अन्त नहीं होता । उसने अपने संसाधनों का उन पर भी उस तरह प्रयोग करना आरंभ किया जिस प्रकार वह अपने उस लासानी हथियार पर कर रहा था । हालाँकि उसे कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था । इसके अलावा उसके पास कोई रास्ता नहीं था । यह बात उसके सामने स्पष्ट हो गयी थी कि उसकी यह सन्तति उसके संघर्ष और चिन्तन में कतई हिस्सेदार नहीं हो सकती । यदि उसे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को फलते-फूलते देखना है तो इस पूरे कालकूट को स्वयं विषपायी की तरह गटकना होगा । एक बूँद भी छलककर गिरी तो सब कुछ नष्ट हो जायेगा । स्वतंत्रता का सन्देश न देकर, हथियारों के प्रेम को छोटे-छोटे कौरों की तरह खिलाते चले जाना है । बस वे जुगाली करते रहें । यह भी न सोच पायें कि वे क्या कर रहे हैं और क्यों कर रहे हैं ? प्यार की दुनिया में क्या, क्यों और कैसे का कोई स्थान नहीं .....।[1]

---

1. असलाह, गिरिराज किशोर, पृ. 82.

"देखो, मेरे पिता ने मेरी शादी ज़बरदस्ती की है । मैं आदमियों को कम हथियारों को ज़्यादा प्यार करता हूँ.... आदमी को भी प्यार करूँगा तो हथियार मानकर...." वह भौंचक्की-सी देखती रह गयी । उसकी समझ ही में नहीं आया कि दुनिया में प्यार करने की चीज़ आदमी, औरत, बच्चे होते हैं या हथियार ? वह बोलता रहा, "तुम्हें अगर मेरे साथ रहना है तो मेरे इस प्रेम का हिस्सा बनना होगा ।"[1]

मास्टरी में उसका मन नहीं लगता है । वह हथियारों के विचित्र संसार में भटकता है । उसकी कई सन्तानें होती हैं । वह अपना एक गुट बनाता है - हथियार प्रेमी लोगों की इकाई तैयार करता है, अलग से वह विपुल साम्राज्य तैयार करता है । बड़े होते हुए बेटों को ले जाते समय उसकी पत्नी याचना के स्वर में बेटों को ले जाने का अनुरोध करती है । पर वह उसे अनसुना कर देता है । और अपने साम्राज्य को मज़बूत बनाने का प्रयत्न करता है । वस्तुतः असरी शक्तिशाली व्यक्ति के रूप में नहीं बल्कि प्रभुत्व से युक्त संस्था के रूप में बढ़ता है, विकसित होता है - "असरी बीच-बीच में आता था और माँ की गोद में पलते अपने बच्चे को देख जाता था । जब आता तो ऐड़ी बजाकर सैल्यूट मारता और कहता दुनिया अपने नये नेता के लिए आँखें बिछाए बैठी है । जल्दी बड़े हो जाओ । वह अनोखा हथियार तुम्हारे लिए बन रहा है जो दुनिया का सबसे शक्तिशाली हथियार होगा । नई दुनिया का उदय तभी होगा जब तुम और वह हथियार मंच पर प्रकट होंगे । तू उसे सम्मानित करेगा । वह तेरी ताकत बनेगा । इस दुनिया को शीर्ष पर तुम दोनों ही स्थित होंगे ।"[2]

---

1. असलाह, गिरिराज किशोर, पृ. 43.
2. वही, पृ. 63.

उपन्यास की वर्णन शैली की विशेषता और पात्र-विशिष्टता का जो संकेत पहले दिया जाता है वह दर असल उपन्यास के प्रतीक विन्यास का आधारभूत तत्व बनता है । असरी हथियार प्रेमी व्यक्ति का प्रतीक बनकर उपन्यास में परिलक्षित है । और उसका स्वरूप उपन्यास में हथियार प्रेमी साम्राज्यवादी राजनैतिक शक्ति के रूप में है । उपन्यासकार ने निरंतर उसमें अजीब व्यवहार का वर्णन किया है - "परन्तु यह भी ध्यातव्य है कि असरी की शक्ति का एक सामान्य पक्ष ही इसमें ढीला पडता है । उसकी तबाही उपन्यास में अंकित नहीं है । और ऐसी नामुमकिन भी है ।"

साम्राज्यवादी राजनीति के वर्चस्व की अमानवीयता और मानवीयता की आस्था के बीच यह मुठभेड हमेशा होती रहती है । यह एक बहुत बडा सच है गिरिराज किशोर ने अपनी उपन्यास यात्रा के विभिन्न पडावों में राजनीति की वास्तविकता को, जो बाह्यत: सामान्य है, अंतरंगता में विकराल है, उसके तमाम रंगों और रूपों को एक साथ पहचाना है । "असलाह" इस अर्थ में हथियार प्रेम का एक मामूली उपन्यास न होकर उसमें उपनिवेशवादी संस्कृति का परिवेश मोह है ।

नैतिक प्रतिमानों की गिरावट का अर्थ संकेत भी हथियार प्रेम में है । इससे आधुनिक राजनीति की साजिशों का रूप पता चलता है । हथियार के उपयोग से हथियारों के प्रेम तक का यह सिलसिला काफी लंबा है । इस लंबी यात्रा के दौरान हमारे कई बहुमूल्य नैतिक दृष्टिकोण ध्वंस हो चुके हैं ।

एक सवाल उठ खड़ा होता है कि हम किसके अधीन हैं और हमारे अधीन कौन कौन हैं। उपन्यास यह सिद्ध कर रहा है कि हम हथियार के अधीन हैं। उसके प्रति अमरी का प्रेम हमारे प्रेम का द्योतक है। उपयोग से हथियार का नाता टूट चुका है। इसलिए यह सिद्ध होता है। अमरी अपनी पत्नी से अन्तिम सन्तान को हड़प लेता है। लाख मिन्नतें करने पर भी वह अपने गिरोह में ले चलता है - "बेटे ने पिता की तरफ देखा। पिता का चेहरा खिला हुआ था। जिसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी वही होने जा रहा था। बिना पत्नी की तरफ देखे अमरी ने कहा, "चलो, तुम्हारा कर्म-क्षेत्र तुम्हें बुला रहा है। इतने वर्षों तक माँ के संरक्षण में रहकर माँ के प्रति अपना कर्तव्य निबाह चुके, अब पिता के सेवा-जगत में आओ। जगत की सेवा ही ईश्वर की सेवा है। उसमें न प्रश्न हैं न उत्तर। लेकिन यह समझ लो कि सेवा के लिए भी मनुष्य को सामर्थ्यवान होना पड़ता है। ईश्वर हो या जगत, माँ हो या पिता, समाज हो या देश, किसी की सेवा बिना शक्ति के संभव नहीं। शक्ति के प्रतीक हैं अस्त्र-शस्त्र, हथियार। निर्जीव होते हुए भी, जानदार को कई गुना करके लौटानेवाले हैं। यह सिद्धि हैं, यही उपलब्धि है - संसार का सर्वश्रेष्ठ और कालजयी शस्त्र तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। पहले तुम उसके संरक्षण में रहोगे फिर वह तुम्हारे संरक्षण में रहेगा। अन्त में तुम दोनों एक ऐसे बिन्दु पर आकर मिल जाओगे जहाँ तुम में और उसमें कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। वह तुम्हारे कर्म की प्रेरणा हो जायेगा। तुम उसकी सफलता के एकमात्र स्वामी बनकर इस जगत पर छा जाओगे।[1]"

परन्तु अमरी की अन्तिम संतान उसे पूरी तरह मानता नहीं है। लेकिन अपनी सन्तानों के आगे वह झुकता नहीं है। दूसरी संतानों को

---

1. असलाह, गिरिराज किशोर, पृ. 87.

वह परास्त करता है । उन्हें वह निष्प्रभ कर देता है । बाद में बाप-बेटों का सामान्य दायरा यहाँ टूटता दिखाई देता है । ये सन्तान भी निरी संतान न होकर एक बड़े शक्तिशाली प्रभुत्व के अधीनस्थ छोटी-छोटी इकाईयों के प्रतीक हैं ।

छोटा बेटा विद्रोह करता है । अपनी माँ की आवाज़ को ज्यादा महत्व देता है । यह प्रसंग यहाँ पर उपन्यासकार की अपनी कामना को द्योतित करता है, क्योंकि उत्तरोत्तर तबाही की ओर बढ़ती साम्राज्यवादी राजनीति की धुन के बीचों बीच भी उम्मीद की रोशनी की बारीक रेखा तलाशने वाले उपन्यासकार की यह मानवीय दृष्टि भी है । वे निराशा की गर्त में अपने आपको अनुभव नहीं करना चाहते । उस गर्त में मुक्ति की कामना वे आत्मीयता की तलाश के रूप में अभिव्यक्त करते हैं । यही कहीं आशा की किरणों की खोज के रूप में यह प्रसंग उपन्यास के अन्तिम प्रकरण में आया है । हम हथियारों के अधीन हो चुके हैं । उपन्यास के एक प्रसंग में अमरो अपने वैज्ञानिकों द्वारा एक मशीन से परिचित होता है । मशीन के आकार से वह सन्तुष्ट नहीं है । परन्तु वह जब उस लघु आकारवाली मशीन की ताकत से परिचित होता है तो वह रोमांचित हो उठता है -"वैज्ञानिकों ने बड़ी मुश्किल से उसे संहाला । उनका कहना था कि आकार में यह जितना छोटा हो, विस्फोट की किरणों के साथ उसका ऐसा विकीरण होगा कि कोई भी इनसान या जीव ऐसा नहीं बचेगा जिसके शरीर पर तत्काल मौत का खाका न बन जाये और वह चन्द दिनों में छटपटाकर प्राण न दे दे । बनिस्पत जल, वायु, प्रकाश ऐसा कोई नहीं बचेगा जो इसके प्रभाव से मुक्त हो । जहाँ जहाँ इसके कण गिरेंगे वहीं वहीं वे अपने से हज़ार गुना होकर प्रकट हो जायेंगे । वे ही लोग

बचेंगे जो उन कणों से बचने के लिए सुरक्षा कवच पहने होंगे । सुरक्षा कवच का डिजाइन और सूत्र तैयार कर लिया गया है । भूखण्ड को ध्वंसित करनेवाले संयंत्रों के पीछे प्रौद्योगिकी के विकास की सूचनाएँ भर नहीं है बल्कि सत्ता केन्द्रित राजनीति का अदृश्य हाथ भी है । इतने पर भी गिरिराज किशोर उपन्यास के अंत में अमरी के बेटे के माध्यम से इस असलाह प्रेम के विरुद्ध बोलने का उपक्रम दिखाया है । अमरी अपने बेटों नसीहत देता है -"मैं सोचता था कि तुम इनसान की सीमाओं से उठकर चुके और एक ऐसे विकसित मनुष्य की श्रेणी में आ गये जो संकल्प-विकल्प की स्थिति से ऊपर उठा होता है । तुम्हारा आधार भावना नहीं विज्ञान है । द्वैतात्मक द्वन्द्व पर विजय पाकर हथियारों की वास्तविकता पहचानने लगे हो । एक निष्ठ जीवन में प्रवेश करके मुक्ति का रास्ता अपनाने के लिए उत्सुक हो । लेकिन ऐसा नहीं है । तुम एक आदमी और सामान्य हो । भावनाओं के पुतले ।"

परन्तु उससे भिन्न रास्ता अन्तिम बेटा अपनाता है - "अमरी का छोटा बेटा पिता को रुद्र भाव में देख कर भी भय-मुक्त था । वह तभी अन्दर से बाहर आया था । उसके हाथ झूलते हुए थे । पर आँखों में चमक थी । वह बच्चों को खेलते देखकर निहाल हो रहा था । हरे भरे खेत उनसे अन्दर लहरा रहे थे । पक्षी एक सिरे से उड़ते थे और दूसरे सिरे तक निर्द्वन्द्व उड़ते चले जाते थे । आकाश पहले सूर्य की किरणों से चमचमाता रहा, अब तारों से जगमग कर रहा था । वह उन्हें देखकर उतना ही प्रसन्न जितना उसके कारनामे सुनकर उसकी माँ प्रसन्न होनेवाली थी ।"[1] उसे अमरी के रुद्र भाव में भयमुक्त दिखाकर उपन्यासकार ने हथियार प्रेम में निहित सत्तावादी दृष्टि को प्रति अपना सख्त विरोध दर्शाया है । हथियारों से अलग दुनियाँ की तरफ से उसे दिखाते हुए गिरिराज किशोर ने मानवीयता के स्पर्श को भाँपना चाहा है ।

---

1. असलाह, गिरिराज किशोर, पृ. 128.

उपन्यास, लघु उपन्यास, लघु कहानियों के संकलन के रूप में विन्यसित रचना है। प्रत्येक घटना, स्वभाव विशेष अलग-अलग शीर्षक में बन्दित है। फिर भी प्रस्तुत रचना का भीतरी ढाँचा अतिविस्तृत है, एतदर्थ औपन्यासिक है। बाहरी शीर्षक विधान एक सामान्य प्रयोग की सीमा का उल्लंघन नहीं कर रहा है।

व्यवस्था और राजनीति

यद्यपि राजनैतिक कार्यकलापों का संबंध प्रशासनिक क्षेत्र से नहीं है फिर भी प्रशासन को राजनीति ने पूरी तरह ग्रस लिया है। इसलिए प्रशासन की व्यवस्था में अगर कहीं अस्तव्यस्तता है तो उसके पीछे हमारी दूषित राजनीति और तमाम साजिशें भी है। इससे यह जाहिर होता है कि प्रशासन ने राजनीति को अपने अधीन कर लिया है। इसी कारण व्यवस्था की अनैतिकता का चित्रण भी अन्ततः राजनीति की अनैतिकता का चित्रण है। गिरिराज किशोर की रचनाओं में इस विषय का सीधा प्रक्षेपण मिलता है। इसका यही कारण है कि इस व्यवस्था के समुक्ष देश के आम लोग इतने अकिंचन और फालतू हो जाते हैं, असल में कर दिये जाते हैं।

वास्तव में गिरिराज किशोर की रचनाओं में व्यवस्था के इस अन्तर्विरोध का नग्न चित्र मिलता है जिसे हम व्यवस्था विरोधी साहित्य का नाम दे सकते हैं। हमेशा एक खीज ही इन रचनाओं में मुखर होती है।

"समागम" शीर्षक कहानी सरकारी दफ्तरों में व्याप्त घूसखोरी और भ्रष्टाचार को देखती है। डेरेक्टर साहब के आने का कार्यक्रम बनने के दौरान सुगमसिंह जो कि उस समय भी उनके साथ रह चुका है - जबकि वे इसी जिले के इन्स्पेक्टर थे। उस दफ्तर से संबंधित घटनाएँ बयान करता है। यहाँ के स्कूलों को मिलनेवाली ग्रान्ट इस बात पर निर्भर नहीं

करती कि संस्था ग्रान्ट देने के काबिल है या नहीं । वरन् यहाँ इन्स्पेक्टर साहब स्वयं इस्माइलिया कालेज के प्रधानाचार्य से प्रति माह पचास रुपये की माँग करते हैं । और उसे दफ्तर के बाबुओं में क्रमशः बाँटते हैं । जो कर्मचारी यहाँ पर रिश्वत लेने की मानसिकता नहीं रखता, वह भी रिश्वत लेने को बाध्य कर दिया जाता है -

"बस हर महीने लिफ़ाफ़ा आ जाता है । अपनी डायरी खोली । घंटी दबाई फलाँ बाबू को बुलाओ - बाबू आया । वो डाट कर बोले - उठाओ लिफाफा । वह आना कानी करें तो डाँट दें - उठाओ और दफा हो । बाहर खोल कर देखे तो पचास रुपये । हर महीना एक बाबू को सीनियोरिटी से लिफाफा मिलने लगा । ग्रान्ट का मौका आये तो साहब बुलाकर बनत बाबू से कह दें - "ज़रा देख लेना ।"[1]

नौकरी में अपना स्थान और पद बनाए रखने के लिए अधिकारी वर्ग उच्च पदासीन व्यक्तियों, मंत्रियों को खुश करने के लिए किसी भी स्तर तक उतर सकते हैं । जहाँ बाबुओं को खुश करने के लिए पचास रुपये का लिफाफा है वही हम देखते हैं कि इन्स्पेक्टर साहब अपनी भूल चूक के समय मन्त्रि की नाराज़गी से बचने के लिए उनके सामने औरत पेश करते हैं -

"पता चला मन्त्री जी बहुत नाराज़ हैं । सुमित्रा देवी और मन्त्रीजी का पुराना मामला था । देवी जी को धीरे से सरका दिया । मन्त्रीजी आधा घण्टा बाद निकले । चुपचाप गाडी में जा बैठे ।"[2]

---

1. हम प्यार कर लें, गिरिराज किशोर, पृ. 73.
2. वही, पृ. 75.

व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता की स्थिति इस कहानी में खुले तौर पर व्यक्त हुई है । चापलूसी करनेवाला वर्ग वहाँ अपनी स्वार्थ सिद्धि अन्तत: कर ही लेता है और बाद में अगर कोई इस स्थिति से उबर पाने में समर्थ होता है तो वह रामी और कादिर जैसे साधारण व्यक्ति ही है जो खरी को खरी कह पाते हैं ।

"चिमनी" में चिमनी से झरते हुए कोयले को तन्त्र में व्याप्त प्रदूषण की ओर संकेत करके दिखाया गया है । इसमें हम देखते हैं कि व्यवस्था किस प्रकार व्यक्ति को पंगु बनाकर छोडती है । यहाँ पहुँच कर व्यक्ति की कार्य कुशलता और कार्यक्षमता और बुद्धि कुशलता सभी कुछ नाकामयाब होते नज़र आते हैं । "चिमनी" में दिवाकर पण्डित के माध्यम से पूरी व्यवस्था की निर्ममता का पर्दाफाश किया गया है । पुलिस का कुशल अफसर व्यवस्था के क्रूर हथकण्डे के कारण असन्तुलित एवं दयनीय स्थिति में पहुँच जाता है । दिवाकर पण्डित कहता है -

"अगर इनसान अपने आप को सीढी के सबसे ऊँचे डण्डे पर देखना चाहता है तो उसके पास रुपया और औरतों की इफारत होनी चाहिए । मैं ने इस राज को उन्हीं लोगों से समझा था जो उस वक्त ऊपर कतार बान्धे खडे थे । लेकिन सबने मिलकर मुझे उस डण्डे तक पहुँचने से पहले ही लात मार दिया ।"[1]

"तैतय्या" में व्यवस्था के दिखावे और खोखलेपन की ओर इशारा किया गया है । तमाम गडबडियों के बावजूद भी जब व्यवस्था ऊपर से

---

1. शहर दर शहर, गिरिराज किशोर, पृ. 10.

चिकनी बनी रहती है तो उसकी तह पहचानने वाले एक व्यक्ति की मुस्कुराहट भी बरदाश्त के बाहर हो जाती है। कहानी का केन्द्र पात्र महसूस करता है कि "काश मेरे पास वह शाप शक्ति होती तो मैं सबसे पहले इन मुस्कुराहटों को जल कर खाक कर देता, जिन्होंने हमारे सामने बैठकर इन मुस्कुराहटों का मनमाना उपयोग किया।"[1]

अव्यवस्था को व्यवस्थित करने की बजाय उससे अपने आपको बचाने का प्रयास ही तन्त्र में व्यक्ति करता है। और ऊपर से अपनी कार्य-कुशलता का ढोंग भी। परन्तु समकालीन पीढी में कम से कम इतना साहस है कि वह इस खोखलेपन को नकार सके। यही नकार का स्वर "तितयुया" में है। उत्तेजित छात्रों की भीड में से अपनी जान बचाकर भाग निकलने वाला कहानी का केन्द्र पात्र घर पर जब अपनी बहादुरी और साहस की डींग हाँकता है तो उसी समय उसके दो साल के बेटे को कोई नहीं पूछता जो "तितयुया" पकडकर सारे घर में घुमा। यही स्थिति व्यवस्था की भी है। जो जिसके हक में हैं उसे नहीं मिलता। बच्चा इसका विरोध करता है और -
"उसने दूध के प्याले में कुछ डाल दिया, मेरी पत्नी झपट कर उठी। उसके हाथ और निकट पैखाने से सने थे।"[2]

राजनीति की घुसपैठ, उपभोगवादी संस्कृति का अभिमंत्रित प्रयास मध्यवर्गीय टुच्चापन व्यक्ति की पलायनवादी दृष्टि में निहित अर्धपूंजीवादी

---

1. शहर दर शहर, गिरिराज किशोर, पृ. 10.
2. हम प्यार कर लें, गिरिराज किशोर, पृ. 64.

और फासिस्ट प्रवृत्ति से हमारा जीवन और अमानवीय हो गया है । यह स्थिति साहित्यकार के समक्ष एक चुनौती बनकर खडी हो गयी है । गिरिराज किशोर इस चुनौती को अपना विषय बनाते हैं । उनका विक्षोभ इन तमाम रचनाओं में प्रकट है । राजनीति हमेशा एक ऐसा तन्त्र है जो जनहिताया बनी है । हमारी आधुनिक राजनीति ने संभवत: इस तन्त्र को स्व-हिताय बना लिया है । व्यवस्था भी यहाँ चरमरा उठी है और राजनीति की मोहर इस पर लगी हुई है । चाहे जीवन का एक हल्का प्रसंग ही क्यों न हो इसमें यह मुहर स्पष्ट रूप से दीख पड़ती है ।

गिरिराज किशोर की रचनाओं में राजनीति के प्रकट चित्र उपस्थित हैं परन्तु उनमें कुछ आडीतिरछी रेखाएँ भी हैं । उन रेखाओं के बीच फँसे हुए मनुष्य हमें दीख पडते हैं । कहीं कहीं गिरिराज किशोर राजनैतिक जीवन के खालीपन पर सीधा आक्रमण करते हैं । परन्तु इस आक्रमण के बीच भी कहीं कहीं विद्रूप दृष्टि से भी गिरिराज किशोर राजनैतिक जीवन की अर्थहीनता को माँजते हैं ।

लोकतन्त्र के नारों की बुलन्दगियों के बीच सामान्य जीवन को अनदेखा करने का जो सशक्त उपक्रम आज की राजनीति में है, वस्तुत: इसी के विभिन्न पक्षों की सीवन उधेडने का कार्य गिरिराज किशोर की रचनाएँ करती हैं । गिरिराज किशोर का उद्देश्य इन पहलुओं का नक्शा तैयार करना नहीं है । अपितु इस नक्शे के गायब हुए सामान्य जन जीवन को ढूँढना उनका

उद्देश्य रहा है । वर्गीकरण के आधार पर देखा जाये तो कुछ रचनाएँ अफसरशाही से संबद्ध दीख पड़ेंगी । अफसरशाही का सिलसिला इसी कारण जटिल हो गया है कि उसकी डोर तथा कथित राजनीति से बन्धी हुई है । हम अपने जीवन में अराजनैतिक नहीं हो सकते । हर कदम पर उसका कोई न कोई चेहरा हमें नज़र आता है । गिरिराज किशोर की विशेषता है कि उन्होंने इस प्रसंग को मोह भंग के स्तर पर चित्रित नहीं किया है । भावुकता का संस्पर्श भी नहीं है, क्योंकि वे सही मायनों में समकालीन रचनाकार हैं । उनके सपाट चित्रण में राजनीति की अन्तर राष्ट्रीयता, संकीर्णता और मौके के अनुसार ऊपर उठ कर आनेवाला उसका जहरीला रूप आदि चिह्नित होते हैं । अगर गिरिराज किशोर राजनैतिक संदर्भों के रचनाकार हैं तो वे मानवीयता के पक्षधर रचनाकार ठहरते हैं ।

पाँचवाँ अध्याय

गिरिराज किशोर के कथा साहित्य का शिल्प-विधान

शिल्प की नयी अवधारणा

रचना के शिल्प पर अलग से विचार करने का यह अर्थ नहीं होता है कि वह रचना के बाहर का कोई घटक है । वास्तव में शिल्प के अंतर्गत वे सभी युक्तियाँ आती हैं जिनका उपयोग रचनाकार अपनी बात को कहने के लिए करता है । किसी भी कलाकृति के लिए कथ्य और शिल्प अलग-अलग नहीं होते हैं । यही कारण है कि समय के बदलाव के साथ-साथ जब साहित्य की संवेदना प्रभावित होती है तो शिल्प भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है ।

जब हम शिल्प की बात करते हैं तो लगभग हर चीज़ की बात करते हैं जिसका संबंध रचना से है । क्योंकि शिल्प ही तो वह माध्यम है जिससे लेखक का अनुभव जिसे प्राय: विषय वस्तु की संज्ञा दी जाती है, स्वत: रूपबन्ध पा लेता है । शिल्प को संभवत: हम वह साधन कह सकते हैं जिसके माध्यम से लेखक अपनी विषय वस्तु की खोज करता है । उसकी छानबीन करता है, उसका विकास करता है और उसके माध्यम से वह अपने आप को सम्प्रेषित करता है ।

इस कारण जहाँ शिल्प के अलग अध्ययन की माँग की जाये वहाँ वह अनुचित तो नहीं बशर्ते यह अध्ययन रचना के अविभाज्य अंग के रूप में किया जाये । कथ्य को शिल्प से अलग करके देखने की परंपरा यद्यपि कुछ समय तक बनी

हुई थी किन्तु वास्तव में शिल्प और कथ्य रचना में एकीकृत रहते हैं । शिल्प को हम इसीलिये कथ्य की अन्त:प्रवृत्ति का प्रतिफलन कह सकते हैं ।

गिरिराज किशोर ऐसे रचनाकारों में से है जिन्होंने कथा को कला के औपचारिक बन्धन में बाँधने की मान्यता को स्वीकार नहीं किया । वे उसे आदमी की मुक्ति के साथ जोडने का ही प्रयास करते हैं । इस कारण से उनकी रचनाएँ दृष्टि से कुछ बदली हुई हैं एवं पूर्ववर्ती साहित्य से इनमें जो हल्की विभाजक रेखा बनती दीख पडती है उसी से वास्तव में शिल्प की नयी अवधारणा भी रूपायित होती है ।

रचनाकार का जो दृष्टिबोध है वही शैल्पिक प्रयोग का प्रेरणा स्रोत है । क्योंकि "किसी भी साहित्यिक विधा की प्रचलित ज़मीन को नया शिल्प नहीं तोडता । तोडने की हौस में वह आरोपित ज़रूर जोने लगता है । उसकी ज़मीन को तोडती है "नयी वस्तु" । वस्तु को कहने की विवशता से गुज़रना ही रचनाकार का शैल्पिक दायरे में चले आना है । वस्तु को वह जिस कोण से उठाता है वही उसका शैल्पिक कोण भी हैं ।"[1]

जहाँ तक गिरिराज किशोर का संबंध है वे शिल्प को ढूँढते

---

1. नई कहानी पाठ और प्रवृत्ति, सुरेन्द्र, पृ. 84.

कथाकार नहीं हैं । उनकी रचनाओं में शिल्प का स्वतः स्फूर्त पक्ष विवृत होता है । उनमें प्रयोग है परन्तु चमत्कार के लिये नहीं है । बात को संप्रेषित करने के सशक्त माध्यम के रूप में ही शिल्प सामने आते हैं भले ही ऊपरी तौर पर सपाटता आयाम प्रदान करें ।

पात्र केन्द्रीकरण का समकालीन संदर्भ

गिरिराज किशोर हमेशा ऐसे रचनाकार हैं जो कि समय के प्रवाह के नैरन्तर्य में पात्र की स्थिति को उभारने की लगातार कोशिश करते हैं । वे पात्र के साथ की सहस्थिति को अनुभव के रूप में परिवर्तित करके अपने कृतिकर्म को एक व्यापक मानवीय बिम्ब के रूप में परिवर्तित करते हैं । देश-काल में स्थित मनुष्य का अंकन गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में है यहाँ पात्र प्रधान है क्यों कि इसी पात्र के साथ सारी स्थितियाँ जुडी हुई हैं और खुद-ब-खुद उभरती जाती हैं । इसी कारण गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में पात्र-केन्द्रीकरण की यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दीख पडती है । कोई एक पात्र कथा के केन्द्र में नज़र आता है और कथा के समस्त तन्तु किसी न किसी प्रकार उस केन्द्र पात्र से जुडते हुए नज़र आते हैं । तथा कथित केन्द्र पात्र को कभी कभी इतना अधिक प्रक्षेपित किया जाता है कि वह अन्य पात्रों की तुलना में बहुत ऊँचा नज़र आने लगता है । परन्तु इस प्रवृत्ति में अन्य पात्रों को गौण दिखाने की प्रवृत्ति नहीं और ना ही किसी अतिशय उक्ति का सहारा है बल्कि पात्र की स्थिति और मानसिकता से समय-प्रवाह के नैरन्तर्य में मानव की स्थिति का अंकन ही प्रमुख हो उठता है ।

"ढाई घर" उपन्यास में पात्र केन्द्रीकरण का यही नमूना हमें दृष्टिगोचर होता है । संपूर्ण उपन्यास एक ज़मीन्दार परिवार की कथा है । धीरे-धीरे उस परिवार के उजाड़ने की कथा भी है । उस परिवार के केन्द्र में हरिराय है । परिवार हरिराय का परिवार है उस परिवार के जितने सदस्य हैं उन सब की अपनी कथाएँ हैं टूटती बिखरती आशाएँ और आकांक्षाएँ हैं किन्तु हरीराय की अपनी शान और शौकत है और उनका अपना आभिजात्य भी । उनका बेटा भास्कर राय उनके बारे में कहता है -

"जब तक बड़े राय रहे वे ही मेरे भगवान थे । मुझे हमेशा लगा कि मैं तो उनके पेशाब से पैदा हुआ हूँ ।"[1]

गिरिराज किशोर ने इस उपन्यास को आत्मकथात्मक ढंग से लिखा है । भास्कर राय हरीराय का बड़ा बेटा ही इस कथा को प्रस्तुत करता है और इसमें हरीराय का व्यक्तित्व एक विराट रूप धारण किये हुए हैं । हरीराय के दो भाइयों - कृष्ण राय एवं राघव राय - की कथा भी प्रस्तुत की जाती है किन्तु हरीराय के चरित्र में ही ज़मीन्दारी की आभिजात्यता को उभारा गया है । जब कि कृष्ण राय और राघव राय ज़मीन्दारी की आभिजात स्थिति को तोड़ने का प्रयास तो करते हैं किन्तु वे ही हरीराय से बढ़कर ज़मीन्दारी के शिकार भी है ।

हरी राय के व्यक्तित्व में जहाँ बाहरी प्रभाव है, आभिजात्य है वही हम देखते हैं कि मानवीयता का स्पंदन भी दीख पड़ता है । "काला

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 2.

साईस उनके हाथों इस बात के लिए बेबात पीट दिया जाता है कि उनके लड़के भास्कर द्वारा चलाई जानेवाली गिग मेम की गाड़ी से भिड़ गयी और अब ख़ैर न होगी । किन्तु बाद में उस काले साईस से भी माफ़ी शब्द का प्रयोग न करते हुए भी माफ़ी माँग लेने का उनका अपना ढंग है -

" बड़े राय अन्दर से निकलकर गाड़ी तक आये । उनकी परछायी उनसे सटी हुई थी । गाड़ी में बैठने लगे तो उनका पायदान पर रखा पाँव एकाएक नीचे उतर आया । वे काले के पास गये । अपना हाथ उसके कन्धे पर रखा । एक दो बार थपथपाया । मुझे लगा कि वे काले साईस से माफ़ी न माँग कर भी माफ़ी माँग रहे हैं । कभी-कभी इस तरह के लोग अपने को अहंकार से इतना बाँध लेते हैं कि सच बात भी उसके नीचे दबी रह जाती है । हालांकि तामझाम वही सब करते हैं । बस, उन्हें कहना न पड़े दूसरा समझ जाये।

हरीराय की जमीन्दाराना सनक भी कम नहीं है । अपनी पत्नी को जब भी वे देखते हैं तो वे चाहते हैं कि नयी साड़ी में दिखे "अगर कभी वे धुली साड़ी में नज़र आ जाती तो ऐसा दहाड़ते थे कि माँ बकरी की तरह दुबक जाती थीं । उस ज़माने में प्रेम की यही वक्र अभिव्यक्ति थी ।

जमीन्दारी की तमाम विकृतियों में से सबसे अधिक प्रक्षेपित अंश तो सत्ता के साथ उसका गठबन्धन था । "ढाई घर" की कथा की मुख्य गति को मोड़ देनेवाला अंश भी यही है ।

---

1. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 36.

हरीराय के और ब्रिटिश सरकार के लोगों का जो संबंध है उसे भी उपन्यासकार ने विस्तार से प्रस्तुत किया है । उसके अन्तरगत हरीराय के मजिस्ट्रेट होने की बात से लेकर जिले के प्रतिष्ठित अफसरों के साथ उनके घनिष्ठ संबंध भी शामिल हैं । हरी राय के अफसर शाही के साथ संबंध को ज़मीन्दारी के प्रभुत्व का हिस्सा मात्र समझना ठीक नहीं होगा । वे उनके साथ उठने बैठने वाले हैं । उनकी क्लब के सक्रिय सदस्य हैं । ब्रज के खेल में उनके सहयोगी हैं । किन्तु ज़मीन्दारी एवं अफसरशाही के गठबन्धन में निहित पूँजीवादी संस्कृति का चित्र इस उपन्यास में इतना स्पष्ट है कि उसे उपन्यास का मुख्य घेरा माने तो अनुचित नहीं होगा । इसकी धुरी के रूप में स्थित है उपन्यास में हरी राय का चरित्र ।

स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमीन्दारी की मानसिकता और उनके जीवन की स्थितियों के प्रामाणिक चित्र उपस्थित करने वाले उपन्यास जुगलबन्दी में भी पात्र केन्द्रीकरण की यही तरीका प्राप्त है । जुगलबन्दी के केन्द्र में कुँवर शिवचरण बाबू का चरित्र है और उनके चारों ओर से जाते हुए कथा तन्तु में सारी स्थितियाँ उभरती नज़र आती है । शिवचरन बाबू का चरित्र उपन्यास में पूरी तरह से छाया हुआ प्रतीत होता है । उनका व्यक्तित्व इतना रोबीला है कि उनके समक्ष अन्य पात्रों की जबान में ताले पड जाते हैं -

"वे (शिवचरन बाबू) फिर बोले, "इस वक्त हुकूमत परेशानी में है । हमें अपना फ़र्ज समझना चाहिए । इतने बडे जंग में उलझी हुई है । कभी हमने सरकार से अपने लिये कुछ माँगा या किसी दूसरे के लिए माँगा, कभी ऐसा

नहीं हुआ कि हमें इनकार मिला हो । राजा का परजा पर पहला हक है ।"[1]

वीरू बाबू ने कुछ कहना चाहा, सिर्फ लेकिन कह पाये ।

x x x x x

मालिक (शिवचरन बाबू) का हुक्म तो हो गया ।
गंगा ने दबी जबान से कहा । वीरू बाबू बोले - "लड़ाई चल रही है । अब कोई रुपया नहीं फसाना चाहता कांग्रेस जोर बान्धे है । सब टूटी नाव पर सवार हैं ।
"मालिक से कह दे ।"
"उनसे कहने की बात ही कहाँ है । हुकुम के सामने बोला नहीं जाता है ।"[2]

शिवचरन बाबू के व्यक्तित्व को इतना रोबीला दिखाया गया है कि अन्य सभी पात्र छोटे प्रतीत होते हैं किन्तु उन पात्रों की स्थितियाँ और मानसिकता भी कथा-तन्तु का अंश अवश्य बनती है । यहाँ पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि शिवचरन बाबू का यह रौब अंग्रेज़ों के द्वारा ज़मीन्दारी और सत्ता के गठबन्धन के तहत उनको दिये गये सम्मान के कारण हैं । यह सत्य है कि आरंभ में अंग्रेज़ परस्त ज़मीन्दार होने के कारण लोग उनकी इज्जत करते हैं किन्तु कांग्रेस की लहर आने पर यह इज्जत धीरे धीरे कम होती जाती है । परन्तु उनके व्यक्तित्व का आभिजात्य कम नहीं होता है । चरित्र दृढ़ एवं गंभीर ही रहता है । परिस्थितियों की विपरीतता में भी वे टूट जाते हैं

---

1. ढुनाली चन्दी - गिरिराज किशोर - पृ० 39
2. वही - पृ० 40

पर झुकना उन्हें मंजूर नहीं होता है । जलसे में उन्हें तीसरी लाइन पर आकर बैठना मंजूर नहीं होता और वे लौट पड़ते हैं । वे कहते हैं -

"वक्त की बात है ज़िन्दगी में पहली बार मुझे तीसरी लाइन में बैठने को कहा जा रहा है ।" .... रूक कर बोले, "इज़ाजत दें, मैं चलता हूँ ।...... शिवचरण बाबू सीढ़ियों पर उतरने लगे ।"[1]

इस प्रकार झुकने की स्थिति तक पहुँचना उनको मंजूर नहीं होता । और समझौते की कायर नीति अपनाने की अपेक्षा वे आत्महत्या करने को तैयार हो जाते हैं ।

"लोग" में "बाबा" अर्थात् यशवन्तराय के चरित्र को इसी प्रकार उभारा गया है । इस संबंध में बताते हुए लेखक स्वयं कहते हैं कि इस उपन्यास का संघर्ष, वो कहीं न कहीं अहम का परंपराओं का और अपनी सीमाओं से बाहर निकलने का संघर्ष था वे कहते हैं कि "इसके पात्र, जैसे बाबा है वो एक ऐसे व्यक्ति है जो एक खास तरह के वातावरण में पले बड़े हुए और उसके बाद उसी रूप में चलना चाहते हैं । जो परिवर्तन सामाजिक क्रांति के रूप में कांग्रेस के माध्यम से या किसी अन्य माध्यम से हो रहे हैं उसके साथ वह चल पाने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं ।"[2] किन्तु यहाँ पर बाबा का व्यक्तित्व

---

1. जुगलबन्दी - गिरिराज किशोर - पृ. 27

2. गिरिराज किशोर से लोठार लुठ से की बातचीत ।

किसी के सामने न झुकने वाला और रौबीला है । परिस्थितियों में आनेवाले सभी परिवर्तन को बाबा की मानसिकता और उनके जीवन में आनेवाले परिवर्तन के माध्यम से हम देखते हैं ।

समय यहाँ बदल रहा है । जमीन्दारों के प्रतिनिधि के रूप में उभरनेवाले यशवन्त राय क्योंकि इन परिवर्तन के सन्धि स्थल पर खड़े है । उनमें ही यह परिवर्तन प्रतिबिम्बित होता है और उभरता है ।

"असलाह" शीर्षक उपन्यास में अमरी नामक पात्र को पूरी तरह से केन्द्र में रखकर प्रस्तुत किया गया है । एक तरह से अमरी के चरित्र विकास का ही रूप है । अमरी के बचपन से लेकर उसके अधेड उम्र तक के जीवन को, उस जीवन के विभिन्न आयामों को, उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है । पात्र-केन्द्रीकरण और उसके माध्यम से स्थितियों एवं औपन्यासिक दृष्टि के विकास का परिपक्व शिल्प का रूपायन "असलाह" में दर्शित होता है । इस उपन्यास में यह स्पष्ट है कि अमरी का चरित्र विकास अमरी का एकांगी विकास नहीं वह असलाह प्रेम का विकास है जो सत्ता पर आधारित अनिश्चित राजनीति का भी विकास है ।

स्थितियों के साथ पात्रों की अन्विति

वास्तव में मानवीय संत्रास और विशाद अनुभव से संबद्ध रचना ही काल और मूल्यों के संदर्भ में जीवन का प्रतिबिम्ब बनाती है । गिरिराज किशोर की रचनाओं में पात्रों की प्रक्रिया का विधान भी इसी प्रकार संबद्ध

दिखाई देता है । ज़िन्दगी से जुड़े हुए पात्र जिनमें गहनतम अनुभव को साकार करने की क्षमता बरकरार है, यही कथा के कलेवर को सार्थकता प्रदान करते हैं । जहाँ तक गिरिराज किशोर की रचनाओं का संबंध है ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं । कभी यहाँ घटनाओं से चरित्र उत्पन्न होते नज़र आते हैं तो कभी चरित्रों से घटनाएँ मिश्रित होती दीख पड़ती हैं । दरअसल यहाँ रचनाकार की समझ पात्रों की समझ हो जाती है । विशेष संदर्भ में लेखक के अनुभव की पृष्ठभूमि ही पात्रों का सृजन करके उन्हें स्वरूप प्रदान करती है ।

पात्रों की प्रामाणिकता लेखक के अनुभव की प्रामाणिकता है पात्रों के माध्यम से ही रचनाकार मानव संवेदना का साक्षात्कार करता है । व्यापक मानवीय संवदेना का साक्षात्कार ही सबसे कठिन कार्य है । संवेदना पात्रों से निर्मित होती है और पात्रों को संवेदना निर्मित करती है । पात्र के साथ जो कुछ घटित हुआ है या होता है उसके परिप्रेक्ष्य ही रचना का परिवेश बनता है । इसी को लेखक का सामाजिक परिवेश कह सकते हैं । वातावरण में एकाग्र होकर वे इसका उपयोग आन्तरिक स्तर पर करते हैं और तब रचना मात्र आँखों देखा हाल न रह कर या कोई वक्तव्य न बनकर लेखक के सूक्ष्म "इन्वाल्वमेंट" का सबूत देती है ।

गिरिराज किशोर की रचनाओं में स्थितियों के साथ पात्रों को यह अन्विति सब कहीं व्याप्त हैं । यहाँ पात्र प्रमुख होते हैं किन्तु पात्रों के माध्यम से वे सारी स्थितियाँ उभरती हैं जिनसे पात्र प्रभावित हैं ।

"पेपर वेट" शीर्षक कहानी में मृणाल बाबू नामक पात्र पर आद्यन्त फोकस करती है । परन्तु यहाँ प्रस्तुत पात्र के माध्यम से वे तमाम राजनैतिक स्थितियाँ उभर कर सामने आती हैं जो सीधी तरह से सोचनेवाले मनुष्य की आत्मा की नियति को अन्ततः घुटकर रह जाने को बाध्य करती हैं । स्वार्थ और कपट जो कि राजनैतिक माहौल से आज अविच्छेद्य है । ये तमाम स्थितियाँ पात्र से घिरे रहकर हमारे सामने उपस्थित होती हैं -

"मृणाल बाबू ने जब उन लोगों को मुख्यमंत्री से मिलने का सुझाव दिया तो उनमें से एक विरोधी पार्टी के विधायक और डेप्युटेशन के नेता बिगड उठे, "आप भी शान्तिशरण जैसी बातें कर रहे हैं । आखिर विभाग आपके पास है या मुख्यमंत्री के । मुख्यमन्त्री कहते हैं कि आप लोग शान्तिशरण को तो बेईमान और कम अक्ल समझते थे । अब तो मैं ने विधान सभा के सबसे ईमानदार और आपके विश्वास पात्र को उसी विभाग का मन्त्री बना दिया । अब भी आप मेरे पास ही दौडते हैं । मृणालबाबू खामोश खडे रह गये उनको लगा दरवाज़ा खोलते हुए किवाड की चूल निकल गयी है । मन हुआ साफ कह दें, मैं तो नाम का मिनिस्टर हूँ ...." लेकिन सबके सामने अपने मुँह से यह स्वीकार करना उन्हें अपमान जनक सा लगा । अतः एक ही उत्तर देना उचित समझा, "अच्छा निश्चिन्त रहे..... अगर मैं कुछ भी कर सकूँगा तो ज़रूर करूँगा....." नमस्कार करके अन्दर चले गये ।"[1]

"यथा प्रस्तावित" की पूरी कथा चतुर्थ श्रेणी के एक हरिजन कर्मचारी बालेसर की पत्रावली के सहारे ही आगे बढती है । अपने पारिवारि

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 111.

तथ्यों और दुर्घटनाओं का विस्तृत ब्यौरा जो बालेसर अपने पत्रों एवं स्पष्टीकरणों में देता है । उनके माध्यम से ही स्थितियाँ स्पष्ट होती हैं । बालेसर चारों तरफ़ शोषण और जातिगत विद्वेष का शिकार होकर पागल हो जाता है । नौकर शाही की अमानवीयता और यान्त्रिकता का दस्तावेज़ के रूप में ही उपन्यास में सारी स्थितियाँ उभरतीं हैं । इस एक पात्र बालेसर की पत्रावली और उसके प्रति लोगों के रुख से अनुशासन के नाम पर नृशंस अफ़सरों की हृदयहीनता, सवर्ण सहयोगियों और अधिकारियों का जातिगत वैमनस्य एवं अनुसूचित जातियों को मिलनेवाली सुविधाओं के प्रति ईर्ष्या, द्वेष, एकाध ईमानदार अधिकारियों की नपुंसकता, छटपटाहट और भीरुता भी स्पष्ट होती है ।

निम्नवर्गीय तबके के पात्र गिरिराज किशोर के कथा साहित्य में पूर्ण अर्थवत्ता के साथ अपनी स्थितियों के साथ उभरते हैं । आवश्यकताओं की पूर्ति और सामाजिक आर्थिक सुरक्षा के लिये होनेवाला संघर्ष और उससे उत्पन्न तनाव विसंगतियाँ आदि रचनाओं में पात्रों के व्यवहारों से स्पष्ट होते हैं । पात्रों की विचारधारा में कोई दार्शनिक चिन्तन का पक्ष उभरकर नहीं आता है बल्कि उस परिवेश में जीनेवाले मनुष्य की प्रायोगिक आवश्यकताएँ ही स्पष्ट होती हैं ।

"दो" की नायिका नीमा को इस संदर्भ में लिया जा सकता है । नीमा की संवेदना रक्षित है । अपने जीवन के पूरे माहौल के प्रति वह विद्रोह करती है और वह कहीं भी चैन नहीं पाती है । वस्तुतः संघर्ष करनेवाल

और उस संघर्ष को निरन्तर वहन करनेवाला ही अपनी मानवीय संवेदना का वास्तविक हकदार है । नीमा संस्कारों से लड़ती है । समाज से लडती है और जिस प्रकार की आर्थिक परिस्थितियाँ हैं उनसे भी वह जूझती है । यहाँ नीमा "मारने-पीटने" वाली आक्रामक स्त्री को नहीं बल्कि एक स्वाभाविक चरित्र के रूप में उभरती है ।

इसी प्रकार "रिश्ता" कहानी में भी मनकी और गिरधारी के माध्यम से निम्नवर्ग का एक पूरा परिवेश सामने आता है । पुत्र एवं माता का रिश्ता तो वहाँ पर है किन्तु साथ ही आर्थिक सुरक्षा के लिये माँ के द्वारा यौनाचार के सिक्के के रूप में प्रयोग भी है । मनकी पहले सौदा तय करती है कि कौन उसके एवं उसके बेटे को बेहतरीन तरीके से रख सकता है । तब कहीं जाकर वह किसी के घर बैठने को तैयार होती है । सौदा तय करने के बाद मनकी का व्यवहार बिलकुल बदल जाता है -

"गिरधारी नहा धो कर नये कपडे पहने लौटा । राम तीरथ ताँगा लेकर आ गया । लगभग सब सामान राम तीरथ और ताँगेवाले ने मिल कर चढा लिया था । मनकी धीरे धीरे बोलकर बहू की तरह सामान बताती जा रही थी ।

"चूहे" में अम्मा, बाबूजी, सविता रंजी सभी पात्र इस रूप में अवतरित हैं कि मध्यवर्ग की परिस्थितियाँ और उसमें जीनेवाले लोगों की अवसर के लाभ उठाने की प्रवृत्ति सभी कार्यकलाप प्रकट होती है ।

"अम्मा कह रही थी" चूहे दौड रहे हैं ...... सविता ने आज बीच का दरवाज़ा बन्द नहीं किया ।"

आपकी नींद भी खूब है, चूहों की सटर में भी सोये चले जा रहे हैं ।

बाबूजी ने शायद करवट बदलते हुए अलसायी आवाज़ में कहा, "हाँ..... चूहे मुझे परेशान नहीं करते ।

अम्मा चुप हो गयी । थोडी देर बाद बोली, कहें तो बीच का दरवाज़ा बन्द कर दूँ ? कर भी दी गई ......" बाबूजी की आवाज़ फिर डूब गयी ।

सविता के होंठों पर हँसी फैल गयी । अम्मा ने दरवाज़ा बन्द करके चटखनी चढा ली ।"[1]

"चिमनी" शीर्षक कहानी के केन्द्र में दिवाकर पण्डित नामक पात्र है । कहानी में उस पात्र के कार्यकलाप एवं उसके साथ घटित घटनाओं का उल्लेख मात्र है । परन्तु इस पात्र के कार्यों एवं संवादों के माध्यम से व्यवस्था की अमानवीयता एवं निर्ममता का ही पर्दाफाश होता है । उसमें दिवाकर पंडित के माध्यम से समकालीन परिवेश का खाका विन्यसित है -

"मैं ने पूछा - मि. पण्डित आप समझदार हैं । इतनी बातें समझते हैं । लेकिन इस सबके बावजूद आपने अपनी यह हालत क्यों हो जाने दी,

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 24.

"मैं ने अगला वाक्य अंग्रेज़ी में कहा, "यू हैव सरेण्डर्ड योर सेल्फ टु एन अनक्वालिफाइड डिफीट ।"

× × ×

वह उठकर मेरे पास आया और बोला । मैन यू डोन्ट नो मी । मुझे रूपये और औरत ने यहाँ तक पहुँचा दिया है । लेकिन दिस इस माई कनफ़र्म्ड फेथ .... किये मुझे ऊपर भी पहुँचा सकते थे । दिस इस ए मिस्टेक ऑफ़ कैलकुलेशन, नाट आफ द मीडियम ।"[1]

"चिड़िया घर" उपन्यास में एक रोज़गार दफ़्तर के परिवेश में कुछ पात्रों के माध्यम से आज की ज़िन्दगी के टुच्चेपन और खोखलेपन को प्रस्तुत किया गया है, उसमें चर्चा के केन्द्र में रहनेवाली पात्र एक स्त्री है - मिसेज रिजवी । मिसेज रिजवी दफ़्तर की एक मात्र महिला है । बड़े साहब मिस्टर स्मिथ की कृपा पात्र एवं शायद हम बिस्तर भी है । बाकी सभी पात्र उससे डरते हैं । लेकिन औरत के रूप में उसकी कृपा भी चाहते हैं । वे प्रायः उसे बदचलन तो कहते हैं साथ ही उसे पाने की हसरत भी रखते हैं । यहाँ नौकरी पेशा स्त्री की स्थितियाँ, साथ ही साथ प्रत्येक पात्र के माध्यम से रोज़गार दफ़्तर की हालत भी उभर कर आती है ।

इसी प्रकार "खरबूजे" कहानी के प्रमुख पात्रों अरूंडल साहब और पंचम के माध्यम से कार्यालय और तरक्की से बदली मानसिकता को उभारा गया है । तरक्की के साथ हर किसी की मानसिकता भी बदलती है ।

---

1. शहर दर शहर, गिरिराज किशोर, पृ. 23.

अफ़सरी अफ़सरी नयी-नयी अफ़सरी के कारण ऊहापोह में हैं और वहीं चतुर्थ श्रेणी का पंचम तृतीय श्रेणी में पहुँचता है तो अपना रुख बदल लेता है । पंचम द्वारा पैदा की गयी स्थिति इस हद तक पहुँचा देती है कि अफ़सरी का ठहरना भी मुश्किल हो जाता है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक श्रेष्ठ कथा रचना में पात्र व परिस्थिति की सही अन्विति आवश्यक है । गिरिराज किशोर की रचनाएँ इस अन्विति के लिए इसलिए प्रसिद्ध है कि इसे उन्होंने शिल्पप्रयोग का एक तरीका नहीं माना है । अनुभवों का जब स्वत: विकास उनकी रचनाओं में होता है तो अनुभव की तात्कालिकता मिट जाती है और उसके स्थान पर कथात्मकता का वृत्त रूप ग्रहण करता है । उसके केन्द्र में पात्र रहता है जिसे पात्र के रूप में प्रस्तुत किया जाता है और जीवनानुभव के रूप में भी । ऐसे में अन्विति का परिपाक् सब कहीं दृष्टिगोचर होता है ।

किस्सागोई की शैली

कथा के रूप बन्ध में प्रयोग प्रेमचन्द के दौर से होते आये हैं । नयी कहानी के दौर में कहानियों के संदर्भ में भी और उस दौर के उपन्यासों में भी यह बात स्पष्ट दीख पड़ती है । कथानक के ह्रास की बात प्राय: कही जाती रही परन्तु कथानक के ह्रास के विभिन्न प्रयोगों से गुज़रते हुए भी कथा की प्रस्तुति शैली में अन्तर अवश्य आये हैं । आख्यान शैली या कहानीपन आज भी किसी न किसी रूप में कथा-साहित्य का अंग है । उसको फिर से प्रमुख

मानने की दृष्टि विकसित हुई है । एक प्रकार से यही किस्सा-गोई की शैली है । घटनाओं के महत्व को नकारे जाने पर भी कथ्य का महत्व बना रहता है । वस्तुतः कथानक ही कथा को बनाए रखता है । आज कथा में घटनाओं के क्रम और आश्चर्यजनक स्थितियों के अभाव में भी कथानक को बरकरार रखा गया है । कथ्यहीनता की स्थिति यहाँ नहीं आती है । लेखकीय दृष्टि में जब यह परिवर्तन होता है तो शिल्प में भी यह परिवर्तन आना स्वाभाविक है ।

सपाट बयानी और किस्सा गोई की शैली समकालीन कथा साहित्य में पुनः विकसित होती दीख पड़ती है । गिरिराज किशोर ने भी इसी शैली का प्रयोग अधिकांश रचनाओं में किया है । उनके कथा-साहित्य में शैल्पिक प्रयोग प्रयत्नगत कम और स्वतः स्फूर्त अधिक है । समकालीन कथा के संदर्भ में हम देखते हैं कि "सीधी सपाट ढंग से वस्तु निरूपण करके उसे एक "कर्व" देने की प्रवृत्ति बढ़ी है । वस्तु विन्यास में परिवर्तन लाते हुए उसके टोन में परिवर्तन लाते हुए चलना उसे अलग-अलग वेवलेन्थों में प्रसारित करना इस दौर की रचना का एक खास पहलू बना ।"[1] ऐसे अवसरों पर पाठक और लेखकों के बीच संवाद की स्थिति बनती है किस्सा कहने के समान शैली आ जाती है । गिरिराज किशोर की रचनाओं में यही बात देखी जाती है । यह पाठक और लेखक को करीब लाने में सहायक सिद्ध होती है । अक्सर रचना का प्रारंभ ही इस बात का एहसास कराता है कि यह कही जानेवाली विधा है -

"विधा से यह कहानी ही है । इसके दो प्रमुख पात्र हैं । दोनों नवीं कक्षा में पढ़नेवाले लड़के । लोग कहानी के नाम पर चौंकते हैं ।

---

1. समकालीन कहानी की पहचान, नरेन्द्र मोहन, पृ. 15.

उसे झूठी और बनाई हुई समझते हैं । कभी ऐसा होता रहा होगा । खैर उन दोनों के नाम भी साधारण ही है । एक का रमेश । दूसरे का आशु पर उसने भी दोस्ती के कारण रजिस्टर में आशु कटा कर रंजन लिख लिया था । अब दोनों के नाम "र" से शुरू होते थे । घर में अभी भी आशु चलता था । स्कूल में अभी भी रमेश का दोस्त रंजन है । क्लास एक, सेक्शन एक, टेन्थन्सी ।

"पहले रंजन को ढेला फेंकना नहीं आता था । रमेश ऐसा ढेला फेंकता था । रफ्ता-रफ्ता रंजन भी सीख गया । रंजन का ढेला जाता तो ऊँचा है पर आम कभी कभी आता है । डरता भी है कहीं किसी ने देख लिया और बात घर पहुँच गयी तो ऊँ नमः शिवाय हो जायेगा ।"[1]

कहानी के आरंभ के पहले ही लेखक और पाठक के बीच एक श्रोता और वक्ता जैसा रिश्ता कायम हो जाता है । ऐसा लगता है कि पाठक कोई किस्सा सुन रहा है -

"उस कमरे में वे लंबे अरसे बाद बैठे थे । कमरा उनके आने पर ही खुला था । कमरे का झाड हमेशा की तरह उनके बैठे बैठे ही जलाया गया था । कालीन का कोना फट गया था । चमड़े के एक सोफे का कोना उधड गया था । इतना बडा कालीन उनके पास भी था । चमडे का सोफा और कालीन दोनों ने नुमायश से साथ-साथ खरीदे थे दोनों के पास हाथी थे ।

---

1. यह देह किसकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 45.

अमर सिंह के हाथी की एक आँख शिकार में चली गयी थी । शेर ने झपटा मार कर निकाल ली थी । तब से वह हाथी शेर का दुश्मन हो गया था । गन्ध मिलते ही पगला जाता था । शिकारी की जगह खुद शिकार करने लगता था । यह उसमें कमी आ गयी थी । कई शेर सूँड से पकड़ कर पैर से दबाकर चीर डाले थे । जानवर खूँखार और ईमानदार होता है । पता नहीं किस शेर ने आँख नोची होगी । सब शेरों से दुश्मनी मान ली । आदमी मरियल होकर पड़ जाता है । सोचता है, चलो एक आँख तो बची । अमर सिंह ने उसके दोनों दाँत चान्दी से मढ़वाकर कमरे में टँगवा दिये थे ।"[1]

किस्सा सुनाने की इस शैली के अन्तर्गत कहीं अधिक रूप से एक प्रकार से आत्म कथन की शैली ही अपनाई गयी है । यह शैली कहानियों एवं उपन्यासों में मिलती है -

"अगर मैं कहूँ कि मैं व्यावहारिक राजनीति का व्यक्ति नहीं हूँ तो आप को आपत्ति नहीं होनी चाहिए । वैसे भी राजनीतिक पार्टियों को रचनात्मक लोगों की उतनी ज़रूरत नहीं होती जितनी अट्टाट्ट राजनीतिज्ञों की होती है । वो राजनीति की दुनियाँ में नम्बर दो या तीन के राजनीतिज्ञ होते हैं । यह मैं समझ सकता हूँ कि कहानी का माध्यम इस तरह के वक्तव्य देने का माध्यम नहीं है । अलबत्ता कभी कभी भावना और वक्तव्य एक से लगने लगते हैं । खैर मैं दोनों नेताओं को जानता हूँ । वे भी मुझे जानते हैं । उनका किसी को जानना बड़ी बात होती हो या नहीं पर समझी बड़ी बात ही जाती है । उन दोनों से मैं अलग् अलग ढंग से परिचित हूँ उनमें से "एक" उर्फ पढ़े लिखे नेता के साथ तो मैं ने काम किया है ।

---

1. जुगलबन्दी, गिरिराज किशोर, पृ. 126.

दोनों ने ही लम्बे समय तक एक संस्था मे नौकरी की है । दूसरी यानि बड़ के नेता के पास, एकाधिक मतलबों से उस ज़माने में हाजिरी लगायी है जब वे मन्त्रि थे ।"[1]

आत्मकथात्मक रूप में "मैं" को बीच में ही प्रतिष्ठित करके कथा कहने का यह प्रयोग भी पुराना ही है । किन्तु इसका काफी प्रयोग समकालीन कथाकारों ने भी किया है । "प्रामाणिकता, अनुभव की प्रामाणिकता आदि घोषणाओं ने भी मैं परक कथाओं की संख्या में वृद्धि की है और निश्चय ही इस प्रयोग द्वारा कथ्य की विश्वसनीयता बढ़ी है ।"[2] गिरिराज किशोर के कुछ उपन्यासों में तो यह शैली बहुत ही सशक्त रूप से उभर कर सामने आई है -

"मेरा नाम भास्कर राय है । मैं उत्तर प्रदेश के एक पुराने खाते पीते खानदान का अन्तिम राय हूँ । मेरे बाद कोई राय नहीं होगा । मेरे बच्चे हैं पर जिस आधार पर हम लोग राय हुआ करते थे वह एक बड़ी जमीन्दारी थी । वह कभी की खतम हो गयी । विरासत और रियासत दोनों ही नहीं रहे । मैं जब तक हूँ राय नाम को वहन कर रहा हूँ । क्योंकि मैं उसी रियासत का एक हिस्सा हूँ । मैं बचा हुआ । मेरे पिता यानि बड़े राय जिनका नाम हरीराय था, लगभग तीस वर्ष पूर्व गोलोक सिधार गये ।"[3]

कथ्य अथवा घटनाक्रम के बीच से उठकर पाठक मानस को

---

1. यह देह किसकी है, गिरिराज किशोर, पृ. 45.
2. समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ, पुष्पपाल सिंह, पृ. 300.
3. ढाई घर, गिरिराज किशोर, पृ. 1

उन स्थितियों में प्रक्षेपित कर उसके मध्य में बिठाकर लेखकीय विचार सारिणी का सहगामी बना लेने की प्रवृत्ति भी यहाँ पर दीख पडती है -

" - लम्बा व्यक्ति बाहर लौट आया । उसका चेहरा अपने कद की तरह लम्बा लग रहा था । चुपचाप कुर्सी पर बैठकर दोनों हथेलियों को अपने चेहरे पर ऊपर नीचे फेरने लगा । पहले से इन्तज़ार करते हुए छोटे व्यक्ति ने गौर से देखते हुए पूछा, "लौट आये ?"[1]

समापन के रूप में निष्कर्षात्मक अन्त देने की शैली भी यहाँ नहीं दीख पडती । कथाकार दुःखित रग पर उँगली रख कर हट जाता है । दर्द को दबाया नुस्खा वह नहीं देता । पाठक को वे इसकी स्वतंत्रता देते हैं -

"वह जिन्दा ततया पकड कर सारे घर में घूमा था । लेकिन उसकी वीरता ने मुझे ज्यादा आकर्षित नहीं किया । अपने बारे में दो चार झूठी बातें अवश्य बता देना चाहता था । मेरी वीरता पूर्ण थकान के सम्मान में एक प्याला गरम दूध लाकर रख दिया गया था । लेकिन बतलाने की चसक मुझे अभी छुट्टी नहीं दे रही थी ।

मेरा वही ततय्या मार बेटा कई बार मेरा ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर चुकाया । लेकिन मैं अपनी झोंक में उसकी ओर उतना ध्यान नहीं दे पा रहा था जितना वह अपेक्षा कर रहा था । वह चुपचाप मेज़ के पास आकर खडा हो गया । चेहरे पर शैतानी स्वग्राही भाव की तरह हमेशा बनी

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 45.

रहती थी । उसने इधर उधर नज़र दौडाई । मेरे दूध के प्याले में धीरे से कुछ डाल दिया । मेरी पत्नी झपटकर उठी । उसका हाथ और निकर पखाने से सने थे ।

"मुझे उछलता हुआ वही ढेला दिखाई पडा जो व्यवस्था के विरोध में किसी लडके द्वारा अचानक उछल दिया गया था ।"[1]

गिरिराज किशोर के अनुसार दो चीज़ें हैं जो पाठक और लेखक के रिश्ते में महत्वपूर्ण है । एक तो यह कि क्या लेखक पाठक को उस धरातल पर ले जा सकता है जहाँ से उसने अनुभव को आत्मसात किया है । यह सबसे बडा टेस्ट है लेखक के लिए ।"[2] इस कसौटी पर रचना को खरा उतरने के लिए यह शैली काफी हद तक सहायक सिद्ध हुई है । किस्सा गोई की इस शैली में पुरानी कथा की शैली की हल्की सी गन्ध अवश्य विद्यमान है । परन्तु समकालीन संवेदना को वहन करने में यह पूर्ण रूपेण सक्षम होकर संप्रेषण का कार्य करती है । वास्तव में "किस्सा गोई का जो तत्व है वह बहुत ज़रूरी है इसके बिना कथा का कोई भविष्य नहीं ।"[3] गिरिराज किशोर मानते हैं कि "हमारे यहाँ वाचिक परंपरा रही है । कहानी और पात्रों के बीच एक वाचक रहा है, जो सुनाता है । इसी प्रकार भारतीय रचनाओं में एक निवेदक है जो प्रकारान्तर और सीधे कथा कहता है वह लेखक भी हो सकता है ।"[4] इसी किस्सा गोई की शैली को सफल रूप में गिरिराज किशोर की अधिकांश रचनाओं के शिल्प में हम देख सकते हैं ।

---

1. हम प्यार कर लें, गिरिराज किशोर, पृ. 64.
2. साक्षात्कार -1972, गिरिराज किशोर से के.के. नायर की बातचीत, पृ. 71.
3. कथारंग, मनोहर श्याम जोशी से सुरेन्द्र तिवारी का साक्षात्कार ।
4. "यह देह किसकी है" के परिशिष्ट में गिरिराज किशोर से सुरेश सर्वावर्ते की बातचीत ।

प्रतीकात्मक कथाशिल्प

गिरिराज किशोर का कथा साहित्य अपने विन्यास में प्रतीकों को अपनाता है । कथा के कलेवर में प्रतीक का बीज ही नहीं बल्कि प्रतीक का समुचित विकास भी देखने को मिलता है । प्रतीकों का उत्तरोत्तर विकास भी कहीं-कहीं मिलता है ।

सामन्ती व्यवस्था के चरमराने की पीड़ा से युक्त कथा है जुगलबन्दी । इस उपन्यास में हम प्रतीकात्मक शिल्प के सशक्त उदाहरण देखते हैं । वस्तुतः उपन्यास का प्रारंभ ही प्रतीकात्मकता से होता है -

"बड़का झाड़ चढ़ाया जा रहा था । उसके चढ़ने से दूसरे छोटे झाड़ों की रोशनी दबती जा रही थी । शिवचरण बाबू बीचवाले दरवाज़े में खड़े हो कर गर्दन ऊपर किये उसे चढ़ते हुए देख रहे थे । जैसे जैसे वह ऊपर चढ़ता शिवचरण बाबू धीरे से कहते थे, "शाबास....धीरे.... सम्हल के.....। रस्सी एकाएक टूटी । सब लोगों के मुँह से एक साथ चिल्लाहट निकली और जम गयी । शिवचरण बाबू से लेकर नौकरों तक में किसी की चिल्लाहट अलग नहीं थी । मिली जुली और एक सी थी । उस आवाज़ के साथ ही झाड़ तेज़ी से नीचे आया और खिलखिल करके बिखर गया .....।"
...... छोटे झाड़ों की रोशनी अलगाव के साथ उस काँच पर पड़ रही थी । उसमें झाड़ के टूटे और बिखरेपन को ढकने की ज़रा भी कोशिश नहीं थी ।"[1]

---

1. जुगलबन्दी : गिरिराज किशोर - पृ. /

झाड सामन्ती जीवन पद्धति में शीर्षस्थ जमीन्दार वर्ग के प्रतिनिधि पात्र शिवचरण बाबू का प्रतीक है । उत्कर्ष के लिए किये जानेवाले प्रयत्नों, बडी धनराशि की अदायगी में असमर्थ होने के कारण परिवार की प्रतिष्ठा और आर्थिक स्थिति के डावाडोल होने के कारण हुई असफलता के कारण स्वतंत्रता के उपरांत शिवचरण बाबू की श्रेष्ठता के बोध के चकनाचूर हो जाने की व्यंजना झाड के टूटने में है । बडे झाड का घटना शिवचरण बाबू के उत्कर्ष छोटे झाडों द्वारा प्रतीकायित समाज के अन्य राज्यनिष्टों से अधिक प्रमुख हो जाने का प्रतीक है । टूटकर बिखर जाने के उपरांत छोटे झाडों की रोशनी में बडे झाड का टूटापन और बिखराव स्पष्ट होते जाना अपने अन्य सहयोगियों से शिवचरण बाबू का पिछड जाना प्रतीकायित करता है । टूटने पर भी शिवचरण बाबू अपनी मान्यताएँ बदलने में असमर्थ है ।

इसी प्रकार के अन्य अनेक प्रतीकों का प्रयोग जुगलबन्दी में किया गया है -

बीरू बाबू चुपचाप लैम्प की तरफ देख रहे थे। शायद उसमें तेल कम रह गया था । हल्का हल्का धुआ भी दे रही थी । शिवचरण बाबू ने लैम्प की तरफ देखकर कहा -"इसमें तेल नहीं डाला ?" "तेल.....।" बीरूबाबू ने दोहराया । कुछ देर बाद उठते हुए कहा, अच्छा डलवाता हूँ । वे उठने लगे तो शिवचरण बाबू ने बैठने का इशारा कर दिया ।

बीरू बाबू का लैम्प की तरफ देखना लैम्प की बत्ती का काँपना और धुआ देना तेल कम हो जाने की संभावना इस परिवार की आर्थिक

स्थिति के डगमगा जाने का प्रतीक है । तथा परिवार की प्रतिष्ठा-ज्योति के धुए से भरने की संभावना को व्यंजित करता है ।

शिवचरण बाबू की वृद्धा माँ परंपरा की जड़ता और परिवर्तन को असमर्थता को प्रतीक है और उनकी बहन बिसम्बरी परंपरा के दूसरे पक्ष को प्रतीकायित करती है तो माँ किसी दूसरे पक्ष को। कुल मिलाकर देखा जाये तो दोनों ही रूढ़ जीवन के प्रतीक के रूप में उभरते हैं ।

मधुर स्वभाव और शीलवाली बहूरानी का पैरों से अपाहिज होना गत युग की चेतना को प्रतीकायित करता है । पूर्व युग की जो मूल्य चेतना थी वह अब कुंठित और गतिहीन दीख पड़ती है ।

जुगलबन्दी स्वयं शीर्षक में ही सत्ता और सामन्ती व्यवस्था के साथ की जुगलबन्दी अर्थात् गठबन्धन की सूचना देता है । झाड़, लैम्प, हुक्का भी यहाँ सशक्त एवं प्रौढ़ प्रतीकों के रूप में उभरते हैं । ये कथा की प्रभाविता को बढ़ाने के साथ-साथ उसकी अभिव्यंजना में भी सहायक होती हैं । एक पूरी वंश परंपरा के अपंग हो जाने की कथा प्रस्तुत करते हुए उस जड़ता को प्रतीकवत् किया गया है जो एक विशिष्ट वर्ग से संबंधित है ।

प्रतीक जहाँ मानसिक स्थितियों को उभारने में सहायक होते हैं वहीं हम देखते हैं कि व्यक्ति की स्थिति या उसकी विवशता या

तल्ख एहसास को भी अभिव्यक्ति देते नज़र आते हैं । ये अभिव्यक्तियाँ प्राय: ऐसी होती है जिन्हें शायद सीधी सी भाषा पूर्ण रूप से न समझा पाती हो । प्रसिद्ध कहानी "पेपरवेट" में मृणाल बाबू राजनैतिक दुष्चक्र में एक खास तौर से बनायी गयी स्थिति में फिट कर दिये जाते हैं । इस स्थिति में न वे अपने मंत्रिपद की अर्थशून्यता स्पष्ट कर पाते हैं और न ही त्यागपत्र दे पाते हैं -

"वह उस संपूर्ण स्थिति की कल्पना कर गये जो त्यागपत्र देने से उत्पन्न हो सकती है । अगर शिवनाथ बाबू ने उनके लिए किसी भी विशेष स्थिति का निर्माण किया है तो भी त्यागपत्र देना उन्हीं के पक्ष में होगा । लोग कहेंगे विधान भवन में तो बडा शोर मचाता था..... काम करने का वक्त आया तो दुम कटाकर लँडा शेर बन गया । इस बात का प्रचार इस रूप में भी किया जा सकता है कि त्यागपत्र माँगा गया है ।[1]

फ्राकवाला घोडा, निकर वाला साइस में बच्चों के खेल के प्रतीक द्वारा अधिक कमानेवाली पत्नी एवं कम-कमाऊ पति के परिवार एवं आपसी संबंधों को व्यंजित किया गया है -

"मेरा ध्यान सडक पर दौडते हुए उस फ्राक वाले घोडे और निकर वाले साइस पर चला गया । मुझे आश्चर्य होता है वह अभी भी उसी तरह दौड रहा है ।

साइस घोडे की खुशामद में लगा है..... मेरे शेर...... अपने सिकन्दर को चने का रातब दूँगा ।" घोडा पाँव पटककर सिर हिलाता है । साइस उसकी कमर और गर्दन पर हाथ फेरने लगता है । घोडा घुड़घुडी लेकर

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 111.

अपनी रजा मन्दी प्रकट कर देता है । साइस भी वाह राजा, हब मेरे शेरा.... कहकर उसको एलटी लगाने की कोशिश करता है ।

x x x x

....उर्र.....उर्र.... फिर सुनाई पड़ता है । इस बार आवाज़ बदली हुई है ।
घोडा गली से निकल रहा है ।
शायद घोडे और साइस के स्थान परिवर्तन कर लिये हैं । घोडा छूटने के लिए बड़ा ज़ोर लगा रहा है ।"[1]

अंतर्ध्वंस में कथ्य के स्तर पर समय और संवेदना के नवीनतम यथार्थ को उद्घाटित किया गया है । यहाँ समकालीन रचनाशीलता में अवरुद्धता और अमानवीयता से मुक्ति की समस्या को दिखाया गया है और साम्राज्य वादी देशों के विस्तार और उन्माद की है । इनकी शक्ति की सापेक्षता में गरीब देश लगातार जर्जर और निरुपाय तथा असुरक्षित होते चले जा रहे हैं । लेखक को साथी से दीपक का जीवन संघर्ष, उसके जीवन संघर्ष उसके समय की विडंबना और मानवीय संबंधों पर बननेवाले अमानवीय दबाव को लेखक ने उभारा है ।

"अन्तरध्वंस" में प्रोफेसर सु की प्रयोगशाला का दानवी शक्ति जीव और लेखक के लिए निरन्तर समस्या बननेवाली, उसके द्वारा रची गयी

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 103.

प्रेम कथा, "अन्तरध्वंस" में एक दूसरे के विरुद्ध खींचते हैं । स्थितियों, चरित्रों एवं घटनाओं को इतिवृत्त के सरलीकरण में न जोड़कर गिरिराज किशोर उन्हें भीतरी गहरे आशयों तक ले जाते हैं और उनमें साधारण आशय का प्रकाश करने वाली क्षमता का निर्माण करते हैं । प्रेम कथा के लिए लेखक संघर्ष की प्रतीकात्मक अर्थवत्ता तो है ही । इसके साथ साथ रमा [दीपक की पत्नी] और दीपक की धार्मिक परंपरता का ठोक उस परिदृश्य में उभार भी है ।

खासते हुए बूढे भारत को भी प्रतीक रूप में ही लिया गया है। बूढे भारत में उपनिवेशवाद और नव उपनिवेश वाद के जहर से आक्रान्त और विचलित वह आर्थिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया का शिकार है । उसकी संस्कृति में परजीवि होने के खतरे बढते चले जा रहे हैं । बूढे भारत का कराहना अपनी तमाम रुग्ण और असफल योजनाओं के तले दब कर कराहना है ।

दीपक का बीमार बच्चा भी भविष्य के प्रतीक के रूप में आया है । यहाँ सृजनात्मकता की संभावनाएँ हैं ।

उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि दीपक पचौरी द्वारा किये गये प्रयोग में प्रोफेसर स विजयी होते है -

"एक कई सिक्तों में फैला हुआ आदमी ..... आँखें पलकों के नीचे दबी थी । हाथ इतने लम्बे थे कि शायद एक छोटा मोटा हाथी उसको बाहों में समा जाये.... आवाज़ सुनायी दी.... दीपक ईस डेड । जैसे टेप

लगा हो । वह आवाज़ उसके अन्दर से आ रही थी । प्रोफेसर सु रिमोट कन्ट्रोल द्वारा उसको समेट रहे थे..... "

यहाँ दीपक का दानवी जीव में परिवर्तित हो जाना उसके अन्दर की मानवीयता का मर जाना है । उसकी रागात्मकता का पूरी तरह सूख जाना है । प्रोफेसर "सु" के लिए अर्थात् समृद्ध देश के लिए भारत को हानहार वैज्ञानिक का उपकरण हो जाता है । इस प्रकार "अन्तरध्वंस" में एक भयंकर समस्या को प्रतीक रूप में अभिव्यक्ति प्रदान की गयी हैं ।

फैन्टसी शिल्प

कथा शिल्प में फैन्टसी के प्रयोग यद्यपि पूर्ववर्ती दौर में भी हुए हैं किन्तु जीवन की विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के प्रति जो तीव्र आक्रोश और व्यंग्य की सान पर चढ़ाकर व्यक्त करने की क्षमता है । समकालीन कहानी में ही पूर्ण रूपेण सामने आयी है । फैन्टसी युक्त शिल्प का प्रयोग गिरिराज किशोर ने अपने कथा साहित्य में बाखूबी किया है । गिरिराज किशोर की ये रचनाएँ फैन्टसी कल्पना के द्वारा "कथा" घटनाक्रम को एक कल्पनालोक में प्रक्षेपित कर वर्तमान जीवन की विसंगतियों का विशेष रूप से राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करती हैं । इस शैली का प्रयोग बहुधा उस समय होती है जब कथ्य को स्पष्ट रूप से कहने की स्वतंत्रता नहीं होती । इसी कारण रचना में फैन्टसी अपने मारक प्रभाव में सक्षम हो जाती है । मनुष्य के संत्रास क्षोभ, उत्पीडन और विस्फोट को अभिव्यक्ति देने में फैन्टसी विधा से अधिक

सशक्त है । बशर्ते उसका उपयोग व्यंग्य और चोट के लिये किया जाये ।"[1]
परन्तु फैन्टसी अपने आप में एक विधा तो नहीं फिर भी कथा साहित्य में एक सशक्त शैल्पिक प्रयोग के रूप में उभरी है ।

आपातकाल के दौरान जब स्थितियाँ आतंकपूर्ण और त्रासद हो गयी और व्यक्ति से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता छीन ली गयी, अपने घर की चार-दीवारी के भीतर भी व्यक्ति भयभीत होकर जबान नहीं खोल पाता था तब अभिव्यक्ति का जो अभूतपूर्व संकट आया उससे रचनाकार ही अधिकाधिक प्रभावित हुआ । इस समय की स्थिति को गिरिराज किशोर फैन्टसी शैली में "घोड़े का नाम घोड़ा" शीर्षक कहानी में व्यक्त करते हैं ।

"मैं ज़रा सी हुकूम उदूली कर दूँ या इधर मुड़ने की बजाय उधर मुड़ जाऊँ तो शायद टुकड़े-टुकड़े करके फिकवा दें । पर मैं इस सबके बावजूद अपनी पीठ उसकी सवारी के लिए हमेशा कसे रखता हूँ ।"[2]

आपातकाल के दौरान लेखक के ऊपर पड़नेवाले सत्ता के दबाव और स्वतंत्रता के अभाव की घुटनपूर्ण स्थिति और विवशता का ही उद्घाटन हुआ है । निरन्तर दबाव के कारण साधारण व्यक्ति का स्वाभिमान नष्ट कर दिया जाता है । उसकी मज़बूरी का फायदा उठाकर उसे राजनीति का मोहरा बना दिया जाता है । यहाँ पर घोड़े और नत्थू के माध्यम से लेखक ने राजनीतिज्ञों के आपसी रिश्ते को भी अभिव्यक्त किया है -

---

1. कहानीकार, सं. कमलगुप्त , फैन्टसी विशेषांक, जनवरी-फरवरी 1970.
2. जगत्तारनी तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 26.

"छोटेनत्थू, बड़े नत्थू, बड़े से भी बड़ा नत्थू" आदि के रूप में विभिन्न पंक्तियों पर मौजूद नेताओं की ओर भी इशारा किया गया है। इनमें से प्रत्येक अपने से छोटे पर दबाव डालता है। सामान्य मनुष्य या लेखक के लिए इस स्थिति से उबर पाना संभव नहीं हो पाता। उसके अपने स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है। किन्तु इस स्थिति से हटना भी नागवार गुज़रना है -

"मेरा मन अलग होने को करता है। मन क्या करता है गुस्सा ज़ोर मारता है। पर कुछ नहीं हो पाता। साज खराब हो जाने का डर, मालिक के गिर जाने का अंदेशा ऊपर से अच्छा खाने की चाह। अच्छा खाने की चाह बुरा खिलाती है।"[1]

फैन्टसी शैली में लिखा गया उनका सफल उपन्यास है इन्द्र सुनें। मृत्युलोक को देवलोक बनाने की परिकल्पना उपन्यास में है। एक खास व्यक्ति द्वारा छल और प्रपंच से देवलोक की चार दीवारी खड़ी की जाती है। कुछ खास लोग देवलोक के सर्वेसर्वा हो जाते हैं। वे मृत्युलोक वासियों को ठोकरें मारते हैं, अन्याय और अत्याचार से उनका दमन करते हैं। मृत्युलोक वासियों की ज़मीन छीनकर उन्हें देवलोक वासियों पर निर्भर करने के लिए बाध्य कर दिया जाता है। धरती के लोग धरती के मालिक नहीं रह जाते। देवलोकवासियों द्वारा किया जानेवाला शोषण जब धरती के लोगों के लिए असहनीय हो जाता है तो धीरे-धीरे विद्रोह की आग फैलने लगती है। उस विद्रोह को रोकने के लिए देवलोक में ऋषियों, मुनियों और देवताओं के बीच विचार विमर्श होता है नये नये तरीके निकाले जाते हैं, जिससे कि मृत्युलोक वासियों का दमन किया जा सके।

---

1. जगत्तारनी तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 29.

इस प्रकार की फैन्टसी कथा के माध्यम से यहाँ पूँजीवादी व्यवस्था का चित्र अंकित किया है । यान्त्रिकी का आगमन और उस पर पूँजीवादी सत्ता के संचालन से साधारण जनता की दुर्दशा का ही चित्र इसमें फैन्टसी के ही माध्यम से राजनीतिज्ञ पर भी व्यंग्य प्रस्तुत है -

"प्रमुख देवता परलोक से आकर देवलोक में रहते थे, देवलोक के संचालन में सहायता करते थे । और अपना कार्यकाल पूरा करके देवलोक को वापस चले जाते थे । उनमें से कुछ के चित्र काफी नीचे टंगे हुए थे । वे सब मुस्कुरा रहे थे । अन्दर प्रवेश करनेवाले हर व्यक्ति को उनकी मुस्कुराहट तत्काल घेर लेती थी । मुस्कुरा तो वह आज़ादी दिलानेवाला भी रहा था । पर उसका मुँह खुला हुआ था । और दान्त हीन खुले मुँह से उसकी मोटी जबान झाँक रही थी । लेकिन इनकी मुस्कान बन्द थी और दाँतों के पार नहीं आती थी । उस आज़ादी दिलानेवाले की मुस्कान से उनकी मुस्कान अधिक सभ्य और आकर्षक लगती थी । आज़ादी दिलाने वाली मुस्कान कुल मिलाकर बच्चोंवाली मुस्कान थी ।"

साधारण मनुष्य की शक्ति से ये पूँजीवादी व्यवस्था अनभिज्ञ नहीं होती है । इसी कारण जहाँ वह उसे दबा कर रखती है कि कहीं उनका विद्रोह फूट न पडे और छल-कपट की बुनियाद पर खडी उनकी संपूर्ण व्यवस्था गिर कर ढह न जाये -

"जब वे सुनते थे कि वे लोग अपनी शारीरिक शक्ति के बल पर जंगली जानवरों के रेले की तरह देवलोक के अन्दर घुस आना चाहते हैं तो वे थोडे से चिंतित हो उठते हैं । वे सोचने लगते कि कहीं वे लोग इस संपूर्ण संरचना को नष्टभ्रष्ट तो नहीं कर डालेंगे । यदि वे अपनी निरीह पाशविक शक्ति के आधार पर अन्दर घुस आने में सफल हो गये तो यह संपूर्ण देवलोक भ्रष्ट हो जायेगा।

---

1. इन्द्र सुनें, गिरिराज किशोर, पृ. 120.

इस प्रकार यांत्रिकी के कुपरिणाम एवं व्यवस्था के भ्रष्टाचार पर सम्मिलित रूप से फैन्टसी शैली में प्रहार किया गया है । यहाँ शिल्प को अपनी संरचना में सार्थकता से अपनाया गया है और कथा-क्रम की प्रस्तुति भी विश्वसनीय लगती है ।

असल में इस प्रकार के अतिरंजित रूपविधान का प्रयोग गिरिराज किशोर ने इसलिए किया है कि साहित्यकार अभिव्यक्ति की समस्या से जूझ रहा है । तमाम भारतीय भाषाओं में इस प्रकार की फैन्टसी नुमा रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं । इस कारण गिरिराज किशोर के रूपविधानपरक इस नयेपन को उस दृष्टि से देखना उचित होगा ।

भाषिक संवेदना

किसी भी विधा में भाषा की अपनी भूमिका है । समकालीन कथा साहित्य में इसी कारण भाषा को और भी अधिक महत्त्व प्राप्त हो सका है । भाषा बात को खास ढंग से प्रस्तुत करने का माध्यम मात्र नहीं है । कथा के कथ्य को भाषा जहाँ प्रेषित करने में समर्थ होती है वही हम देखते हैं कि कथा के लिए वह एक भाषिक वातावरण का निर्माण भी करती है । भाषा द्वारा निर्मित परिवेश ही वास्तव में भाषिक संवेदना का प्रकट रूप है । पर उसका सूक्ष्म रूप विभिन्न स्तरों पर प्राप्त होता है ।

गिरिराज किशोर के कथा साहित्य की भाषिक संवेदना सशक्त है । वे स्वयं मानते हैं कि "भाषा का प्रश्न महत्वपूर्ण है । जब लेखक लिखना शुरू करता है तो बहुत सपाट भाषा लिखता है, या फिर कृत्रिम भाषा लिखता है । लेकिन भाषा की अपनी प्रक्रिया है रचनाकार बहुत धीरे-धीरे अपनी भाषा का साक्षात्कार करता है, धीरे-धीरे वह अनुभव के साथ जुडती है और फिर उसी से निकलती है । धीरे धीरे जैसे साधक साधना करता है, रचनाकार भाषा के नये आयाम खोजता है । भाषा के स्तर पर कई चीज़ें है जो भाषा को बनाती हैं । बोलचाल, ज़िन्दगी का मुहावरा आसपास के जीवन के प्रति लेखक की अपनी पकड आदि । ये सभी बातें एक बाह्य भाषा की रचना करती है । इन सभी स्तरों को पार करके रचनाकार भाषा को संवेदनशीलता से जोडता है । अनुभव के अनुरूप ज़िन्दगी से जुड़ कर अन्तिम स्तर भाषा की सिद्धि का होता है ।"[1] गिरिराज किशोर के कथा साहित्य पर दृष्टि केन्द्रित करते समय उनकी रचना यात्रा के दौरान हुई तब्दीलियाँ नज़र आती है । आरंभ के दौर में लिखी गयी रचनाओं में एक प्रकार की रूमानियत का हल्का एहसास शेष दीख पडता है -

"कमरे में अन्धेरा था । उसके कमरे की खिडकी जिसमें चाँद निकलकर जाया करता था और चाँद की गैर हाज़िरी में तारे शैतान बच्चों की तरह उचक उचक कर झाँका करते थे, गायब थी । "ओह यह तो आभा का घर है।"[2]

इसी प्रकार "और मैं था," "एक थी माँ" आदि कहानियों में भी इसी प्रकार की भाषा मिलती है । किन्तु इसे गिरिराज किशोर की

---

1. गिरिराज किशोर से सुमन राजे की बातचीत "यह देह किसकी है" के परिशिष्ट में ।
2. नीम के फूल, गिरिराज किशोर, पृ. 116.

रचनात्मक के खिलाफ न लेकर उनकी रचनायात्रा का सोपान मानना उचित होगा । परवर्ती दौर में वे हमें नये रचनातंत्र को आत्मसात करने की इच्छा रखते हुए दीखते हैं । बटरोही के अनुसार गिरिराज किशोर की रचनाओं में उस प्रकार की कुशलता और चालाकी नहीं है जैसा कि आधुनिक लेखन में पिछले दो दशकों से दिखाई देती हैं । "बिना शैल्पिक झटके के उन्होंने बड़ी मात्रा में कहानियाँ लिखी हैं । यह उनकी उपलब्धि ही कही जायेगी । क्योंकि बहुधा शिल्प का नयापन कथ्य और भाषा की कमजोरियों को ढंक देता है ।"[1] गिरिराज किशोर के कथा साहित्य का वस्तुपक्ष तो सशक्त है ही । "वस्तु के बिना शिल्प नहीं हो सकता है । शिल्प हो और वस्तु न हो उसका कोई अर्थ नहीं होता है । यथार्थ अनुभव जिसे वस्तु कहते हैं उसका जीवन्त और समर्थवान होना बहुत आवश्यक है ।"[2] यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि शिल्पगत नवीनता बहुत अधिक विद्यमान न होने पर भी ये रचनाएँ अपना असर छोडती हैं और पाठकों में चर्चा का विषय बनती हैं । अतः यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि भाषा और कथ्य की कोई न कोई उपलब्धि तो है ही जो उन्हें चर्चा के योग्य बनाती है ।

पेपरवेट, चूहे, पगडण्डियाँ, लोग, आदि रचनाओं के दौर में भी गिरिराज किशोर की रचनाओं में पूरी प्रौढ़ता नहीं दीख पड़ती है । चूहे कहानी मध्यवर्ग को एक सामान्य स्थिति को ही दिखाती है । मनःस्थिति का उद्घाटन करनेवाली इस कहानी में हमें भाषा की पर्याप्त प्रौढ़ता नहीं दीख पड़ती है -

---

1. कहानी संवाद का तीसरा आयाम, बटरोही, पृ. 135
2. गिरिराज किशोर से सुमन राजे की बातचीत ।

"अम्मा स्तब्ध सी खड़ी रह गयी, फिर रोती आवाज़ में बोली, तू क्या कहती है बेटी, मेरा भाग खराब है । मुझे गला घोटना होता तो पैदा करते ही अंगूठा रख देती । पैदा किया है तो घर बाहर सब की सुनूँगी । मैं तेरे बीच बोलू तो सौ जूते मारना...... वे बड़ बड़ाती हुई बाहर निकल गयीं ।"[1]

भाषा की यह अपरिपक्व स्थिति आरंभ की सभी कहानियों में मिलती है । "पगडंण्डियों" में भी इसी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ है
"राजीव एकाएक कमरे में दाखिल हुआ । सेन साहब के अध फैले पाँव सिमट गये । मिसेज जोशी की तकिये से टिकी पीठ सीधी हो गयी । वे जेब से सिगार निकालकर पीने लगे । राजीव जल्दी से बोला - "पापा अभी आप बैठेंगे या चलेंगे । बैठे तो मैं एक टॉपिक और निपटा लूँ ।"[2]

इन रचनाओं में हम देखते हैं शिल्प बिलकुल ही सहज है । इन पर संभवतः अकुशल होने का आरोप लग सकता है । किन्तु लेखक में कथ्य के चुनाव का जो विवेक है उसे देखते हुए सहज शिल्प को तरजीह देना उचित ही जान पड़ता है । इसी प्रकार की सहज शैली हम देखते है कि पेपर वेट, नया चश्मा, यथाप्रस्तावित जैसी रचनाओं में भी है । परन्तु हम देखते हैं अपेक्षित माहौल को उपस्थित कर सकने में ये रचनाएँ अपेक्षाकृत पूर्ण रूप से सफल होती हैं ।

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ. 12.
2. वही, पृ. 36.

"क्लर्क" कहानी का वातावरण भी "चूहे" की भाँति मध्यवर्ग की मनोवृत्ति की ओर इशारा करता है । किन्तु इस कहानी में आकर भाषिक संवेदना बदली हुई सी मालूम देती है । चूहे में जो अप्रौढता थी वह "क्लर्क" तक आते आते लुप्त होती जाती है -

"मि. सिंह को महसूस हुआ उन पर चला नहीं जा रहा है वे और तेज़ी से चलने लगे । मि. सिंह पसीने से सराबोर हो गये, उन्हें अपने जूतों की खटपट साफ सुनाई पड़ने लगी, वे यह सोचकर घबरा गये कि जूते की आवाज़ किसी लुंज-पुंज आदमी की बैसाखियों की खट-खट की तरह है ।"[1]

"गाऊन" कहानी में भी भाषा को मूल संवदेना के अनुरूप तीव्रता को सहज रूप से व्यक्त करने में सफल हुई है -

"राजकुमार के जाते ही सुनीता जी बरान्दे में आ गयी । कुछ देर अकेले खड़ी रहीं फिर बाहर चली गयीं । पाँच सात मिनट बाद बागची साहब को लिए लौटी तो उनका चेहरा घुटा घुटा सा लग रहा था । बागची साहब को बरान्दे में छोड कर वे कर्ली के कमरे में चली गयी । फौरन ही लौट कर आयी और पतिदेव का हाथ पकड़कर फुसफुसाते हुए दबंग आवाज़ में कहा, "चलो" ।"[2]

"अलग अलग कद के दो आदमी" की भाषा भी सहज और संवेदनायुक्त मालूम देती है -

---

1. रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 43.
2. वही, पृ. 78.

"लम्बे ने बैरे को बुलन्द आवाज़ में पुकारा । छोटे के चेहरे पर मुस्कुराहट आ गयी । बैरा कुछ देर बाद दि्वस्त करने के अन्दाज़ में आकर खड़ा हो गया । लम्बे ने बैरे पर नज़र डाली । एक पाँव को थोड़ा खमखाई पीठ देकर पूछा, "तुम्हारे पैर में तकलीफ है ?"[1]

मध्यवर्ग और निम्न वर्ग की भाषा को स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त करने की पूरी सफलता गिरिराज किशोर की रचनाओं में देखी जा सकती है । मध्यवर्गीय व्यक्ति का जीवन परिवेश, उसकी स्थितियाँ एवं समस्याएँ उसकी मानसिकता को प्रभावित करती है और इस मानसिकता का उद्घाटन जहाँ होता है वही पर गिरिराज किशोर की भाषा की सार्थकता हमें दीख पड़ती है । समकालीन हिन्दी कहानीकारों में केवल गिरिराज किशोर ऐसे कहानीकार हैं जिनकी भाषा निम्न मध्यवर्गीय चेतना की सीधी अभिव्यक्ति है । इन में कहीं कहीं सपाटता का एहसास भी है किन्तु मानसिकता का उद्घाटन ये भाषा पूर्ण रूप से करती है -

"वह बोला, नहीं यार तुम्हारी अफसरी झाड़ने की बात नहीं हम लोगों की क्लास ही ऐसी है । हर अफसर खुदा दिखाई पड़ता है ।" मैं फिर हँस दिया । बीवी बच्चों के बारे में पूछा तो बोला किसी दिन तुम आओ या हम लोग आयें ।"

मैं ने आँख दबाकर कहा -"पहलु तुम लोग आओ, अपन का क्या, अपन तो फक्कद्दम है - आज हाजिरी लगा चले ।"

---

1. पेपरवेट, गिरिराज किशोर, पृ.46.

उसने संजीदगी के साथ कहा, "मैं जानता था, तुम यही कहोगे.... खैर, मेरी पत्नी तुम्हारे यहाँ आकर बहुत खुश होगी । उसे बड़े आदमियों के घर जाना काफी पसन्द है ।"

मैं ने थोड़ी नराज़गी के साथ कहा, "तुम बड़े आदमी - बड़े आदमी लगाये रखे हो । मैं ने तुम से कभी भेद-भाव किया है । तुम इस तरह की बातें करोगे तो ठीक नहीं होगा ।"

वह मुस्कुरा पड़ा थोड़ी देर बाद उसने अपने आप ही पूछा, "तुम आये कैसे ?"[1]

यहाँ मानसिक स्थिति की अभिव्यक्ति का पूर्ण श्रेय भाषा को ही जाता दीख पड़ता है । किन्तु इसमें जो सपाटता है संभवत: उसी के कारण धनंजय वर्मा जैसे आलोचक यह मानते हुए भी कि "थीम और वस्तु चयन की दृष्टि के लिहाज से उनकी संभावनाओं पर भरोसा ज़रूर होता है ।" गिरिराज किशोर की रचनाओं में अनुभव के स्थान पर "संवेदना हीन रिपोर्टिंग के होने का आरोप लगाया है ।[2] परन्तु जिसे उन्होंने यहाँ पर "संवेदनाहीन रिपोर्टिंग कहा है वह वास्तव में समकालीन मानव की वास्तविक स्थिति ही है । इस कारण इस प्रकार की भाषा से जीवन का ठंडा, सपाट और सीधा उपक्रम कहानियों में उभरता है । सपाट और सामान्य सी लगनेवाली

---

1. रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 13.
2. समकालीन कहानी की पहचान, नरेन्द्र मोहन

मन:स्थितियों के बीच सामान्य विसंगतियाँ उनकी रचनाओं में उभरकर आती हैं ।

वस्तुत: मनुष्य की चेतना में भाषा का आयात तो दिन रात होता रहता है । गिरिराज किशोर के अनुसार -"रास्ते चलते बच्चों को खेलते देख कर, रास्ते चलते लोगों की बातें सुनकर, गीत और गानों को सुनते समय, लोगों के आपस में झगड़ते या प्रेमी-प्रेमिकाओं को प्रेमालाप करते देखकर हड़तालों और नारे बाजियों के माध्यम से या बीमारों को कराहते या बड़बड़ाते सुनकर, लड़कों के जुलूसों को देखकर या उनकी मौजी मस्ती की बातें सुनकर कोई भी स्थिति ऐसी नहीं जो भाषा न बनाती हो उसको नये अर्थ न देती हो........ परन्तु लेखक के साथ उसका चरित्र अधिक आत्मीय होता है तो वह अतिरंजना नहीं है । यह संपूर्ण भाषा चरित रचनाकार की जागृत स्मृति में चाहे रहे या ना रहे । लेकिन सुप्त स्मृति में बीज की भाँति उतर जाता है । यह सुप्तस्मृति ही उसके लिए वह धरती है जिसमें चुपचाप पड़े रह कर वह अंकुरित होता है और फिर विकसित होता है ।"[1] इस प्रकार खास वर्ग की स्थितियाँ हों या खास स्थितियों में जीनेवाले लोगों का चरित्र हो गिरिराज किशोर में भाषा के माध्यम से उभर कर सामने आते हैं -

"उसमें से एक धीरे से मुँह की राल अपनी फटी हुई बाह से पोंछता हुआ बोला "यार एक बात बताइए । किलक्टर भी तो इसी तरह छुन्नी पकड़ कर मुतिस । या करिदे ही नाहि करि ।" ......

"अब वो कोई हमार-तुम्हार बाबू की तरह सड़क के किनारे बैठ कर मुतत है जो उसकी छुन्नी देख लो ।"[2]

---

1. लिखने का तर्क, गिरिराज किशोर, पृ. 20.
2. यथा प्रस्तावित, गिरिराज किशोर, पृ. 35.

साहित्य में अपशब्दों के प्रयोग को गिरिराज किशोर वर्जित नहीं मानते हैं । वे मानते हैं कि "रचना एक बच्चे के समान होती है । उसके हाथ पैर नाक कान बनाने के बाद अगर जिसे आप अश्लील अंग मानते हैं, उसे छोड दिया जाये तो क्या आप बच्चे को पूर्ण मान सकते हैं । इसी तरह कृति में जो चीज़ ज़रूरी है, उससे बचने का मतलब है पलायन ।"[1] जीवन में जहाँ अश्लीलता है वहाँ साहित्य से अश्लीलता को निकाला नहीं जा सकता है । किन्तु उत्तेजक साहित्य लिखने से बचना चाहिए । उससे असन्तुलन बढ़ेगा । अश्लीलता में रस लेना ज़्यादा बडी अश्लीलता है, बनिस्पत जीवन के यथार्थ को तटस्थ भाव से अभिव्यक्त करने के ।"[2] अपशब्द गाली-गलौच भी कभी-कभी पात्र की मानसिकता को सामाजिक स्थिति को, स्वभाव के निरूपण में और उसके चरित्र के निरूपण, मनोविश्लेषण आदि में सहायक होते हैं । पात्र की मानसिकता और स्तर को व्यक्त करती भाषा का उदाहरण हमें रिश्ता कहानी में नज़र आता है -

"गिरिधारी ने कान के बजाय आँख दरार में लगा दी । माँ नंगी लेटी थी । एक बार आँख हटाकर इधर उधर देखा, दुबारा फिर अंदर झाँकने लगा । कुछ देर तक गिरिधारी का शरीर थर्राता रहा । एक हाथ टांगों के बीच देकर वह उकडूं बैठ गया ।

राम तीरथ मनकी से चिपटा था । बूढा खडा दोनों को गौर से देख रहा था । एकाएक मनकी ने राम तीरथ को ढकेल दिया । उसका कहना जारी था - सरीयत मंज़ूर हो तो आगे बढ ।"

---

1. अपने आसपास, संपादक बलराम, साक्षात्कार, पृ. 33.
2. गिरिराज किशोर से साक्षात्कार, अधरा, 1993, पृ. 9.

लेटी हुई मनकी आधी उठ गयी । मुस्कुराकर बोली, "दोनों बातें होंगी । - तगडी तू अकेला दे या.... बारू की तरफ देखकर मुस्कुरायी " तुम दोनों मिलकर, इस बेचारे बारू को क्यों हलाल करता है । इसके बस का क्या है ? लुगाई तो तेरी ही रहूँगी ।"[1]

अपशब्द न केवल यहाँ पात्रों के वर्गीय चरित्र को उभारते हैं वरन् निम्न वर्ग के लिये तो ये आत्मरक्षा का माध्यम बनकर उभरते है -

"रामो ज़ोर ज़ोर से चिल्ला रही थी .... मरदुए, रोज़ रोज़ हाँकता है, बाँस चढवा दूँगा....." वह उसी तरह लहँगा उठाए दरोगा की ओर बढ रही थी, "चढा, चढा..... अपनी माँ का दूध पिया है तो ले चढा ले, देखूँ तेरा बाँस ।"[2]

भाषा वास्तव में संवेदना और अनुभव का स्वरूप है । बडे अनुभव और बडी संवेदना को लचर भाषा सफलता पूर्वक लेकर नहीं चलती है । संवेदना, अनुभव एवं भाषा को एक दूसरे के अनुरूप बनना पडता है । तभी रचना होती है । संवेदनशील कथाकार कथा-भाषा की रूढियों को नहीं अपनाता बल्कि वह भाषा के रूढिगत धरातल से हटकर एक नयी भाषा संरचना का सूत्र पात्र भी कर सकता है । गिरिराज किशोर इसी दिशा में प्रयत्नशील दीख पडते है । इसी कारण पात्र की संवेदनशीलता और मानसिक स्थिति को व्यक्त

---

1. रिश्ता तथा अन्य कहानियाँ, गिरिराज किशोर, पृ. 148.
2. लोग, गिरिराज किशोर, पृ. 147.

करती हुई उनकी भाषा अपनी अलग पहचान रखती दीख पड़ती है । उदाहरण द्रष्टव्य है -

"मैं ने पूछा, कैसी आवाज़ ?"

"गोली चलने की ।"

"कहाँ ?"

वह हँसने लगा और हँसते हँसते ही बोलता गया "आप लोग क्यों सुनेंगे गोली की आवाज़ । जात के बड़े बात के बड़े, ठाट के बड़े....." वह तुकबन्दी मिलाता हुआ सा बोल रहा था । फिर कहा, "रात दिन गोली चल रही है । इन्हें उसकी ठूँ ठाँ सुनायी नहीं पड़ती । यहाँ सारा शरीर छलनी हो गया । धायँ.. .धायँ, चली या नहीं चली ? वह मुँह से ही गोली चला रहा था ।"[1]

यहाँ पात्र की संवेदनशीलता ही उद्घाटित होती है । अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों को बालेसर गोलियों के रूप में महसूस करता है भाषा में अंतर्निहित ध्वनि को यहाँ गहराई से पहचाना जा सकता है ।

उपन्यास की वस्तु की विशेषता यह है कि वह स्वयमेव नए रूपबन्ध की तलाश करती है । आधुनिक जीवन की जटिल स्थितियाँ किसी मायने न सरल है न परिभाषेय । अतः ऐसी स्थितियों को विषयवस्तु के रूप

---

1. यथा प्रस्तावित, गिरिराज किशोर, पृ. 10.

ग्रहण करते समय रूपजन्य की तलाश रचनाकार के दायित्व से बढ़कर रचना का दायित्व बन जाता है । जब कोई औपन्यासिक रचना स्वतः गहराने लगती है तो एक नया रूप आकार ग्रहण करता है ।

गिरिराज किशोर ने अपने प्रत्येक उपन्यास में और प्रत्येक कहानी में रूप के वैविध्य को दर्शाने का कार्य किया है । उनकी कहानियाँ एक सीधी हैं । पर उनकी गहराती तहें असंख्य हैं । सरलता और सरसता की इस प्रवृत्ति ने उनकी कहानियों को बराबर नया रूपबन्ध प्रदान किया है । उपन्यासों में प्रयोगपरक दृष्टि के बावजूद सहजतापूर्वक उभरते शिल्पविधान अंश भी मिलते हैं । सबसे बढ़कर उनकी भाषा एकतानता है जो हमारे समकालीन जीवन के समान अबाधित है पर विभिन्न गाँठों से युक्त है । भाषा की यह स्थिति संवेदनात्मक है । उनके कला शिल्प को यह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है

उपसंहार

उत्तर शती का कथा साहित्य अत्यन्त विपुल है । उसमें वैविध्य की भरमार भी है । ये विपुलता और विविधता कथा साहित्य ने अपनी स्वत: स्फूर्त ऊर्जा से ग्रहण की है । प्रेमचन्द से शुरू होनेवाली पूर्व आधुनिकयुगीन कथा परंपरा आधुनिक दौर में अनेकानेक शाखाओं में विकसित होती दिखाई देती है । इस विकास में भी रचनात्मक ऊर्जा का प्रतिफलन है ।

उत्तर शती का जीवन और परिवेश कभी भी सामान्य नहीं रहा है । आह्लादों एवं उल्लासों की तरंगों से बढ़कर अवसाद की अन्तर्धारा ह अधिक मुखर रही है । अपने तमाम सरल परिपार्श्वों के बावजूद एक जटिल और अपरिभाषेय परिवेश हमारा सच बनता गया । हम प्रगति भी करते रहे । शिक्षा और प्रौद्योगिकी आदि में हम अगुवे बनने के प्रयास में रहे । इस ओर भी हमारी लालसा रही कि अन्तरदेशीय संबंधों का दृश्य-पट हमेशा मनमोहक रहे । अपने से छोटे देशों को सहायता में भी हमने हाथ बँटाया । लेकिन हमारे जीवन का दृश्यपट उतना सुहाना और मनमोहक कभी नहीं रहा है अर्थात् एकाध सच के बीचों बीच असंख्य गलतियों की गिरफ्त में हमारा जीवन लुढ़कता ठोकर खाता रहा । आज जीवन की गति इतनी वेगवान है कि कुछ भी सरल नहीं है । यों भी कहा जा सकता है कि हमारा सामाजिक जीवन अत्यधिक बहु केन्द्रिय है ।

इतिहास के पृष्ठों में अनेक प्रकार की शासन रीतियों एवं जीवन संप्रदायों का परिचय मिलता है । इतिहास हमें यह भी बता देता है,

प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था के कायम होने के पहले विभिन्न प्रकार की अराजक स्थितियाँ भी बलवान रही हैं । उनके साथ आक्रमणों एवं अमानवीय हरकतों का अटूट संबंध भी है । इतिहास का एक सामान्य पाठक सन्तोष का अनुभव कर सकता है क्योंकि अनेकानेक अराजक स्थितियों में से विश्व के कई देशों ने अपने आप को जनतांत्रिक या समान पथों की तरफ अग्रसर करने का कार्य किया है । यह एक प्रीतिप्रद तत्व होते हुए भी अराजक स्थितियों का सिलसिला कभी टूटा ही नहीं । साम्राज्यवादी प्रलोभनों से कोई भी सत्ता मुक्त नहीं है । उपनिवेशवादी रुझानों और रवैयुयों के साथ ही कोई भी समाज अपने को प्रदर्शित कर पा रहा है । इन सब ने समकालीन जीवन को अत्यधिक जटिल और कभी कभी दुरूह कर दिया ।

कथा साहित्य के सामने सामाजिक या राजनैतिक गतिविधिया रही हैं और उन्हें स्वेच्छा से या प्रभाववश अपनाने का कार्य भी कथाकारों ने किया है । यहाँ एक सवाल ये उठाया जा सकता है कि कथा-साहित्य का संबंध सिर्फ, सामाजिक, राजनैतिक गतिविधियों से हैं उसका जवाब ये होगा कि कथा साहित्य का सीधा सरोगर जीवन के विस्तार से है । जीवन सिर्फ विस्तार ही नहीं पा रहा है बल्कि वह गहराता भी रहा है । जहाँ-जहाँ कथा साहित्य ने इससे भिन्न जीवन के तौर तरीकों को अपनाने का कार्य किया है वहाँ रचनात्मक ऊर्जा का वो शिखर परिचय हमें प्राप्त नहीं हुआ जो वांछित है ।

उत्तर शती का कथा साहित्य, जैसे उपरोक्त सूचित है, विपुल और वैविध्यमय है उसका एकमात्र कारण आज के जीवन में दृष्टिगत

विपुलता और विविधता ही है । साथ ही साथ जीवन के बहुआयामी संदर्भ भी हैं । अतः हम पा रहे हैं कि हमारा दृश्यपट बहुरंगी है और कथा साहित्य उसको सोखने के लिए तैयार है । परन्तु विविधता और विपुलता के होते हुए भी क्या समकालीन जीवन के नाना रंगी रूपों का असली चयन हुआ । इसका एक तटस्थ विश्लेषण हमें आह्लादित नहीं कर रहा है । असंख्यता के बीच में से कभी कभार ही ऐसे कथाकार हमें मिल जाते हैं । जिनमें आस्था और अन्तरद्वन्द्व के अंश मिल जाते हैं । समकालीन जीवन की दशाओं और दिशाओं को लेकर वे परितप्त दीखते हैं । रचना के हर रोये-रेशे के प्रति वे निष्ठावान भी दीखते हैं । रचना की निष्ठा और जीवनोन्मुखी अन्तरद्वन्द्व उन्हें समझौतावादी मंच से ऊपर उठाते हैं । ऐसे कथाकारों के लिए रचनाकर्म ही गुरु गंभीर कार्य है । उत्तर शती के हिन्दी कथाकारों की लंबी पंक्ति में से ज इने गिने कथाकार हमें मिले हैं उनमें गिरिराज किशोर का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

गिरिराज किशोर के कथा साहित्य का आरंभ उन्नीस सौ सत्तर के आसपास शुरू होता है । सत्तरोत्तर युग में वे अपनी कथा प्रतिभा का परिपाक भी दे सके हैं । उनके रचनारंभ का यह समय और उनकी विकास यात्रा का समय कतई सामान्य नहीं है । हिन्दी में इसी दौर को समकालीन दौर कहा जाता है । अपने रचनाक्रम की विरासत के रूप में गिरिराज किशो को प्रेमचन्द का कथा साहित्य भी मिला है और अज्ञेय का कथा साहित्य भी मिला है । एक ओर समय की जटिलतर स्थितियाँ थी तो दूसरी तरफ अपने पथ के अन्वेषण की समस्या । विरासत हमें उकसा सकती है, एक रचनाकार प्रोत्साहित कर सकती है । वह सामग्री प्रदान कर नहीं सकती । यह एक

स्वीकृत मान्यता है कि प्रत्येक मौलिक रचनाकार अपना पथ स्वयं ढूँढ निकालता है । गिरिराज किशोर ने भी यही किया । अपने पूर्ववर्ती रचनाकारों से साहित्यास्वादक की हैसीयत से वे निरन्तर संपर्क में रहे । यहाँ तक कि उनपर उन्होंने लिखा भी । लेकिन अपने पथ को सुनिश्चित करने की दिशा में वे दत्तचित्त भी रहे हैं । इस कारण से पचहत्तर तक होते होते हिन्दी पाठकों के समक्ष वे अपनी कथा प्रतिभा का परिचय भी दे सके ।

गिरिराज किशोर ने एक दर्जन उपन्यास लिखे हैं और एक दर्जन से अधिक संकलनों में व्याप्त शताधिक कहानियाँ भी लिखी हैं । लेकिन में वस्तुत: संख्या का कोई महत्व नहीं है । महत्व है तो रचना कर्म का तथा रचना के सरोकारों का । अन्य सामान्य कथाकारों की तुलना में गिरिराज किशोर के रचना कर्म और सरोकारों का महत्व यह है कि वे सदैव तात्कालिकता से ऊपर उठते नज़र आते हैं । जीवन की तात्कालिकताएँ विशिष्ट रचनाएँ पैदा करने में सक्षम नहीं हैं । तात्कालिकताओं का जब तक आभ्यन्तरीकरण नहीं होता है तब तक वे कच्ची सामग्री के अलावा कुछ भी नहीं हैं । हिन्दी में जहाँ तक उपन्यासों का संबंध है तात्कालिकता का ज़ोर रहा है जिसमें उपन्यास के पथ को कुण्ठित भी किया है । गिरिराज किशोर की प्रतिभा इस खतरे से परिचित रही है, वे अपने को तात्कालिकता से मुक्त भी रख सके हैं ।

गिरिराज किशोर की कहानियाँ इसलिए समकालीन हैं कि वे अपनी सपाटता के बावजूद उसी का उल्लंघन कर रही हैं । उन्होंने मध्यवर्ग जीवन के विभिन्न पक्षों पर कहानियाँ लिखीं । राजनैतिक पैतरे बाजियों पर

कहानियाँ लिखीं । बदलते मूल्यों को केन्द्र में रखकर भी कहानियाँ लिखीं । ये सब उनकी विषय वस्तुएँ हैं । मगर उनकी कहानियाँ हमें इसलिए अभिभूत कर रही हैं कि उनका आभ्यन्तर जगत काफी सशक्त है । वर्गीय अस्मिता के साथ उनका संबंध है । अत: आसपास घटित होनेवाली घटनाओं की तह में निहित मानवीय स्थितियाँ अंतत: मुख्य हो जाती हैं । ये ही मानवीय स्थितियाँ अक्सर मानवीय संकट {ह्यूमन क्राइसिस} में परिवर्तित होती हैं । उन्होंने मध्यवर्गीय व्यक्तियों की कहानियाँ लिखीं तो उसका प्रमुख कारण हमारे सामाजिक जीवन का खाका प्रस्तुत करना भर नहीं है । मध्यवर्गीय जीवन-स्थितियों की अंतरंगताएँ दरअसल हमारा बहुत बड़ा सच हैं । समकालीन जटिलताओं के संदर्भ में इस एक सच की बहुआयामी वृत्ति भी मुख्य हो उठती हैं । गिरिराज किशोर की कहानियाँ मात्र उन सामाजिक या राजनीतिक कहानियों की विकसित कड़ी नहीं है बल्कि वे आज की बिखरी मानसिकता की प्रामाणिक अभिव्यक्ति भी हैं

उपन्यास के क्षेत्र में गिरिराज किशोर ने प्रयोग भी किए हैं और अपनी रचनात्मकता को गंभीरता प्रदान करने का कार्य भी किया है । उनके जितने लघु उपन्यास हैं उनमें गिरिराज किशोर ने ऐसी अस्पृहणीय जीवन चर्याओं को प्रतिपादन-विषय बनाया है । प्रत्येक उपन्यास मात्र रूपात्मक प्रयोग का आभास न देकर पतनशील संस्कृति का पर्याय बन जाता है । उनके उपन्यासों की एक और विशिष्टता विषयगत नवीनता है । पर यह बात अन्य कई समकालीन उपन्यासकारों के संदर्भ में सही है । इसलिए नयेपन का आभास सीमित मात्रा में ही मिल सकता है । पर उसकी भी विशिष्टता है ।

यह सच है कि समकालीन उपन्यास नए-नए अनुभवों और नए-नए धितिजों को अभिव्यक्ति देने के प्रयास में दीखते हैं । पर यह भी सही है कि विषयगत नवीनता की उपलब्धि सीमित मात्रा में दृष्टिगत होती है । गिरिराज किशोर की नयी विषय वस्तु मात्र नवीनता को उद्भासित करनेवाली नहीं है । समकालीन जीवन की अहम स्थितियों से भी संबंधित होने के कारण नवीनता के साथ उसमें गहनता आती है । गिरिराज किशोर ने दलित वर्ग की समस्या पर उपन्यास लिखा । पर वह समस्याप्रधान नहीं है । हिन्दी में दलित चेतना की अभिव्यक्ति कम मात्रा में हुई हैं । उस एक शून्यता को भरना उनका लक्ष्य नहीं है । दलित वर्ग की अवसाद-स्थिति के इतिहास की वह चेतना उनके उपन्यास में विकस्वर है । उसे भी मानवीय संकट के रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया है ।

नौकरशाही और प्रशासनिक तंत्र को गिरिराज किशोर ने विषय बनाया । साधारणत: एक पोपुलर उपन्यास का ही यह विषय है । लेकिन गिरिराज किशोर ने उसके पोपुलर पक्ष से अधिक मानवीय पक्ष पर अधिक बल दिया । अत: "यथा प्रस्तावित" में नौकरशाही की वह प्रचित परंपरा का रूप विकास पाता है । उसके अधीन चरमराते सामान्य जीवन का अवसाद इतिह की सन्निहिति के साथ आकार ग्रहण करता है । यहाँ विषय का प्रतिपादन या उसकी नई प्रस्तुति उपन्यासकार का मकसद नहीं है । ये जीवन-संदर्भ उपन्य में स्वत: विकास पाते हैं । शोषण के शिकंजे के विकसने का अनुभव उपन्यास में तीव्रतर होता है ।

विज्ञान, वैज्ञानिक प्रगति और प्रौद्योगिक क्षेत्र से संबंधित विषयों को भी गिरिराज किशोर ने लिया है । विज्ञान ने हमें जो नई दृष्टि प्रदान की है उससे जीवन का सुसम्मत और सर्वस्वीकृत ढाँचा तैयार होता था । पर विज्ञान के विकास का यह परिणाम हमारे समाज में दृष्टिगत नहीं होता है । विज्ञान के विकास का एकायामी पथ हमारे सामने स्पष्ट है पर उसके साथ-साथ अनेक अयाचित पथों का अग्रसर होना ही आज लाजमी हो गया है । यह अंतर्विरोध गिरिराज किशोर का औपन्यासिक विषय है । अतः यह कहा जा सकता है कि तथाकथित विकास की गतिहीनता में निहित अन्तर्विरोध और उससे उपजते मानवीय संकट को प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य रहा है ।

राजनीति गिरिराज किशोर के उपन्यास की प्रमुख विषय वस्तु है । राजनीति की तात्कालिकता से वे कभी प्रभावित नहीं हुए । इसलिए तत्कालीन राजनीतिक मूल्य विघटन के चित्रों का अंकन उन्होंने नहीं किया । उनके दो बृहदाकार उपन्यास - "जुगलबन्दी" और "ढाई घर" - राजनीति की तात्कालिकता के स्थान पर राजनीति और साम्राज्यवादी शक्ति के सशक्त गठबन्धन को उभारते हैं । ये कुछ ऐसे जमीन्दार पात्रों की सामन्तवादी इच्छाओं का दस्तावेज़ नहीं हैं । इन उपन्यासों में सामन्तवाद की बीजांकुरण को खोजा गया है तथा उनके असंख्य अदृश बीजों को जो हमारे यहाँ बिखरे पड़े हैं, भी खोजने का कार्य किया है । हमारे समाज में रूढमूल्य सामन्ती मानसिकताओं के मूल में जाते समय वे उसे सत्तारूढ शक्तियों की सपतन्तु का आभास देते हैं, उसके आस पड़ोस में अपने को पाने की इच्छा प्रकट करनेवाली सामन्तीय प्रथा के विकृत आचारों को दिखाते हैं । इन दोनों के बीच होनेवाले सामाजिक विकास

को भी वे दर्शाते हैं । इस प्रकार एक बृहत्तर चित्रफलक तैयार करके गिरिराज किशोर ने यह दिखाने का कार्य किया है कि सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और उपनिवेशवाद आदि इतिहास के पुराने अध्याय भर नहीं हैं । समय-समय पर इन सबका विकास एवं उत्कर्ष हमारे ही समाज में फलपूर्वक होता रहा है । हमारी जीवन स्थितियाँ इन्हें उखाड़ फेंकने में अब भी समर्थ नहीं हुए हैं । इस अर्थ में गिरिराज किशोर के ये उपन्यास हमारे कठोर सत्य को उद्भासित करने में सक्षम निकले हैं । उपन्यास क्या ऐतिहासिक सत्यों और सामाजिक गतिविधियों का समन्वय भर है ? यही एक सवाल इस प्रसंग में पूछा जा सकता है । यह सही है कि अनुभवों का यही विस्तार उपन्यास नहीं बन सकता है । गिरिराज किशोर इस तथ्य में परिचित रचनाकार होने के कारण उनके उपन्यास लोक संपृक्ति का एहसास भी देते हैं । यह निरा एहसास भर नहीं है । उनकी कथागति की असंख्य समान्तरताएँ मिलती हैं । उनमें से कई समान्तरताएँ लोक जीवन के तत्वों से संपृक्त हैं ।

कथा की जो एक लंबी परंपरा हमारे यहाँ विद्यमान है, उससे भले ही उपन्यास, कहानी का विकास नहीं हुआ हो फिर भी प्राचीन कथा परंपरा से हमारा कथा साहित्य मुक्त नहीं है । यह हमारे कथा साहित्य की अस्वतंत्रता का मजबूरी नहीं है । प्राचीन परंपरा को उभारने का कोई तरीका भी नहीं है । समकालीन कथा साहित्य ने कथा-परंपरा के इस मिथक से कथा प्रस्तुति के अंश का ग्रहण किया है । आजके कथाकार कथा प्रस्तुति के विस्तार में अनेक प्रकार की सूक्ष्मताओं का सन्निवेश भी करते हैं ।

गिरिराज किशोर ने कथा प्रस्तुति के ऐकरैखिक उपक्रम को ही साधने का कार्य किया है । घटनाओं, उपघटनाओं के बीच कथा प्रस्तुति का विकास भी किया गया है । एकदम वह एकरैखिक है । इसमें हमारी प्राचीन कथा परंपरा का सन्निवेश अनुभव किया जा सकता है और समकालीन कथा संकेत भी उपलब्ध हैं । इस कारण से उनके कथा साहित्य में मूर्तिकार की सी प्रवृत्ति भी मिलती है । शिलाखण्ड को तराशनेवाले मूर्तिकार की वास्तुकारिता का उन्मेष उनके कथा साहित्य में मिलता है । अतः गिरिराज किशोर को कथा शिल्पी कहें तो वह अतिशयोक्ति नहीं होगी । समकालीन जीवन के पार्वत्य प्रान्तों से अनुभवों के शिलाखंडों को तराशते हुए गढ़नेवाले शिल्पी के रूप में ही अक्सर गिरिराज किशोर अपने विपुल कथा साहित्य के साथ हमारे सामने उपस्थित होते हैं ।

संदर्भ ग्रंथ - सूची

गिरिराज किशोर की कथा रचनाएँ

1. अन्तर्ध्वंस
नैशनल पब्लिशिंग हाउस
दरियागंज
नई दिल्ली - 110002.

2. आन्द्रे की प्रेमिका
किताब घर
दरियागंज
नई दिल्ली.

3. असलाह
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002.

4. इन्द्र सुने
राज कमल प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002.

5. गाना बड़े गुलाम अलीखाँ का
नैशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली.

6. चिड़िया घर
अक्षरा प्रकाशन
नई दिल्ली - 6.

7. जगतारिनी तथा अन्य कहानियाँ
संभावना प्रकाशन
मेरठ.

8. जुगलबन्दी
   राजकमल प्रकाशन
   नई दिल्ली.

9. ढाई घर
   भारतीय ज्ञानपीठ
   लोदी रोड
   नई दिल्ली - 3.

10. तीसरी सत्ता
    नैशनल पब्लिशिंग हाऊस
    नई दिल्ली.

11. दावेदार
    नैशनल पब्लिशिंग हाऊस
    नई दिल्ली.

12. दो,
    राजकमल प्रकाशन
    नई दिल्ली.

13. नीम का फूल
    किताब महल
    इलाहाबाद.

14. पेपर वेट
    राजकमल प्रकाशन
    नई दिल्ली.

15. परिशिष्ट
    राजकमल प्रकाशन
    नई दिल्ली.

16. यह देह किसकी है
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली.

17. रिश्ता और अन्य कहानियाँ
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

18. लोग
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

19. वल्दरोज़ी
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली.

20. शहर दर शहर
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

21. हम प्यार कर लें
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

अन्य रचनात्मक ग्रंथ

22. अजनबी इन्द्र धनुष - आशीष सिन्हा
राजपाल एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट
दिल्ली.

23. अन्तःपुर - गोविन्द मिश्र
नैशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली.

24. आदमी नामा - काशीनाथ सिंह

25. एक चूहे की मौत - बदी उज्मा
शब्दकार
दिल्ली -6.

26. काला रजिस्टर - रवीन्द्र कालिया
रचना प्रकाशन
नई दिल्ली.

27. छठा तंत्र - बदी उज्मा
शब्दाकार
तुर्कमान गेट
दिल्ली - 6.

28. जल टूटता हुआ - राम दरश मिश्र

29. तुम्हारी रोशनी में - गोविन्द मिश्र

30. थाली भर चान्द - सूर्यबाल
प्रभात प्रकाशन
चावडी बाज़ार
नई दिल्ली.

31. दूसरा सूत्र - देवराज
राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली - 6.

32. धरती धन न अपना — जगदीश चन्द्र
राजकमल प्रकाशन
नई दिल्ली.

33. नौ साल छोटी पत्नी — रवीन्द्र कालिया
अभिव्यक्ति प्रकाशन
इलाहाबाद.

34. नेताजी कहिन — मनोहर श्याम जोशी
राजकमल प्रकाशन
8 नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली - 2.

35. प्रतिनिधि कहानियाँ — ज्ञानरंजन
राजपाल एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट
नई दिल्ली.

36. प्रतिनिधि कहानियाँ — काशीनाथ सिंह

37. प्रथम पुरुष — सतीश जमाली
साहित्य वाणी
इलाहाबाद.

38. भ्रम भंग — देवेश ठाकुर
भारतीय ज्ञानपीठ
नई दिल्ली - 1.

39. मेरी प्रिय कहानियाँ — महीप सिंह

40. मेरी प्रिय कहानियाँ — ज्ञानरंजन
राजपाल एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट
नई दिल्ली.

41. यह भी नहीं — महीप सिंह
राजपाल एण्ड सन्स
दिल्ली - 110006.

42. यात्रा — ज्ञानरंजन
रचना प्रकाशन
इलाहाबाद.

43. राग दरबारी — श्री लाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली.

44. शहादतनामा — जीतेन्द्र भाटिया

45. शांति भंग — मुद्रा राक्षस

46. सपाट चेहरेवाला आदमी — दूधनाथ सिंह
अक्षरा प्रकाशन
नई दिल्ली.

47. सफेद घोडा काला सवार — हृदयेश
लिपि प्रकाशन
1 अन्सारी रोड
नई दिल्ली - 110002.

48. सावधान नीचे आग है - संजीव
राधाकृष्ण प्रकाशन
2/38 अन्सारी रोड
दरियागंज
नई दिल्ली.

49. सुबह का डर - काशीनाथ सिंह
रचना प्रकाशन
इलाहाबाद.

50. हुजूर दरबार - गोविन्द मिश्र
नैशनल पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली - 6.

आलोचनात्मक ग्रंथ

51. आठवें दशक की हिन्दी आलोचना - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
नैशनल पब्लिशिंग हाउस
दरियागंज
नई दिल्ली.

52. आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ - नरेन्द्र मोहन
आदर्श साहित्य प्रकाशन
वेस्ट सलीम पुर
दिल्ली - 31.

53. आधुनिक हिन्दी उपन्यास - नरेन्द्र मोहन
दि मैक मिलन कम्पनी ऑफ
इण्डिया लिमिटेड
नई दिल्ली.

54. कथ-अकथ - गिरिराज किशोर
वाणी प्रकाशन
नई दिल्ली.

55. कहानी : संवेदना का तीसरा आयाम - बटरोही
नैशनल पब्लिशिंग हाऊस
नयी दिल्ली.

56. लिखने का तर्क - गिरिराज किशोर
नैशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

57. विद्रोह और साहित्य - सं. देवेन्द्र इस्सर और नरेन्द्र मोहन
साहित्य भारती
दिल्ली - 5.

58. सर्जन और सम्प्रेषण - सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय
नैशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

59. संवाद सेतु - गिरिराज किशोर
नैशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

60. समकालीन कहानी : दिशा और दृष्टि - सं. डा. धनंजय
अभिव्यक्ति प्रकाशन
इलाहाबाद.

61. समकालीन कहानी की भूमिका - विश्वंभरनाथ उपाध्याय
स्मृति प्रकाशन
इलाहाबाद.

62. समकालीन कहानी की पहचान - नरेन्द्र मोहन
प्रवीण प्रकाशन
नई दिल्ली.

63. समकालीन कहानी- युगबोध का संदर्भ - पुष्प पालसिंह
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

64. समकालीन साहित्य और सिद्धांत - विश्वंभरनाथ उपाध्याय
दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड
नई दिल्ली.

65. समकालीन कहानियाँ - विश्वंभरनाथ उपाध्याय और मंजुल उपाध्याय
स्मृति प्रकाशन
इलाहाबाद.

66. साहित्य और सामाजिक मूल्य - डा. हर दयाल
विभूति प्रकाशन
नई दिल्ली.

67. साहित्य और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया - सं. अज्ञेय
नेशनल पब्लिशिंग हाऊस
नई दिल्ली.

68. सिलसिला - मधुरेश
प्रकाशन संस्थान
दिल्ली.

69. स्रोत और सेतु - अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्स
नई दिल्ली.

70. हिन्दी कहानी पाठ और प्रकृति - सुरेन्द्र
परिवेश प्रकाशन
जयपुर.

71. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - रामदरश मिश्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली.

साक्षात्कारों का संकलन

72. अपने आसपास - सं. बलराम
प्रेम प्रकाशन मन्दिर
दिल्ली - 6.

73. कथारंग - सुरेन्द्र तिवारी
किताब घर, मेन रोड
गान्धी नगर
दिल्ली - 110031.

पत्र-पत्रिकाएँ

74. अक्षरा - जनवरी-जून, 1993.
75. आलोचना - अक्टूबर-दिसंबर, 1980.
76. कहानीकार - (फैन्टसी विशेषांक) जनवरी 1970.
77. जन सत्ता - 1987.
78. दस्तावेज़ - जनवरी-मार्च 1979.
79. दस्तावेज़ - जनवरी-मार्च, 1980.
80. दस्तावेज़ - जनवरी-मार्च, 1988.

81. नवभारत टाईमस - 20 जून 1992.

82. निमित्त - दिसम्बर 1995.

83. भाषा - मार्च जून 1983.

84. सारिका - अक्तूबर 1974.

85. सारिका - फरवरी 1979.

86. समीक्षा - नवम्बर 1991.

87. साक्षात्कार

88. साक्षात्कार - जनवरी 1985.

89. संचेतना - दिसंबर 1982.